पराशर' नामक ग्रन्थ का ऊद्धरण उठाकर कुछ अन्य शाखाओं का भी उल्लेख किया है जैसे—याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, मूलघट, बाणस, सहवास, गोत्रपण्डित, समानुज, गयाबल, त्रिदण्ड आदि देश और ग्राम भेद से नाना नाम हो गये।

अग्निपुराण बतलाता है कि—

"एक कम दो सहस्र यजुर्वेद में मन्त्र हैं, तथा ८६ शाखाएं हैं, १००० ब्राह्मण हैं।"

विष्णु-भागवत पुराण में लिखा है—

पराशर से सत्यवती में अंशांशकला से भगवान् ने व्यास रूप में उत्पन्न होकर वेद को चार प्रकार का किया। उसने चार शिष्यों में से पैल को 'बह्वृच' नामक ऋग्वेद, वैशम्पायन को 'निगद' नाम यजुर्वेद, जैमिनी को सामों की छंदोगसंहिता, और अपने शिष्य सुमन्तु को अथर्वाङ्गिरसी नामक संहिता दी। यजुर्वेद के विषय में लिखा है—

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्यर्यवोऽभवन्।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षयणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥

वैशम्पायन का नाम 'चरक' था, उसके शिष्य 'चरकाध्वयु' थे। जिन्होंने अपने गुरु के लिये ब्रह्महत्या के पाप के निमित्त प्रायश्चित्त का आचरण किया वे 'चरकाध्वयु' कहाये। इस सम्बन्ध में प्रायः सभी पुराणों में इस कथा को इस प्रकार से वर्णन किया है कि ब्रह्महत्या के निमित्त वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य ने अहंकार पूर्वक कहा कि मैं ही समस्त व्रताचरण कर लूंगा और ये शिष्य तो 'अल्पसार' हैं इस पर गुरु वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर अपनी पढ़ायी समस्त विद्या मांग ली। याज्ञवल्क्य ने वह सब वमन कर दी। और उनके अन्य शिष्य मुनियों ने तित्तिरपक्षी बनकर, लोलुप होकर उस वमन को खा लिया। याज्ञवल्क्य ने उसके पश्चात् आदित्य की उपासना करके यजुर्गण को

प्राप्त किया। इस सम्बन्ध में भागवत (का० १२ अ० ६ । ७३, ७४ ॥) में लिखा है—

एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः ।
यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः ॥
यजुर्भिरकरोच्छाखाः दश पञ्च शतैर्विभुः ।
जगृहुर्वाजसंन्यस्ताः काण्वमाध्यन्दिनादयः ॥

इस प्रकार स्तुति करने से प्रसन्न होकर 'वाजि' रूप धर कर हरि (सूर्य) ने याज्ञवल्क्य मुनि को 'अयातयाम यजुर्गण' प्रदान किये। सैकड़ों यजुषों से उस विद्वान् ने १५ शाखाएं कीं। 'वाज' अर्थात् केसरों या रश्मियों या वेग या वाणी द्वारा प्रदान की गई उन शाखाओं को कण्व, मध्यन्दिन आदि विद्वानों ने ग्रहण किया

भगवान् के इस लेख के समान ही प्रायः अन्य पुराणों के भी लेख हैं याज्ञवल्क्य का गुरु से पृथक् होकर सूर्य से यजुर्वेद को प्राप्त करने की कथा प्रायः सर्वत्र समान है। इससे कुछ पुराणों के अनुसार ये परिणाम निकल सकते हैं। (१) याज्ञवल्क्य द्वारा प्राप्त यह यजुर्वेद व्यास द्वारा व्यस्त यजुर्वेद से अवश्य पृथक् हो। अर्थात् वैशम्पायन को व्यास ने वह यजुर्वेद न पढ़ाया हो। (२) व्यास और वैशम्पायन के पूर्व भी यजुर्वेद स्वतन्त्र रूप से शुद्ध विद्यमान् हो। और (३) व्यास के अतिरिक्त भी यजुर्वेद अन्य विद्वानों के पास विद्यमान् हो।

वायु पुराण और ब्रह्माण्ड में लिखा है—कि "सूर्य ने प्रसन्न होकर अश्वरूप वाले याज्ञवल्क्य को यजुर्गण दिये। क्योंकि अश्वरूप वाले याज्ञवल्क्य को दिये इसलिये जिन्होंने उनको पढ़ा वे भी 'वाजी' कहाये। यहां याज्ञवल्क्य अश्वरूप बना"।

सत्य बात यह है कि यजुर्वेद की शुद्ध संहिता उस समय पठन-पाठन क्रम से उसी प्रकार लुप्त हो रही थी जैसे महर्षि दयानन्द के काल में पाणिनीय व्याकरण लुप्तप्राय था। जैसे सभी विद्वान् भट्टोजी दीक्षित

के बनाये प्रक्रियाक्रम से व्याकरण पढ़ने लगे थे। परन्तु तो भी दण्डी स्वामी श्रीविरजानन्दजी पाणिनिक्रम को ही श्रेयस्कर मानते थे। महर्षि दयानन्द ने दण्डीजी से ही जाकर पाणिनीयक्रम से व्याकरण पढ़ा। उसी प्रकार सम्भवत: वैशम्पायन के शिष्यों में ब्राह्मण-मिश्रित संहिता का प्रचलन हो जैसा प्राय: सब कृष्ण-शाखी यजुर्वेद संहिताओं में है। और इस क्रम से वेद का शुद्ध 'निगद' स्वरूप नष्ट हो गया हो। समस्त ऋषियों के सामने यह समस्या उपस्थित हुई कि पुनः इस दोष को कैसे हटाया जाय। योगी याज्ञवल्क्य ने पुनः शुद्ध संहिता प्राप्त करने का भागीरथ प्रयत्न किया हो इस मतभेद से ही उसने कदाचित् वैशम्पायन कुल को छोड़कर वाजसनेय ऋषि के कुल में दीक्षा ली हो।

(च)

कृष्ण और शुक्ल

अब तक जितनी भी शाखाएं यजुर्वेद की उपलब्ध होती हैं वे दो पक्षों में बंटी हैं। कुछ कृष्ण शाखा हैं और कुछ शुक्ल शाखा हैं। इन दो नाम होने का क्या कारण है कुछ स्पष्ट प्रतीत नहीं होता पुराणकारों के मत से तो याज्ञवल्क्य ने उनको वमन कर दिया इसलिये घृणा योग्य होने से 'कृष्ण' हैं। और दूसरी सूर्यप्रोक्त होने से 'शुक्ल' हैं। परन्तु यह कल्पना किसी मूल्य की नहीं हैं। क्योंकि यही आधार कृष्ण शाखा का 'तैत्तिरीय' नाम होने का भी है, क्योंकि वमन किये यजुर्गण को शिष्यों ने तित्तिर पक्षी होकर ग्रहण किया। यह कल्पना इसलिये असत्य है क्योंकि तैत्तिरीय शाखा का नाम 'तित्तिरि' आचार्य के नाम से पड़ा है। जैसा पाणिनि ने स्पष्ट लिखा है—

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्॥ पा० ४।३।१०२॥

तित्तिरि आदि शब्दों से 'तेन प्रोक्तम् अधीयते' इस अर्थ में 'छण' प्रत्यय होता है। तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीयाः। 'तित्तरि' आचार्य से कहे प्रवचन को पढ़ने वाले छात्र 'तैत्तिरीय' कहाये और वह

प्रवचन 'तैत्तिरीय' कहाया। इसी प्रकार पाणिनि ने अन्य भी कई आचार्यों का पता दिया है। जैसे—शौनकादिभ्यश्छन्दसि पा० ४ । ३ । ९३ । इस सूत्र के शौनकादिगण में शौनक, वजसनेय (साङ्गरव) शार्ंगरव, शापेय, (सापेय) शोष्पेय शाखेय, खाडायन, स्तम्भ (स्कन्ध) देवदर्शन (देवदत्तशठ) रज्जुभार, रज्जुकण्ठ, कठशाठ (कशाय) कपाय, तल (तलवकार), तण्ड, पुरुषासक (परुपासक), अश्वपेज (अश्वपेय) * ये नाम भी परिगणित हैं। इनमें 'वाजसनेय' ऋषि का नाम है। उसके शिष्य वाजसनेयी कहाते हैं।

याज्ञवल्क्य और याज्ञवल्क्य प्रोक्त शतपथब्राह्मण भी अति प्राचीन है। महाभाष्यकार ने याज्ञवल्क्य को प्राचीन ब्राह्मणकार के तुल्यकाल ही माना है। फलतः शुक्ल और कृष्ण नाम होने का कोई अन्य ही कारण है।

सर मोनियर विलियम ने अपने प्रसिद्ध कोप में लिखा है कि कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मण भागों से मिश्रित होने से 'कृष्ण' हैं और शुक्ल यजुर्वेद में शुद्ध मन्त्र संहिता है अतः 'शुक्ल' है।

एक यह भी विचार है कि वेदव्यास 'कृष्ण द्वैपायन' कहाते थे। उनका नाम 'कृष्ण' था, उस नाम से ही कदाचित् उनकी शिष्यपरम्परा में प्रचलित वेदशाखा कृष्ण शाखा है और इससे इतर वाजसनेय शिष्य परम्परा में प्रसिद्ध वेद 'शुक्ल' शाखा हैं।

शुद्ध यजुर्वेद परमेश्वर से ही प्राप्त हुआ है इस कारण इसका नाम 'वाजसनेय' संहिता है। इस विषय पर प्रकाश डालने वाली नीचे लिखी ऋचा ऋग्वेद और अथर्व वेद दोनों में समान रूप से है।

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराभि सद्म।
बृहस्पति वृषभं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा॥

ऋ० १० । ९७ । १०॥

इस मन्त्र में विद्वान् आचार्य एवं परमेश्वर का उच्च पद पर विराजना

* कोष्ठगत नाम काशिकाभिमत हैं। और साथ के दीक्षिताभिमत हैं।

और उससे ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वानों का उसकी विद्या को फैलाने का वर्णन प्रतीत होता है। पूर्ण वेदमय ज्ञान को 'विश्वरूप वाज' शब्द से कहा प्रतीत होता है। जो विद्वान् उस वाज को स्वयं प्राप्त करे और दूसरों को प्रदान करे वह विद्वान् वेद के अनुसार 'वाजसन' कहावेगा, उसके शिष्य 'वाजसनेय' कहावेंगे। इस समाख्या से गुरुपरम्परा से परमेश्वर (आदित्य) से प्राप्त शुद्ध यजुर्वेद यह 'शुक्ल यजुर्वेद' है इसमें सन्देह नहीं है। यज्ञ क्रियाओं में विनियुक्त हो कर ब्राह्मणादि प्रवचनों से संयुक्त हो जाने पर अन्य शाखा 'कृष्ण' कहाई ऐसा होता है।

(छ)

"कठों की विशेष शाखाएं"

कठों की भिन्न २ शाखाओं का उल्लेख नहीं हैं। तो भी इतना संकेत मिलता है कि—

"कठानां पुनर्यान्याहुः चत्वारिंशच्चतुर्युतान्।"

अर्थात् कठों के ४४ उपग्रन्थ कहे हैं। उनका कुछ पता नहीं चलता इसी सम्बन्ध में वेदों के विज्ञ श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर ने स्वप्रकाशित यजुर्वेद की भूमिका में 'तत्र काठानां चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्थाः' इस चरण व्यूह के लेख से इनको भी शाखा समझा है। और उनका लेखन न होने से उनको गणना के अयोग्य बतलाया है। परन्तु पण्डित श्री महिदास ने कठों के ४४ उपग्रन्थों को ४४ अध्याय स्वीकार किया है। कापिष्ठल कठसंहिता में ४८ अध्याय उपलब्ध हैं। फलतः उनके यजुः संहिता में ४४ अध्याय थे ऐसा प्रतीत होता है अब तो यजुर्वेद की केवल पांच संहिताएं ही प्राप्त होती हैं।

(ज)

यजुर्वेद की वर्त्तमान में उपलब्ध शाखाएं

(१) काठक संहिता, (२) मैत्रायणी संहिता। (३) तैत्तिरीय संहिता। (४) वाजसनेय माध्यंदिन संहिता। और (५) काण्व

संहिता। इन पांचों में से पहली तीनों रचना समान हैं। तीनों ब्राह्मण भाग से युक्त हैं। शेष काण्व और माध्यंदिन दोनों बहुत अधिक समान हैं परन्तु तो भी इन दोनों में मन्त्रों की न्यूनाधिकता, पाठ, क्रम, प्रवचन आदि में भेद हैं। इसी प्रकार वाजसनेय संहिता के माध्यंदिनी और काण्व शाखाओं में भेद है। परन्तु बहुत भेद नहीं हैं। दोनों पर एक ही सर्वानुक्रम सूत्र है। शाखाभेद से ब्राह्मण-संहिताओं में भी यत्किञ्चित् भेद है।

(ञ)

निगद और अयातयाम

अब प्रश्न यह है कि क्या वैशम्पायन को महर्षि व्यास ने जिस यजुर्वेद का उपदेश किया वह भिन्न था और याज्ञवल्क्य ने जो यजुर्गण आदित्य से प्राप्त किये वे भिन्न थे ? यदि दोनों में भेद था तो दो यजुर्वेद सिद्ध होते हैं। परन्तु वेद ईश्वरोक्त होने से उनको दो नहीं माना जा सकता। हमारे विचार में दोनों यजुर्वेद एक थे। कथाकारों ने स्पष्ट लिखा है।

वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥

अर्थात् व्यास देव ने वैशम्पायन को 'निगद' नाम यजुर्वेद दिया। 'निगद' का अर्थ शुद्ध 'मन्त्रपाठ' है। यास्क का जहां मन्त्र की विशेष व्याख्या नहीं लिखनी होती वहां वह 'निगदेनैव व्याख्याता' लिखकर छोड़ देता है। महाभाष्यकर भी 'निगद' शब्द को केवल मन्त्र पाठ के लिये प्रयुक्त करते हैं।

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। पात० महा० पस्पशे ॥

पूर्व विवेचना से भी स्पष्ट है कि 'चरक' वैशम्पायन का नाम था, उसको व्यासदेव द्वैपायन कृष्ण ने शुद्ध यजुर्मन्त्रों का उपदेश किया। यज्ञ में विनियुक्त करके ब्राह्मण से संवलित हो जाने पर वही 'कृष्ण' द्वैपायनप्रोक्त मन्त्रपाठ शुद्ध संहिता नहीं रहा। याज्ञवल्क्य की गुरुपरम्परा में वह

शुद्धपाठयुक्त यजुर्वेद संहिता बाद में भी बराबर शुद्ध रहा। महर्षि दयानन्द ने भी उसी शाखा को शुद्ध यजुर्वेद स्वीकार किया है।

याज्ञवल्क्य ने 'अयातयाम' यजु क प्राप्त किया। तात्पर्य यह है कि 'यजुष्' इतने शुद्ध थे कि जिनको अभी प्रहर भी न बीता हो। अर्थात् 'सदा से रहनेवाले' जो कभी पुरातन न हों, ऐसे सनातन सारवान् जिनका ज्ञानरस कभी क्षीण न हो।

भागवत के भाष्यकार श्रीधर स्वामी ने '**अयातयामानि**' का अर्थ 'अयथावदविज्ञातानि' किया है, अर्थात् जिनका अन्य विद्वानों ने उस समय ठीक प्रकार से ज्ञान नहीं किया था।

(ञ)

वाजसनेय शाखानामों की तुलना

वाजसनेयों के शाखा नामों में बड़ा भेद है। जाबाल सर्वत्र है। बौद्धायन, बौधायन, बौद्धक, बौधायनीय इतने नाम भेद हैं। जिनमें शुद्ध नाम बोधायन, प्राप्त होता है। इसके श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र भी मिलते हैं। काण्वशाखा भी सर्वत्र समान है। इस शाखा की संहिता, सर्वानुक्रम, तथा ब्राह्मण भी प्राप्त है। शांपीय शाफेय, शापेय, शापेयी ये नाम उपलब्ध होते हैं। शौनकादिगण में 'शापेय' और 'सावेय' दोनों नाम उपलब्ध होते हैं। तापायनीय, तापनीय दोनों नाम हैं। कपालाः कपोलाः दोनों नाम प्राप्त हैं। सम्भवतः ये कलापी की प्रोक्ता कालाप शाखा है जिसके अध्येता 'कालाप' कहाते थे। कलापी की वैशम्पायन के शिष्यों में गणना है। आवटिक, और आटविक और अटवी तीनों नाम प्राप्त हैं। 'रसारविक' यह विकृत नाम भी मिलता है। इसी प्रकार परमावटिक दोनों नाम मिलते हैं। सम्भवतः परमाटविक नाम शुद्ध हैं। अटवी का अर्थ अरण्य है। स्यात् आरण्यकाध्यायी आटविक परमाटविक कहाते हों। 'ट' और 'र' के लेख-साम्य से पाठभेद होकर परमारविक भी कहे गये हों। पराशर सर्वत्र समान हैं। अद्ध और 'ऋद्ध' दोनों में अ और ऋ

वर्णलिपि की समानता से बदले दीखते हैं। बौधेय, बोधेय, वैधेय भी इसी प्रकार हैं। गालव केवल एक चरणव्यूह और ब्रह्माण्ड और वायु पुराण में मिलते हैं। 'वैजव' केवल एक चरणव्यूह में है शुद्ध नाम 'वैज-वाप' है। औधेय और कात्यायन भी एक ही में हैं। कत्यायनीय श्रौत और गृह्यसूत्र मिलते हैं। 'ताम्रायणीय' भी तीन स्थानों पर प्राप्त हैं। 'केवल' शाखा एक स्थान में वत्स और वात्स्य ब्रह्माण्ड और वायु पुराण में ही है। शालीन, विदिग्ध, उद्दल, शैषिरीपर्णी, वीरणी, और अप्य ये केवल वायु पु० में मिलते हैं। जिनमें 'उद्दल' उद्दालकोक्त शाखा प्रतीत होती है। वंश ब्राह्मण में उद्दालक अरुण का शिष्य है। 'शिरीष' कुमुदादिगण और वराहादिगण (पा०४।२।८०) में पठित है। विदग्ध या विजग्ध भी वराहादिगण में पठित हैं। शैषिरी एक ही हैं, वर्णव्यत्यय हो गया है। शिशिर शब्द का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। पर्णी, और वरणा दोनों शब्दों वरणादिगण (पा० ४ ।२। ८२) में पढ़े हैं। हेमाद्रिप्रोक्त ऋद्ध्य, अयोध्य, अयोधेय शब्द हैं इनमें से भी यौधेयादिगण में यौधेय शब्द पठित है इस गणपाठ से यद्यपि हम विशेष कोई परिणाम नहीं निकाल सकते परन्तु क्योंकि इनमें बहुत से प्राचीन आर्ष नाम भी पढ़े हैं इस सहयोग से सम्भवतः ये शब्द शाखाकारों के मूल नाम हों। यही विकृत होकर स्थान २ पर दीखते हैं ऐसा विचार उत्पन्न होता है। अगले गवेषणाचतुर विद्वान् इससे कोई विशेष स्थिर परिणाम प्राप्त करें।

अभी तक शुक्ल शाखाओं के विषय में यह विचार प्रायः देखने में आता है कि याज्ञवल्क्य के ही १५ शिष्यों ने १५ शाखाएं चला दी हैं। परन्तु हमें यह विचार बहुत अधिक महत्व का नहीं जंचता है। हमारे विचार में इन समस्त शाखाकारों का याज्ञवल्क्य से कोई सीधा साक्षात् सम्बन्ध नहीं है। वे कदाचित् उसके एककालिक शिष्य भी नहीं थे। क्योंकि शत-पथ के वंशब्राह्मण में बहुत से शाखाकारों के नाम आते हैं जैसे याज्ञ-वल्क्य जिसका दूसरा नाम 'वाजसनेय' भी कहा जाता है वह स्वयं उद्दा-

लक का शिष्य है। उसका शिष्य आसुरि है। उद्दालक की प्रवर्त्तित शाखा का उल्लेख 'उद्दल' नाम से वायु पुराण में प्राप्त है। याज्ञवल्क्य से ६ पीढ़ी पूर्व 'वाजश्रवा' नाम के गुरु हैं। कदाचित् उनका दूसरा 'वाजसन' नाम हो, इससे भी इस शाखा का नाम वाजसनेय चलना सम्भव है। इस वंश के सबसे प्रथम गुरु 'आदित्य' का नाम है इससे 'ये 'आदित्य' से प्राप्त यजुर्वेद कहे जाते हैं। शिष्य परम्परा से अनन्त शिष्यों के पास पहुँच कर भी उनका ज्ञानरस वैसा का वैसा ही सारिष्ठ रहा इससे 'अयातयाम' कहाये। 'पाराशर' एक शाखाध्यायी हैं। परन्तु वंशब्राह्मण में पाराशरीपुत्र वार्कारुणीपुत्र के शिष्य और भारद्वाजीपुत्र के गुरु हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्डपुराण में 'वत्स' और वायु पु० में वात्स्य शाखा का नाम मिलता है भारद्वाजीपुत्र का शिष्य वात्सीपुत्र था। इसी प्रकार द्वितीय वंशब्राह्मण में शाण्डिल्य का शिष्य वात्स्य है। और जातुकर्ण्य का पाराशर्य है। चरणव्यूह, ब्रह्माण्ड और वायु ने गालव शाखा का नाम लिखा है। वंश ब्राह्मण में विदर्भी कौण्डिन्य का शिष्य गालव है। बौद्धायन, आदि का प्राय: सभी ने उल्लेख किया है। वंशब्राह्मण (१) शालंकायनी पुत्र का शिष्य बोधीपुत्र है। इसी प्रकार यदि सभी अन्य शिष्यपरम्पराओं का पता लग जाय तो और शाखाओं के प्रवर्त्तकों का विविरण भी स्पष्ट हो सकता है।

(ट)

मैत्रायणीयों के ७ भेद

मानव, वराह, दुन्दुभ, हारिद्रवीय, श्यामायनीय, ये शाखा सर्वत्र समान हैं। छागलेय का दूसरा नाम छागेय है। छगलिनो ढिनुक्। पा० ४। ३। १०९॥ में 'छागलेयिनः' ऐसा पाणिनिसिद्ध प्रयोग शाखाध्यायी शिष्यों के लिये आता है। छगली, कलापी के चार शिष्यों में से एक है। श्यामायन वैशम्पायन के शिष्यों में है, उसके शिष्य 'श्यामायनी' कहाये हैं। हारिद्रवीयों को पूर्व भी लिख आये हैं। उसका ब्राह्मण

में वर्णन आता है। अथर्वचरणव्यूह में 'हारितकर्ण:' लिखा है। यह वंश ब्राह्मण में भारद्वाजीपुत्र का शिष्य 'हारीतकर्णीपुत्र' है। श्याम शाखा का उल्लेख यजु० चरणव्यूह और विष्णु० पु० ने किया है। चैकेय भी अज्ञात सा नाम है।

(ठ)

चरक शाखाओं के १२ भेद

इन नामों में बहुत कम भेद है। हेमाद्रि ने 'ह्वरकाः' लिखा है। पं० महीदास ने चरकाध्वर्युओं को वरकाध्वर्यु इस नामान्तर से भी लिखा है। हेमाद्रि ने नारायणीय नामान्तर दिया है। बरतन्तु से 'वारन्तवीय' शब्द व्युत्पन्न होता है। चरणव्यूहों में यह शब्द विकृत कर दिया है। 'चारायण' आचार्य का नाम प्राचीन अर्थशास्त्रों में उपलब्ध होता है। कठ वैशम्पायन के साक्षात् शिष्य थे। पाणिनि सम्प्रदाय ने वैशम्पायन को ही चरक माना है। उसके ९ शिष्य माने हैं। आलम्बि, पलङ्ग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य, श्यामायन, कठ और कलापी। प्रचलित इन १२ नामों में केवल कठ, चरक और ऋचाभ का पता चलता है। बाकी सब वैशम्पायन के साक्षात् शिष्य नहीं हैं। 'वरतन्तु' सम्प्रदाय का नाम चरकों में है परंतु वह न वैशम्पायन के शिष्यों में हैं और न कलापी के शिष्यों में हैं। वे स्वतंत्र आचार्य प्रतीत होते हैं। वारायणीय को हेमाद्रि ने नारायणीय लिखा है। इस नाम से यजुर्वेद का पुरुष सूक्त (अ० ३१) और अगले अध्याय (३२) के द्रष्टा ऋषि नारायण हैं। और तैत्तिरीयारण्यक में नारायणोपनिषत् भी है। कदाचित् वही इस शाखा के प्रवर्त्तक हों। श्वेताश्वतर शाखा की इसी नाम से उपनिषद् प्राप्त है। निरुक्तकार यास्क ने औपमन्यव का उल्लेख किया है। पातण्डिनीय या पाषाण्डनीय यह नाम विकृत हैं। वैशम्पायन के नव शिष्यों में ताण्ड्य का नाम है। इसके शिष्य 'ताण्डिन्' कहाते हैं। अग्नि पुराण ने एक वैशम्पायनी शाखा भी स्वीकार की है। मैत्रायणी' शाखा की संहिता उपलब्ध है। आह्वरक शाखा का पता नहीं चला।

कठ वैशम्पायन के शिष्य प्रसिद्ध हैं। दिशा और देशभेद से प्राच्यकठ और कपिष्ठल कठों का भेद हुआ है। हरिद्रु कलापी का शिष्य है। उससे हारिद्रवीय शाखा चली, इसका उल्लेख हेमाद्रि ने किया है। ऋचाभ से आर्चाभ्य-आम्नाय (वेद) प्रसिद्ध है, जिसका उल्लेख यास्काचार्य ने निरुक्त में किया है।

(ड)

तैत्तिरीयों के शाखा-भेद

तैत्तिरीयों के मुख्य दो भेद हैं। औखेय और खाण्डिकेय। पाणिनि ने तित्तिरि, वरतन्तु, खण्डिक और उख इन चारों का नाम एक स्थान पर रखा है। तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्। वे चारों स्वतन्त्र आचार्य प्रतीत होते हैं। तित्तिर के शिष्य तैत्तिरीय, खण्डिक के शिष्य खाण्डिकीय और उख के शिष्य औखीय और वरतन्तु के 'वारतन्तवीय' कहाते हैं। तित्तिर वैशम्पायन के शिष्य नहीं थे। फिर उनकी शाखा कृष्ण क्यों कहाई यह विचारणीय है, विश्वरूप त्रिशिरा त्वाष्ट्र के एक शिरच्छेद से 'तित्तिर' उत्पन्न हुए, वहां अलंकार से तीन शिर वेद के वाचक हैं। यह विश्व-रूप के अध्यापित यजुर्वेदी कदाचित् तित्तिर नाम से विख्यात हुए हों। त्वाष्ट्र विश्वरूप शतपथ के द्वितीय वंश-ब्राह्मण में १४ वीं परम्परा में अश्वियों के शिष्य हैं।

खाण्डिकेयों के पांच भेद हैं आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ़, हिरण्य केश और कात्यायन। आपस्तम्ब मुनिप्रोक्त धर्म, गृह्य और श्रौत्र सूत्र और यज्ञ परिभाषा सूत्र उपलब्ध है। परन्तु वाजसनयों में भी एक बौद्धायन और 'बौधेय' नाम आते है। वंश ब्राह्मण में सालंकायनीपुत्र का शिष्य बौधीपुत्र मिलता है। हिरण्यकेशी संहिता प्राप्त है। इस शाखा के मानने वाले मिलते हैं। मानव गृह्यसूत्र हिरण्यकेशीय शाखा के हैं। कदाचित् पूर्वोक्त मानव शाखा मैत्रायणीयों का भेद होकर भी हिरण्यकेशीयों में सम्मिलित हों। 'कात्यायन' शाट्यायन शब्द का अपभ्रष्ट स्वरूप

प्रतीत होता है। शौनक चरणव्यूह में शाट्यायन का नाम है। इस नाम का श्रौतसूत्र प्राप्त है। ब्राह्मणों में भी स्थान २ पर यह नाम आता है। भारद्वाज का गृह्यसूत्र प्राप्त है। इसका वंश ब्राह्मण में भी कई बार नाम आया है। सत्यषाढों का श्रौतसूत्र उपलब्ध है। और शेष शाखा के भेदों का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। इन सब भेदों के अतिरिक्त अथर्वपरिशिष्ट चरणव्यूह में 'उपल' शाखा का नाम है। शुद्ध शब्द 'उपल' प्रतीत होता है। वह कलापी के चार शिष्यों में से है। वहां ही ताम्रायणीय नाम भी है। शुद्ध 'नौम्बुराविण:' प्रतीत होता है। 'तुम्बुरु' कलापी के चार शिष्यों में हैं। वायु पुराण में 'आरुणि' और 'आलम्बि' दो नाम और मिलते हैं। अरुण उद्दालक के गुरु हैं। दूसरे वैशम्पायन के नव शिष्यों में एक 'अरुण' है उसके शिष्य भी आरुणि कहाये। 'आलम्बी' वैशम्पायन के नव शिष्यों में एक हैं। और वंश ब्राह्मण में आलम्बायनीपुत्र का शिष्य आलम्बीपुत्र है।

इस प्रकार बहुत से नाम वंशब्राह्मणों में मिल जाते हैं और वे ही नाम शिष्यों में भी मिलते हैं। अत: किससे शाखा नाम चला, नहीं कहा जा सकता। कदाचित् नामों को ही पीछे से किसी भी रूढि के वश शिष्यादि रूप से कल्पित कर लिया हो। या एक ही नाम के बहुत से हो गये हों इत्यादि सभी समस्याएं अन्धकार में हैं। स्वल्प स्थान में हमने बहुत से नामों का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। आगे निर्णय करना विद्वानों का कार्य है। शतपथब्राह्मण में वंशब्राह्मण शतपथ (का० १० । ६ । ५ । ९ ॥ और का० १४ । ५ । १९-२२ ॥) तथा बृहदारण्यक उपनिषत् में एक वंशब्राह्मण दिया गया है उनकी शिष्य परम्परा भी देखने योग्य है।

(ढ)

उपवेद

वेदों के उपवेदों के विषय में भी मत भेद है। महर्षि दयानन्द संस्कारविधि में लिखते हैं कि—"ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, जिसको

वैद्यक शास्त्र कहते हैं, जिसमें धन्वन्तरिजी कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलि ऋषि कृत चरक आदि आर्षग्रन्थ हैं....यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिसको शस्त्रास्त्र विद्या कहते हैं। जिसमें अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं जो इस समय बहुधा नहीं मिलते। पुनः सामदेव का उपवेद गान्धर्व वेद जिसमें नारद संहितादि ग्रन्थ हैं अथर्ववेद का उपवेद अथर्ववेद जिसको शिल्प शास्त्र कहते हैं विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं। शौनकी चरणव्यूह परिशिष्ट में लिखा है—

ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः सामवेदस्य गान्धर्ववेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह भगवान्व्यासः स्कन्दो वा (ख० ४)

उस पर महीदास पण्डित ने लिखा है—धनुर्वेदो युद्धशास्त्रम् । गान्धर्ववेदः संगीतशास्त्रम् । अर्थशास्त्रं नीतिशास्त्रं, विश्वकर्मादिप्रणीतं शिल्पशास्त्रम् ।

सुश्रुत में लिखा है—'आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।' गोपथ ब्राह्मण में लिखा है—स दिशोऽन्वैक्षत ...ताभ्यः पञ्च वेदान्निरमिमत सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेदमितिहासवेदं पुराणवेदमिति। प्राच्य एव दिशः सर्पवेदं निरमिमत दक्षिणस्याः पिशाचवेदं प्रतीच्या असुरवेदमुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वायाश्च पुराणवेदम् ॥ गो० पू० १ । १० ॥

शतपथ (१३ । ४ । ३-१५) में लिखा है—(१) मनुर्वैवस्वतो राजा....तस्य मनुष्या विशः....अश्रोत्रियाः गृहमेधिनः....ऋचो वेदः। (२) यमो वैवस्वतो राजा....तस्य पितरो विशः....स्थाविराः ...यजूंषि वेदः। (३) वरुण आदित्यो राजा....तस्य गन्धर्वा विशः....युवानः... अथर्वाणो वेदः। (४) सोमो वैष्णवो राजा ...तस्याप्सरसो विशः.... युवतयः शोभनाः....आङ्गिरसो वेदः। (५) अर्बुदः काद्रवेयो राजा.... तस्य सर्पा विशः ...सर्पाश्च सर्पविदश्च....सर्पविद्या वेदः। (६)

कुबेरो वैश्रवणो राजा रक्षांसि विशः .. सेलगाः पापकृतः....देवजनविद्या वेदः (७) धान्वो राजा....तस्य आसुरा विशः....कुसीदिन....मायावेदः। (८) मत्स्यः सांमदो राजा .. तस्य उदकेचरा विशः....मत्स्याश्च मत्स्य-हनश्च....इतिहासो वेदः। (९) तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजा ...वयांसि च वायोविद्यिकाश्च....पुराणं वेदः। (१०) इन्द्रो राजा....देवा विशः श्रोत्रिया अप्रतिग्राहकाः....सामानि वेदः।

इसी प्रकार आश्वलायन और शाङ्खायन श्रौतसूत्र में भी ४ वेद और उपवेदों की गणना की है। और भी कतिपय उपवेद बने जिस प्रकार भरत मुनि का नाट्यवेद प्रसिद्ध है। वह उसको यजुर्वेद से निकला स्वीकार करते हैं। चरणव्यूहोक्त यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के उपवेदों पर दृष्टि करें तो धनुर्वेद और अर्थवेद एक दूसरे के सहयोगी हैं। धनुर्वेद युद्धशास्त्र है और अर्थवेद में नीति शास्त्र,शस्त्रास्त्र-शास्त्र और शिल्पशास्त्र तीनों सम्मिलित हैं असुर वेद या मायावेद धनोपार्जन की विद्या है, वह अर्थवेद से भिन्न नहीं है। आंगिरस वेद, विषवेद या सर्पवेद, ये सभी आयुर्वेद में सम्मिलित हैं। उन ही अंग उपांग विद्याओं का अधिक विस्तार हो जाने से उनके पृथक् २ नाम हो गये हैं।

(ण)

यजुर्वेद का प्रतिपाद्य विषय

यजुर्वेद में राज्यशासन, शासन-विभाग, राष्ट्र-विजय, राज्याभिषेक, तथा युद्धादि का वर्णन पर्याप्त विद्यमान् है। इसलिये उसकी मुख्य अंग-विद्या 'धनुर्वेद' सुतरां उपयुक्त है। इससे वैशम्पायन मुनिकृत नीतिप्रकाशिका और वसिष्ठ और विश्वामित्र कृत धनुर्वेद आदि उत्तम उपयोगी ग्रन्थ हैं।

राज्य विषयक रचनाओं आदि का स्थान २ पर जो हमने अपने भाष्य में वर्णन किया है वह अभी और भी बहुत विचारने योग्य है। सो भी यजुर्वेद में किस रीति से राजनीतिशास्त्र का कितना अधिक वर्णन है और

उसी के गर्भ में राज्य के समान ही ब्रह्माण्ड के राजा परमेश्वर, गृह के राजा गृहपति और देह के राजा आत्मा एवं द्यौः, अन्तरिक्षं, और पृथिवी के राजा क्रम से सूर्य, वायु और अग्नि एवं प्रतिनिधि वाद से सोम, वरुण, आदि नामों से राजा आदि का वर्णन किस प्रकार किया है। भाष्य को धैर्य से और मननपूर्वक देखने से विदित हो जायेगा।

प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य में यह यत्न किया गया है कि जहां तक सम्भव हो सरल, बुद्धिगम्य प्रस्फुट अर्थ पाठकों को विदित हो। अन्य पक्षों को भी प्रस्तुत भाष्य में यथास्थान दर्शाया है। कर्मकाण्ड के प्रकरण की हमने उपेक्षा की है क्योंकि उसके विवरण के लिये सब्राह्मण मूलमन्त्र के व्याख्यान की आवश्यकता है। उसके लिये विशाल ग्रन्थ अपेक्षित हैं। जिन पक्षों पर महर्षि दयानन्द ने अपने आकर-भाष्य में प्रकाश डाला है उनको पिष्टपेषण जानकर विशेष रूप से नहीं दर्शाया गया है। महर्षि के पदार्थभाष्य की तुलना प्राचीन किसी भाष्य से भी नहीं की जा सकती। क्योंकि वे यज्ञपक्षीय हैं और महर्षि का पदार्थ-भाष्य सर्वतोभद्र है। भाषान्तरकार बहुत से स्थलों पर महर्षि के भावों को सुसंयत भाषा में स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। बहुत से स्थलों पर भाव विकृत भी कर दिया है। पदार्थ भाष्य में महर्षि दयानन्द ने जितने पक्षों को दर्शाने का कौशल दर्शाया है भाषान्तरकारों ने उस पर विशेष विचार नहीं किया है। महर्षि दयानन्द मार्गदर्शी गुरु हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं।

भूमिका में जितने अंशों को दर्शाया है उससे अतिरिक्त बहुत से विषय महर्षि दयानन्द ने स्वयं 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' में दर्शा दिये हैं। उन को सर्वविदित जानकर यहां पिष्टपेषण नहीं किया गया।

तृतीय संस्करण

प्रथम संस्करण माघ १९८६ विक्रमाब्द में और द्वितीय संस्करण १९९६ में छपा था। वेदप्रेमी जनता ने अभिरुचि दिखाई और तृतीय

संस्करण निकालना आवश्यक हुआ। तृतीय संस्करण में दण्डान्वय में मन्त्रार्थ दिये हैं ताकि पाठक सरल विधि से मन्त्रार्थ समझ लें वेदगुरु ऋषिदयानन्द संमत देवता और छन्दों को ही इसमें प्रमुखता दी है।

यह मेरा परिश्रम गुणग्राहियों के लिये है। गुणग्राही सज्जनों को मेरे सहस्रों दोषों में से भी गुण दिखाई देंगे। और वे उसको अपने स्वभाव के अनुसार हंस के समान अवश्य ग्रहण करेंगे।

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते॥

अजमेर
श्रावण पूर्णिमा
२०१० वैक्रमाब्द

विद्वानों का अनुचर—
जयदेवशर्मा विद्यालंकार,
मीमांसातीर्थ।



विषय-सूची

प्रथमोऽध्यायः (पृ० १-१७)

मन्त्र (१) परमेश्वर से अन्न बल की प्रार्थना। रोगरहित पशु सम्पति की इच्छा। दुष्ट पुरुषों का नाश। (२) प्रभु से तेजोवृद्धि की प्रार्थना। (३) सहस्त्रधार और शतधार वसु। (४) विश्वकर्त्री और विश्वधात्री शक्ति। (५) व्रतपति का आराधन। (६) सर्वनियोजक प्रभु। (७-९) दुष्टों का दमन। (१०,११) अन्न,एश्वर्य की प्राप्ति। (१२)सूर्य और जल के कर्म। (१३) नेता का वरण। (१४,१५) राजा के दुष्टों के दमन कर्त्तव्यों का वर्णन मुसल और पाषाण के दृष्टान्त से। (१६) दुष्टों का न्यायविभाग द्वारा अपराधविवेचन, दमन। (१७,१८) शत्रुवध। (१९) प्रजाओं की रक्षा। (२०) राष्ट्र के दीर्घ जीवन के लिये राष्ट्रपति की स्थापना। (२१) योग्यों से योग्यों के मिलने का उपदेश। (२२) पति पत्नी के दृष्टान्त से राष्ट्र का वर्णन। (२३) राजा को कार्यकाल में निर्भय होने का उपदेश। (२४) वीर पुरुष से शत्रुओं का नाश। (२५,२६) राजा का पृथ्वी के प्रति कर्त्तव्य। (२७) राष्ट्र के ब्रह्म क्षत्र, वैश्य की वृद्धि। (२८) युद्ध-यज्ञ। (२९, ३०) दुष्टों के दमनार्थ सेना। (३१) आयुधों का स्वरूप।

द्वितीयोऽध्यायः (पृ० १८-३४)

(१) प्रजावृद्धि के लिये राजा का अभिषेक। (२) राजा आदि का स्वागत। (३) तेजस्वी विद्वान्, मित्र और वरुण के कर्त्तव्य। (४) विद्वान् अग्रणी की स्तुति। (५) तेजस्वी राजा। (६) राजा, अधिकारी और प्रजाओं का अधिकार। (७) राजा का अभिषेक, राष्ट्र चालकों के वेतन स्वधा। (८) राजा की आज्ञा का पालन। (९) दूतस्थापन,

सत्पुरुष रक्षा, ऐश्वर्य प्राप्ति। (१०) आत्मबल, सत्य आशीर्वाद, और ज्ञान की याचना। (११) उत्तम माता पिता की शिक्षा की प्राप्ति और उत्तम स्वास्थ्य। (१२) यज्ञपति की रक्षा। (१३) यज्ञ सम्पादन। (१४) अग्नि स्वरूप राजा और उसके अधीनों की वृद्धि। (१५) विजय ऐश्वर्यवृद्धि, द्वेषी पुरुष का पराजय, युद्धोपयोगी सेनाबल। (१६) राजा का अभिषेक, उसकी रक्षा, राज्य की प्राप्ति। (१७,१८) राष्ट्र की की सीमा रक्षा। (१९) अग्नि और वायु दो अधिकारी। (२०) दुःख, अविद्या, पाप से रक्षा, सुख शान्ति, उत्तम ज्ञान की प्राप्ति। (२१) वेदमय देव। (२२) आधिभौतिक यज्ञ। (२३) प्रश्नोत्तर। (२४) शुद्ध मनन शक्ति, तेज और ऐश्वर्यों और शुद्धि की प्रार्थना। (२५) राष्ट्र में व्यापक राजशक्ति। (२६) तेज और बल की प्रार्थना। (२७) उत्तम गृहस्थ। (२८) व्रत-पालन। (२९) उत्तमों का पालन और दुष्टों का दमन। (३०) नीच लोगों का निर्वासन। (३१,३२) वृद्धजनों की प्रसन्नता और आदर। (३३) उत्तम सन्तान निर्माण। (३४) पिता, माता, वृद्ध जनों का तर्पण।

तृतीयोऽध्यायः (पृ० ३५–५६)

(१,४) अग्निचर्या और ईश्वर–उपासना। (५) अग्न्याधान, राज-स्थापन। (६-८) सूर्य और पृथ्वी। (९,१०) प्रातः सायं हवन में ईश्वर-उपासना और भौतिक तत्व। (११) यज्ञ में मन्त्रोच्चारण। (१२) परमेश्वर (१३) राजा और सेनानायक। (१४) राजा का उच्चपद। (१५) राजा और विद्वानों का संग। (१६) शक्तियों का दोहन। (१७,१८) दीर्घ जीवन की प्राप्ति। (१९) तेज की प्राप्ति। (२०) उत्तम अन्न। (२१,२२) प्रजाओं और पशुओं की सम्पदा। (२३) ईश्वर और राजा। (२४) परमेश्वर समान, प्रजा के प्रति पिता के तुल्य राजा। (२५) उसका कर्त्तव्य। (२६) ज्ञान, न्याय, दुष्टमन। (२७) (राजा का उत्तम संकल्प। (२८) योग्य की नियुक्ति। (२९) राजा

के कर्त्तव्य । (३०) रक्षा की प्रार्थना । (३१) व्यवस्थित राष्ट्र । (३२) दमन का लक्ष्य । (३३) विद्वानों के लक्षण । (३४) राजा का कर्त्तव्य । (३५) पापनाशक परमेश्वर राजा । (३६) राजा का अपराजित रथ । (३७) प्रजा, पशु, अन्न की रक्षा । (३८,३९) सम्राट् और गृहपति राजा के कर्त्तव्य । (४०) नेता विद्वान् का कर्त्तव्य, (४१,४२,४३) गृहपति, गृहजनों, प्रजा और अधिकारीजनों का परस्पर सद्भाव, अभय होना । (४४) विद्वानों का आमन्त्रण, (४५) दुश्चरित्र-त्याग । (४६) कर-व्यवस्था । (४७) श्रम, और वेतनों की व्यवस्था । (४८) राजा के कर्त्तव्य । (४९,५०) व्यापार वृद्धि । (५१–५४) दीर्घजीवन के लिये ज्ञानवृद्धि । (५५) ज्ञान और दीर्घायु । (५६) ज्ञान, प्रजासम्पत्ति । (५७) राजा के हाथ पांव श्रमी । (५८) दुखःनाशक उपाय । (५९) सब प्राणियों का सुख और रोगनाश । (६०) बन्धन-मोचन । (६१) वीरों का कर्त्तव्य । (६२) त्रिगुण आयु । (६३) घातक कारणों से प्रजा की रक्षा ॥

चतुर्थोऽध्यायः (पृ० ५६–७३)

(१) देवयजन की बाधाओं से रक्षा । (२) आप्त जनों के कर्त्तव्य, दीक्षा और तप, (३) राजा का कर्त्तव्य । (४) देव से पवित्रता की प्रार्थना । (५) आशीर्वाद की याचना । (६) यज्ञ का व्रत । (७) अध्यात्म, आधिभौतिक यज्ञ (८) ईश्वर और राजा का वरण, ऐश्वर्य की प्राप्ति । (९) यज्ञसमाप्ति तक रक्षा प्रार्थना । (१०) बल, शरण, कृषि । (११) व्रताचरण, रक्षा । (१२) जलों के दृष्टान्त से आप्त पुरुष (१३) वीर्यरक्षा (१४) राजा की सावधानता । (१५) मन, आयु, प्राण, चक्षु आदि शक्तियों की प्राप्ति । (१६) स्तुत्य ईश्वर और राजा से ऐश्वर्य की याचना । (१७) मन और वाणी शक्ति से ईश्वरोपासना । (१८) वाणी की साधना । (१९) वाणी शक्ति । (२०) मोक्षार्थ ब्रह्मविद्या । (२१) पृथ्वी, ब्रह्मशक्ति । (२२) राजा प्रजा के कर्त्तव्य ।

पञ्चमोऽध्यायः (पृ० ७३–९५)

षष्ठोऽध्यायः (पृ० ९५–११२)

का पात्रों में प्रदान। (१४) वाक्, प्राण, चक्षु आदि का व्रतदीक्षा में परिशोधन। (१५) मन आदि की शक्ति वृद्धि। (१६) दुष्ट भावों का दूरीकरण (१७) पाप परिशोधन। (१८) मन आदि की शुद्धि। (१९) स्वास्थ्य के लिये घृत आदि का सेवन। (२०) शरीर में प्राण आदि के कार्य। (२१) मनुष्य के कर्तव्य। (२२, २३) राजा के कर्त्तव्य। (२४) स्वयंवर विवाह। (२५) स्वयंवर विवाह के प्रयोजन। (२६, २७) राजा की स्थिति और सेवाकार्य। (२८) वैश्य प्रजा के कर्त्तव्य। (२९) योद्धाओं की वृत्ति। (३०, ३१) प्रजा का कर्त्तव्य। (३२-३४) राजा व प्रजा के कर्त्तव्य। (३५) राजा का परस्पर अभय। (३६) परस्पर परिचय। (३७) राजा का स्वरूप।

सप्तमोऽध्यायः (पृ० ११२–१४१)

(१) आज्ञापक और आज्ञापद का सम्बन्ध। (२) परस्पर आत्मसमर्पण। (३-६) राजा का सूर्यपद आदि। (७) वायु-प्राण-वत् राजा। (८) सेनापति और न्यायकर्त्ता। (९,१०) मित्र और वरुण (११) सूर्य चन्द्रवत् राजा प्रजा के सप्रेम व्यवहार। (१२, १३) मदमत्तों के दमन योग्य अधिकारी (१४) राजा की उच्च स्थिति। (१५) राजा और उसके सहायक। (१६) बालकवत् राजा। (१७, १८) आक्रामकों के नाशक पुरुष की नियुक्ति। (१९, २०) मुख्य पदों पर सर्वोच्च अधिकारी। (२१) सोम राजा। (२२) इन्द्र पद। (२३) मित्र और वरुण पद। (२४) वैश्वानर सम्राट्। (२५) सम्राट् का अभिषेक। (२६) उच्चपद। (२७, २८) शरीर के अंग और प्राणवत् राज्यांग। (२९) अधिकारियों का राजा से परिचय। (३०) संवत्सर की ऋतुओं, मासों के समान राज्यपद विभाग। (३१, ३२) नायक और सेनापति के इन्द्र और अग्नि पद। (३३, ३४) विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति। (३५, ३६, ३७, ३८) मरुत्वान् इन्द्र = सेनापति।

अष्टमोऽध्यायः (पृ० १४१–१७०)

नवमोऽध्यायः (पृ० १७०–१९२)

विजयी पुरुष का सर्वोपरि पद। (६) जल-ओषधि के समान राजा। (७, ८) वायु, मन, गन्धर्वों के समान वेगवान् अश्व, शिल्पयन्त्र। (९) वेगवान् सेनापति। (१०) उत्तम शासन में सुख। (११, १२, १३) सैनिकों को उपदेश। उनका विजय में सहयोग। (१४–१७) अश्वारोहियों के कर्त्तव्य। (१८) उत्तम मार्गों से गमन और रक्षा। (१९) सैनिकों की पवित्र दीक्षा। (२०) प्रजापति के १२ स्वरूप। (२१) यज्ञ से आयु, प्राण आदि प्राप्ति। (२२) ऐश्वर्य वृद्धि। माता पृथिवी का आदर, राष्ट्रशक्ति के नियम और कृषि सम्पत्ति। (२३) प्रजा की सम्पत्ति और शासकों को अप्रमाद का उपदेश। (२४, २५) प्रजापालक का कर्त्तव्य। (२६, २७) मुख्य विद्वान् ब्राह्मण की सर्वोपरि स्थापना। (२८, २९) विजयी नेता और न्यायाधीश के कर्त्तव्य। (३०) राजा का अभिषेक। (३१–३४) १७ प्रकार के अक्षय बलों से राष्ट्र का वशीकार। (३५, ३६) राजा और उसके नाना प्रकार के नायक। (३७) शत्रु विजय। (३८) दुष्ट वध। (३९, ४०) इन्द्र आदि की स्थापना और सिंहासनारोहण।

दशमोऽध्यायः (पृ० १६२ २०६)

राज्याभिषेक (१) अभिषेक योग्य जलों की प्रजाओं से तुलना। (२–४) सिंहासनारोहण। (५, ७) राजोत्पादक प्रजाएं। (८) बालकवत् राजोत्पत्ति। (९) गृहपति और राष्ट्रपति। (१०–१४) दुष्ट-नाश। राज-रक्षा। (१५) राजा की शोभा। (१६) मित्र और वरुण का उदय। (१७) ऐश्वर्य और तेज से अभिषेक। (१८) राज्याभिषेक प्रस्ताव। (१९) अभिषेक वर्णन। (२०) अधिकार दान। (२१) योग्यता और अधिकार। (२२) राष्ट्र संयमन। (२३, २४) राज-प्रतिष्ठा और स्तुति। (२५) राजा के कर्त्तव्य। (२६) राजगद्दी। (२७) सम्राट् वरुण। (२८, २९) उसके कर्त्तव्य। (३०) उन्नतपद। (३१) बल परिपाक का उपदेश। (३२) अन्न दृष्टान्त से शत्रु-

नाश और राष्ट्रसाधन। (३३) स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। (३४) राष्ट्र के व्यापक शक्तिमान् को मुख्याधिकार।

एकादशोऽध्यायः (पृ० २०६–२३६)

(१) योगी। (२–४) योगद्वारा ज्ञान प्राप्ति। (५) विद्वानों से ज्ञान का श्रवण। (६) परमेश्वर। (७) प्राण शक्ति। (८) योगयज्ञ और उसका शास्त्र बल से सम्बन्ध। (९–११) योग नररत्न (१२) उत्तम और न्यायकारी पद। (१३) दो उत्तम अधिकारियों की नियुक्ति। (१४) ऐश्वर्यवान् पुरुष को उच्च पद। (१५) गणपति पद की योजना। (१६) तेजस्वी, समृद्ध नेता। (१७) विद्वान्। (१८) विद्वान् नेता की योग्य अश्व से तुलना। (१९) वीर नेता। (२०) राजा का बिराट् रूप। (२१) उत्तम नररत्नों की उत्पत्ति। (२२, २३) नेता का आदर। (२४) राजा को अग्नि के समान तेजस्वी बनाना। (२५, २६) अग्नि सेनापति। (२७) वीर पुरुषों को नियुक्ति। (२८) नेता का प्राप्त करना। (२९) नायक की समुद्र से तुलना (३०) राजा प्रजा का सम्बन्ध। (३१) गृहस्थ के समान राजा। (३२) नेता अग्नि। (३३) वृत्रहन्ता नेता। (३४) विजयार्थ उत्तेजना। (३५) योग्य पदाधिकारी। (३६) होतृ पद पर बिद्वान्, उसके लक्षण और कर्त्तव्य। (३७) अग्नि नेता को उपदेश। (३८) प्रजाओं के कष्ट निवारक। (३९) प्रजा का कर्त्तव्य। (४०) राजकीय पोशाक प्राप्ति। (४१) आदरणीय उन्नत पद। (४२) सूर्यवत् राजा। (४३) गर्भगत बालकवत् नवाभिषिक्त राजा। (४४) दृढ़ तथा ऐश्वर्यवान् राजा (४५) राजा का प्रजाओं के लिये कल्याणकारी, कृपालु होना। (४६) तेजस्वी राजा की मेघ से तुलना। (४७) राजा सेनापति और वीर सैनिकों की वायु और ओषधियों से तुलना। (४८) ओषधि और प्रजा। (४९) प्रजा। (५०–५२) आप्त प्रजाओं के कर्त्तव्य। (५३) प्रजाओं के आरोग्य के लिये उत्तम विद्वान् की नियुक्ति। (५४) सूर्यर-

रश्मियों से वीर सैनिकों की तुलना। (५५, ५६,) राजसभा। (५७) हांडी के तुल्य पृथ्वी की उत्पत्ति। (५८) विद्वानों, क्षत्रियों, व्यापारियों, और श्रमिकों के कर्त्तव्य। (५९) विदुषी माता। (६०) पुत्रपुत्रियों की शिक्षा। (६१) विदुषी माताओं का कर्त्तव्य। (६२) स्त्री का अधिकार। (६३) योग्य पति। (६४) स्त्री। (६५) विद्वानों का कर्त्तव्य। (६६) आत्मिक शक्ति या और उनके प्रयोग। (६७) ईश्वर का आश्रय। (६८) पतिपत्नी का कर्त्तव्य। (६९) स्त्री का उदय। (७०) वीर्यवान् पुत्र। (७१) स्वयंवर का सिद्धान्त। (७२) श्रेष्ठ स्त्री की प्राप्ति (७३) पति का सत्कार। (७४) निर्लोभ स्त्री। (७५) अश्व के तुल्य राजा का पोषण। (७६) वेदि में अग्नि के समान पृथ्वी पर राजा का स्थापन और वर्धन। (७७) राजा का आग्नेय रूप। (७८, ७९) दांतों और दाढ़ों के दृष्टान्त से दुष्टों का दमन। (८०) शत्रु-नाश। (८१) ब्राह्म बल और क्षात्र बल की वृद्धि। (८२) शत्रुबल का विनाश। (८३) नीरोग अन्न।

द्वादशोऽध्यायः (पृ० २३६–२७६)

(१) तेजस्वी राजा। (२) राजा का पोषण। (३) क्रान्तदर्शी का वर्णन (४) श्येन के दृष्टान्त से राजा और राष्ट्र के अंगप्रत्यंग। (५) राजा के नाना अधिकार और कर्त्तव्य। (६, ७) राजा की नाना समृद्धि। (८) पुनः ऐश्वर्यप्राप्ति। (९, १०) देशान्तरों से ऐश्वर्य-आहरण (११) ध्रुव पद पर राजा। (१२) श्रेष्ठ राजा। (१३) राजा का अभ्युदय। (१४) उसके नाना पद और आदर। (१५) पृथिवी माता के प्रति राजा की स्थिति। (१६) शत्रुदमनकारी परंतप राजा। (१७) सर्व कल्याणकारी होने का उपदेश। (१८) नामक। (१९) उसके तीन प्रकार के तेज। (२०–२३) तेजस्वी राजा। (२४) अग्नि के समान राजा। (२५) सूर्य के समान राजा। (२६) राजा का अन्न। (२७) शत्रु-उच्छेद के लिये सेनापतिस्थापन।

(२८) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष। (२९, ३०, ३१) उसके गुण और कर्त्तव्य। (३२) शत्रु पर प्रयाण और राजा की रक्षा। (३३, ३४) विजयी राजा का आदर। (३५) योग्य राजा का वरण, उसकी शक्तिवृद्धि। (३६) गर्भोत्पत्ति के समान राजोत्पत्ति। (३७, ३८) जीवात्मा और राजा। (३९) बालक के समान माता पृथिवी पर राजा की स्थिति। (४०) समृद्धि प्राप्ति, विजय। (४१,४२) निन्दा और स्तुति में राजा का कर्त्तव्य। (४३) सत्यासत्य का निर्णय, न्यायकारिता। (४४) विद्वानों का पुनः शक्ति-उत्तेजन। (४५) चरों का नियोजन। (४६) आश्रितों के कर्त्तव्य। (४७) मुख्य विद्वान्। (४८) ज्ञानवान् पुरुष सूर्य के समान द्रष्टा। (४९) ज्ञानी पुरुष का शिक्षाकार्य। (५०) विद्वानों का प्रेम युक्त, द्रोहरहित होकर रहना। (५१) विद्वान् पुरुष का कर्त्तव्य (५२) ऐश्वर्य वृद्धि। (५३) राजसभा का वर्णन। (५४) राजसभा। (५५) सूर्य की रश्मियों से प्रजाओं की तुलना। (५६) वेद प्रजाओं का राजा को बढ़ाना। (५७) राजा प्रजा को प्रेम पूर्वक रहने का उपदेश। (५८, ५९) पुरोहित का कर्त्तव्य। (६०) दम्पति कर्त्तव्य। (६१) पृथ्वी, प्रजापति के कर्त्तव्य। (६२-६५) दण्ड शक्ति। (६६) साक्षी राजा। (६७-७२) कृषि (७३) पशुपालन। (७४) पति पत्नी आदि के तुल्य प्रेम वर्त्ताव। (७५) ओषधियों के १०७ धाम। मर्मों का ज्ञान। (७६-१०१) ओषधि गुण आदि। (१०२) परमेश्वर। (१०३) पृथ्वी और कृषि। (१०४) तेज का धारण। (१०५) अन्न और ज्ञान से आपत्तियों का नाश, (१०६, १०७) अन्यों को तेज और ज्ञान का प्रदान। (१०८) राजा प्रजा का परस्पर पोषण। (१०९) प्रजा की पशु सम्पदा से वृद्धि। (११०-११७) राजा विद्वान् और गृहपति के कर्त्तव्य।

त्रयोदशोऽध्यायः (पृ० २७६-३०४)

(१) उत्तम विद्वानों के आधीन राजा। (२, ३) ब्रह्म शक्ति।

(४) प्रजापति। (५) शरीर गत प्राणों में वीर्य के समान तेजस्वी राजा। (६–८) सर्पण स्वभाव दुष्टों के दमन में गुप्तचरों का नियोजन। (९) बल से दुष्टों का दमन और मातङ्गबल से प्रयाण। राज्यवृद्धि और शत्रु का तीव्रास्त्रों के नाश। (१०) वीर सैनिकों और तीव्र अश्वारोहियों से नाश का धावा, अशनि नामक अस्त्र। (११) प्रजा के कष्ट का श्रवण, राजा का दूत प्रेषण और प्रजापालन। (१२) प्रजा के व्यथादायी शत्रुओं पर आक्रमण और उनका निर्मूलनाश। (१३) दिव्यास्त्रों का निर्माण, तथा शत्रुओं की रसद पर रोक। (१४) सूर्य के समान राजा का करग्रहण। (१५) सूर्य के समान राजा। (१६) राजशक्ति की सुरक्षा। (१७, १८) नौका के दृष्टान्त से प्रजा (१९) उनके रक्षक पति। (२०, २१) दूर्वा के दृष्टान्त से राजशक्ति,। (,२२ २३) सूर्यवत् प्रजा का अभिलाषापूरक। (२४) तेजस्वी राजा और प्रजा। (२५) वसन्तवत् राजा। (२६) अषाढ़ा सेना। (२७–२९) वायु, जल, ओषधि, दिन, रात्रि, भूमि, सूर्य, वृक्ष, गौ आदि समृद्धि के मधुर होने की प्रार्थना। (३०) राजा का कर्त्तव्य प्रजा को सुखी रखना। (३१) पूर्व के सज्जनों का मार्गानुसरण। (३२–३३) समृद्धि की वृद्धि और व्यापक शक्तिमान् राजा। (३४) पृथ्वी की सम्पदा-वृद्धि। (३५) सम्राट् और स्वराट्। (३६) राजा का अश्वों पर वश। (३७) अश्वों के समान योग्य पुरुष। (३८) ज्ञान-धाराओं की आदि घृत धाराओं आदि से तुलना। यज्ञ और अध्यात्म। (३९) उत्तम विद्वान् पुरुष की उत्तम उद्देश्यों के लिये नियुक्ति। (४०) पुरुष की सूर्य और स्वर्ण से तुलना (४१) सूर्य और मुख्य शिरोमणि। (४२) उसका कर्त्तव्य। (४३) राजसभा, सदस्यों व सभापति के कर्त्तव्य। (४४) परमेश्वरी शक्ति का आदेश। (४५) विद्वान् ज्ञानी की रक्षा। (४६) सूर्य के तुल्य नेता और परमेश्वर। (४७–५१) पशु, मनुष्य, अश्व, गौ आदि दुधार पशु, भेड़, बकरी की रक्षा और हिंसकों का नाश। (५२) प्रजा

के कष्टों का श्रवण, उनका त्राण। (५३) नाना पदों पर योग्य नेता। (५४–५८) दिशा, प्राण और ऋतुभेद से राजा, आत्मा और सूर्य संवत्सर, बलों विद्वानों और यज्ञांगों के अनुरूप राष्ट्रांग।

चतुर्दशोऽध्यायः (पृ० ३०४–३२५)

(१) पृथिवी। (२) प्रजा की शिक्षा। (३) सुख, रणविजय एवं प्रजापालनार्थ राजा की स्थापना। (४) राजा और प्रजा का आदान-प्रतिदान। (५) राजशक्ति। (६) ग्रीष्म के समान राजा। (७) राजा और शासकों के प्राणों के दृष्टान्त से वर्णन। (८, १०) प्राणादि पालन। (९) वयस् और छन्दस् का दृष्टान्तों से स्पष्टीकरण। (११) राजा, सेनापति पुरोहितों के कर्त्तव्य। (१२) राजा, विश्वकर्मा। (१३) राजशक्ति के दिशा भेद से नाना रूप। (१४) राजा, विश्वकर्मा। (१५, १६) वर्षा, शरद् के तुल्य राजा। (१७) आयु प्राण आदि की रक्षा। (१८-१९) मा, प्रमा आदि शक्तियां। (२०) अग्नि आदि देवता। (२१, २२) नियामक राजशक्ति। (२३) राजा के नाना रूप। (२४–२६) राष्ट्र की नाना समृद्धियां। (२७) हेमन्तवत् राजा। (२८–३१) नाना प्रकार की ब्रह्मशक्ति, और राष्ट्र व्यवस्थाओं का देह की व्यवस्थानुसार वर्णन।

पञ्चदशोऽध्यायः (पृ० ३२५–३५४)

(१, २) शत्रु-पराजय, प्रजा का शिक्षण। (३) सुव्यवस्थित राष्ट्र और उत्तम राजा। (४, ५) राजा के नाना सामर्थ्य। (६, ७) नाना ऐश्वर्यों और कर्त्तव्यों पर वश करने का उपदेश। (८, ९) 'प्रतिपद्' आदि पदाधिकार। (१०–१९) दिशा और ऋतु-भेद से सूर्यवत् राजा का प्रताप। (२०) प्राणवत् राजा। (२१) नायक सेनापति। (२२) राजा की उत्पत्ति। (२३, २४) उसका स्वरूप। सूर्य के समान परन्तप राजा। (२५) वन्दनीय परमेश्वर और स्तुत्य राजा। (२६) उग्र राजा। (२७) सदा जागरणशील तेजस्वी राजा। (२८)

अग्नि के समान शक्तिपुत्र राजा। (२९-३६) तेजस्वी पुरुष। (३७) शत्रुनाश। (३८) कल्याणकारी होने का उपदेश। (३९, ४०) संग्राम विजय। (४१, ४२) सर्वाश्रय सर्वशरण राजा (४३) शक्तिमान् सर्वाह्लादक राजा। (४४) यज्ञ रूप, प्रजापति। (४५) रथी के समान राष्ट्र-सञ्चालक राजा। (४६) सेनाओं के स्वामी को सुचित्त होने का उपदेश। (४७, ४८) देदीप्यमान अग्नि के समान राजा की तेजस्विता। (४९) सर्वोच्च पद पर ज्ञानी अग्रणी नेता। (५०) उत्तम नेता का अनुसरण (५१) न्यायकर्त्ता का पद और सत्य कर्त्तव्य। (५२) प्रमादरहित नायक। (५३) मर्यादाओं का निर्माण। राजा का उत्तम आश्रय। (५४) राज्य सम्पादन और उत्तम कर्म। (५५) उत्तम मार्ग से प्रजा और गृह का चलाना। (५६) ऐश्वर्य वृद्धि। (५७) शिशिर से राजा की तुलना। (५८) राजा प्रजा और स्त्री पुरुष का उत्तम सम्बन्ध। (५९-६१) राजा के कर्त्तव्य। (६२) वीर सेनापति। (६३) राजशक्ति। (६४, ६५) राजशक्ति।

षोडशोऽध्यायः (पृ० ३५४-३७७)

रुद्राध्याय। (१) राजा रुद्र के मन्यु, इषु और बाहुओं को नमः। (२, ३, ४,) रुद्र की शान्तिकारिणी राज्यव्यवस्था। (५) भिषक् के समान राजा। (६) सेनापति और सैनिक। (७) सेनापति। (८) सेनापति और वीर योद्धा। (९) धनुष् से बाण प्रक्षेप। (१०) वीर का सशस्त्र रूप। (११) शस्त्रों द्वारा रक्षा की प्रार्थना। (१२) राजा के कर्त्तव्य। (१३, १४) शक्तिशाली की शक्तियों का आदर (१५,- (१६) प्रजा की अभय प्रार्थना। (१७-४६) नाना रुद्रों को नियुक्ति, मानपद, अधिकार, नियन्त्रण। (४७) सेनापति से प्रार्थना। (४८) उसके अधीन सुख से सम्पन्न होकर रहने की प्रार्थना। (४९) उसका सर्व दुखःहर रूप। (५०) राजा का प्रजा पर पहरा। (५१-५२) प्रजा की पीड़ा का नाश। (५३) सेनापति के सहस्रों आयुध। (५४) असंख्य

रुद्रों के बलों का विस्तार। (५४, ६३) नाना रुद्र अधिकारी। (६४, ६६) उनका मान, आदर ॥

सप्तदशोऽध्यायः (पृ० ३७८–४२५)

(१) वैश्यों का कर्त्तव्य। प्रजा के प्रति राजा का मान्य भाव। (२) कोटि २ प्रजा, पशु, सम्पदाओं की वृद्धि। (३) राष्ट्र की घटक कामधेनु प्रजाएं। (४, ५, ६,) सैवाल के दृष्टान्त से राजा की रक्षाशक्ति। मंडूकी प्रजा कर्त्तव्य। (७) राष्ट्र में सेनाकटक (छावनी) की स्थापना। (८) प्रभाव से शासन। (९) राष्ट्र का धारण। (१०) प्रजा को ज्ञानवान् करना, शत्रुविजय द्वारा राष्ट्रवृद्धि। (११, १२) राजा के तेज, बल और प्रभाव का आदर। उच्च, मान, आदर प्रदान। (१३) विद्वानों का उपहार (१४) ब्रह्मज्ञानी विद्वानों का पवित्र रूप। (१५) राजा और विद्वान्। (१६) अग्नि के समान तीक्ष्ण राजा। (१७) मुख्य राजा का अधीनों के प्रति कर्त्तव्य। (१८) राष्ट्र या साम्राज्य की उत्पत्ति मीमांसा। (१९) राजा की जागरूकता। (२०) राजा प्रजा की उत्पत्ति। (२१) विश्वकर्मा राजा का अवरों को पदाधिकार। (२२) शत्रु पक्ष को मोह में डालने वाली नीति से राज्य शासन का उपदेश। (२३) सर्वपालक, कल्याणकृत् विश्वकर्मा। (२४) राजा का सेनापति नियोजन। (२५) विद्वान् राजा का राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों का शासन। (२६) विश्वकर्मा, सबका पोषक राष्ट्रनिर्माता। सात प्राणों के समान सातों प्रकृतियों का नियामक। (२७) पिता आदि पद पर एवं शासकों का एक राजा। (२८) राजा के उत्तम राजा में प्रजाओं की उन्नति। (२९) सर्वोत्कृष्ट पद। (३०) सर्ववशकर्त्ता केन्द्रस्थ राजा। (३१) अवर्णनीय राजा। (३२) राजा के चार रूप। (३३) राजा का उग्ररूप सेनापति इन्द्र। (२८–३३) परमेश्वर। (३४) सैनिकों का सेनापति के सहयोग में विजय। (३५) विजयी, वशी राष्ट्रपति। (३६) महारथी। (३७–३९) शत्रु बल का ज्ञान करके शत्रु पर

आक्रमण। (४०) व्यूह-व्यवस्था। (४१, ४२) विजय-घोष। (४३) वीरों को उत्तेजना। (४४, ४५) भयंकर सेना का शत्रुपीड़न। (४६) अजेय सैनिक। (४७) शत्रु पर भ्रमोत्पादक प्रयोग। (४८) शस्त्रों के गिरते हुए सेवासमितियों के कर्त्तव्य। (४९) वर्म, ओषधि से रक्षा। (५०–५१) सेनापति का राजा के प्रति और अधीनों के प्रति कर्त्तव्य। (५२, ५३) राजा का कर्त्तव्य। (५४) राष्ट्रपति की रक्षा। (५५, ५६) यज्ञ और युद्ध की तुलना। (५७) तुरीय यज्ञ। (५८–६१) राजा। (६२) नायक के कर्त्तव्य। (६३, ६४) राजा के निग्रह और अनुग्रह के कर्त्तव्य। (६५, ६६) नायक। (६७) राजा का मोक्षप्राप्ति। (६८) उत्तम साम्राज्य। (६९, ७०) राजा। (७१) सहस्राक्ष राजा। (७२) उत्तम पालक और गौरव पूर्ण राजा। (७३–७५) राजसभा और सभासंचालन। (७६, ७७) तेजस्वी सभापति। (७८, ७९) विचारक सदस्य। सत्य ज्ञान प्राप्ति। (८०) विद्वानों का वर्णन। (८१) ऋत आदि सात प्रकार की विवेचना। (८२–८३) मुख्य सात सेना-विभाग के नायक। (८४) सात पालक। (८५) प्रजा के सात मुख्य अंग। (८६) दैवी प्रजा। (८७) सम्राट् पद की प्राप्ति और राष्ट्र। (८८) तेजस्वी राजा। (८९) राजा, मधुमान् ऊर्मि है। (९०) चतुरंग बल से युक्त सेनापति। (९१) राजा महान् देव। (९२) घृत का त्रिविध दोहन। (९३–९५) घृत की धाराओं का राज्यधाराओं के पक्ष में योजन। (९६) घृतधाराओं की उत्तम स्त्रियों से तुलना। (९७) उनकी कन्याओं से तुलना। (९८, ९९) यज्ञ और राष्ट्र॥

---

* ओ३म् *

यजुर्वेद-संहिता

प्रथमोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ [1]इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं
[2]प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा व स्तेन ईशत माघशंसो ध्रुवा
अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥

सविता देवता । (१) स्वराड् बृहती । मध्यमः (२) ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः स्वरः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! अन्न वृष्टि आदि पदार्थ और पुष्टिकारक रस प्राप्त करने के लिये तुझ सर्वोपास्य की उपासना करते हैं । ये प्राणिगण ! वायु रूप हैं, वायु द्वारा प्राण धारण करते हैं । उन का उत्पादक परमेश्वर ही सब सुखों और पदर्थों का प्रकाशक और प्रदान करने वाला है । वह अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म करने के लिये हमें प्रेरित करे और कभी न मारने योग्य, इन्द्रियस्थ प्राण गण, एवं यज्ञ योग्य गौएं और पृथिवी आदि सब खूब परिपुष्ट हों । तुम परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये प्राप्त करने योग्य हो ! प्रजाएं वा गौ आदि पशु गण ! वत्स पुत्र आदि सहित, रोगरहित, राजयक्ष्मा से रहित रहें । उन पर चोर डाकू आदि स्वामित्व प्राप्त न करें । पाप की चर्चा करने वाला नीच पुरुष तुम पर स्वामी न रहे । वे गौओं और भूमियों के पालक राजा और रक्षकपुरुष के अधीन स्थिररूप से बहुत

संख्या में बनी रहें। हे विद्वान् पुरुष ! तू भी यज्ञकर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष के पशुओं की पालना कर। शत० १।७।१।१-७॥

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधा असि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ॥२॥

यज्ञो देवता। स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे यज्ञमय परमेश्वर ! तू सब संसार को बसाने हारा, सब में व्यापक रूप से बसने वाला है। और श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ का परम पावन स्वरूप है। तू सब का प्रकाशक है, तू पृथिवी के समान सब का आश्रय देने वाला है। तू अन्तरिक्ष में निरन्तर गति करने वाले वायु का शोधक, तापक वा संचालन करने वाला है। समस्त प्राणियों का पोषक या धारण करने हारा है। तू सर्वश्रेष्ठ तेज या धारण सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त है। हे परमात्मन् ! तू हमें कभी मत त्याग। यज्ञ का पालक यजमान पुरुष भी तुझ से कभी वियुक्त न हो॥ शत० १।७।१।९-११॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥ ३॥

सविता देवता। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप शरीर में बसने हारे वसु आत्मा को पवित्र करने वाले और उसका सैकड़ों प्रकार से धारण पोषण करने वाले हो। हे परमेश्वर ! आप वसु आत्मा का सहस्रों प्रकार से धारण करने वाले होकर उसको पवित्र करने वाले हो। हे पुरुष ! सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, परमेश्वर ! तुझ को सैकड़ों धारण शक्ति से या धारण पोषण करने वाले सामर्थ्य से युक्त तथा उत्तम रीति से पवित्र करने वाले पावन सामर्थ्य से पवित्र करे। हे पुरुष ! तू किस-किस वेदवाणी या ईश्वर की परम पावनी किस-किस शक्ति का गौ के समान पुष्टि-प्रद ज्ञान, रस वा बल प्राप्त किया करता है ? शत० १।७।१।१४-१७॥

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष ॥ ४ ॥

विष्णुर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—वह परमेश्वरी शक्ति जिसका प्रकाश वेद द्वारा हुआ है वह समस्त संसार का जीवन रूप है । वह परमेश्वरी शक्ति विश्व को रचने वाली है । वह परमेश्वरी शक्ति समस्त जगत् को अपना परम रस पान कराने और सब को धारण-पोषण करने हारी है । हे यज्ञमय ! ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के भजन करने योग्य तुझ को प्रेरक आनन्द रस से दृढ़ करता हूँ । हे सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप इस आत्मा के ग्रहण करने योग्य विज्ञान और समर्पण करने योग्य आत्मा की रक्षा करो । शत० १ । ७ । १ । १७-२१ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

अग्निर्देवता । आर्ची त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सब के नेता परमेश्वर ! हे सब सत्यभाषणादि व्रतों, शुभकर्मों के पालक स्वामिन् ! मैं सत्यभाषण, सत्यकर्म सत्यज्ञान का आचरण करूंगा । उसको पालन करने में मैं समर्थ होऊं । मेरा वह सत्य व्रताचरण सफल हो । मैं यह व्रत धारण करता हूँ कि मैं मिथ्याभाषण, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरण से और ऋत अर्थात् सत्यमय वेद के विपरीत अनृत से दूर रह कर सत्य वेदों, प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों, सृष्टिक्रम और विद्वानों के संग, आत्मशुद्धि से प्राप्त भ्रमरहित सम्यक् परीक्षित निश्चित् तत्त्व को प्राप्त होऊं ॥ शत० १ । १ । १ । ११ ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

प्रजापतिर्देवता । आर्ची पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू जानता है कि तुझको कार्यों में कौन प्रेरित करता है ? हे पुरुष ! तुझको वह परमेश्वर ही उत्तम कार्य और सन्मार्ग में प्रेरित करता है । तुझको वह परमेश्वर किस प्रयोजन के लिये नियुक्त करता है ? तुझको वह परमेश्वर उस उत्तम २-कार्य सम्पादन के लिये नियुक्त करता है। हे स्त्री-पुरुषो ! और गुरुशिष्यो ! वह परमेश्वर तुम दोनों को उत्तम कर्म करने के लिये प्रेरित करता है । और वह तुम दोनों को शुभगुणों व विद्या के प्राप्त करने और पूर्ण जीवन प्राप्त करने के लिये या सर्वव्यापक परमात्मा को प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता है ।। शत० १ । १ । १ । ११–२२ ॥ १ । १ । २ । १ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

ब्रह्मशो देवता । प्राजापत्या जगती । निषादः स्वरः ॥

भा०—विघ्नकारी दुष्ट स्वभाव के पुरुष को संतप्त करो । दानशीलता से रहित परद्रव्यापहारी, निर्दयी पुरुषों को अपराध के अनुसार सन्तापित व दण्डित करना चाहिये । विघ्नकारी दुष्ट पुरुष खूब तप्त हों । और निर्दय शत्रु भी खूब सन्तप हों । इस प्रकार पृथिवी रूप समस्त यज्ञवेदि को विघ्नकारियों से रहित करके मैं महान् अन्तरिक्ष प्रदेश को भी अपने वश करूं; और दुष्टों का पीछा कर उनका नाश करूं ।। शत० १ । १ । २ । २–४ ॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः । देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता । अतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! तथा हे परमात्मन् ! तू शत्रुओं का विनाश कर एवं शकट की धुरा के समान प्रजा के भार को उठाने में समर्थ है । तू हिंसा

करने हारे का विनाश कर। और उसको दण्ड दे जो हमें पीड़ित करता है। और उसका नाशकर जिसका हम विद्वान् जन विनाश करें। हे राजन्! हे परमात्मन् तू विद्वान् पुरुषों का भार अपने ऊपर उठाने वाला, राष्ट्र को मलिन स्वभाव के दुष्ट पुरुषों से शुद्ध करने हारा, सब का सर्वोत्तम पालन करने हारा, सब का सर्वोत्कृष्ट प्रेमपात्र, विद्वान् पुरुषों को सर्वोत्तम उपदेश करने हारा, सब को प्रेम से अपने प्रति बुलाने हारा वा सर्वस्तुत्य है, हम तेरी नित्य उपासना करें। शत० १।१।२। १०-१२॥

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च॥९॥

विष्णुर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे यज्ञ! तू कुटिलता से रहित है, अन्न और ज्ञान का आधार और आश्रयस्थान है। हे यज्ञशील पुरुष! तू ऐसे यज्ञ को सदा बढ़ा। तू उसका त्याग मत कर। हे यज्ञ! तेरा यज्ञ पालक तुझे कभी त्याग न करे। हे यज्ञ! तुझे व्यापक सूर्य या परमेश्वर शासन करता, तुझे रचता और तुझ पर अधिष्ठाता रूप से विद्यमान है। वह ही महान् जीवनप्रद वायु के सञ्चालन करने के लिये है। विघ्न करने हारा दुष्ट हिंसक मार दिया जाय। पांचों अंगुलियां जिस प्रकार किसी पदार्थ को पकड़ती हैं उसी प्रकार पांचों जन यज्ञ में एकत्र होकर दुष्टों का निग्रह करें और जीवनोपयोगी सुखों का संग्रह करें। शत० १।१।२।१२-१२॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥ १०॥

सविता देवताः। भुरिग् बृहती। मध्यमः॥

भा०—सर्वप्रदाता, सर्वप्रेरक, सर्व दिव्य पदार्थों के उत्पादक परमेश्वर या राजा के उत्पन्न किये इस संसार में, या उसकी आज्ञा में

रहकर स्त्रीपुरुषों या सूर्य और चन्द्र की बाहुओं अर्थात् ग्रहण करने वाले सामर्थ्यों द्वारा, और पुष्टिकारक प्राण के ग्रहण और विसर्जन करने के सामर्थ्यों द्वारा, जाठर अग्नि के सेवन करने योग्य और अग्नि और जल इन द्वारा सेवन करने योग्य सुपक्व अन्न को ग्रहण करूं। शत० । १ । १ । २ । १७ ॥

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्या मुर्वन्तरिक्षमन्वेमि पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थे ऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥ ११ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—हे अन्न मैं तुझको प्राणियों के हित के लिये उत्पन्न करता हूँ। दान न देने के लिये नहीं मैं पुरुष सुखकारक परमात्मा के परम तेज को निरन्तर देखूं। मेरे घर के समस्त प्राणी पृथिवी पर सदा बढ़ें, मैं विशाल अन्तरिक्ष में भी जाऊं और उस पर भी वश करूं। हे सबके अग्रणी पुरुष! तुझको पृथिवीवासी पुरुषों के मध्य में सबको व्यवस्थासूत्र में बांधने के कार्य में, और इस अविनाशी पृथिवी के पृष्ठ पर स्थापित करता हूँ। तू देने और ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थों की रक्षा कर। शत० १ । १ । २ । २०—२३ ॥

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । देवीरापो अग्रेगुवो अग्रेपुवोऽग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥ १२ ॥

आपः सविता च देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सूर्य और जल दोनों पवित्र करने हारे हैं। उसी प्रकार प्राण और उदान इस देह में पवित्र करने वाले हैं। वे दोनों इस संसार और देहमय यज्ञ में वर्त्तमान रहते हैं। जलों को सूर्य के प्रेरक बल पर, छिद्ररहित और शोधन करने वाली किरणों द्वारा पवित्र करता हूँ। तब

वे जल दिव्यगुण युक्त होकर अन्तरिक्ष में व्यापक और अन्तरिक्ष या वातावरण को पवित्र करने वाले हो जाते हैं। पवित्र जल सदा उस ईश्वरनिर्मित ब्रह्माण्डमय यज्ञ को सबसे श्रेष्ठ पद पर प्राप्त कराते हैं। और धारण करने वाले यज्ञ के स्वामी को और पदार्थों को बनाने और रचने हारे यजमान को सबसे उत्तम पद पर स्थापित करते हैं। शत० १।१।३।१-७॥

[1]युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्ये प्रोक्षिता स्थ। [2]अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। [3]दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥ १३॥

(१) इन्द्रो देवता। निचृदुष्णिक्॥ ऋषभः। (२) अग्निः विराट् गायत्री। षड्जः। (३) यज्ञः भुरिग् उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे प्रजा के आप्त पुरुषो! तुम लोगों को ऐश्वर्यवान् राजा, राष्ट्र पर घेरा डालने हारे शत्रु के वध करने के संग्राम-कार्य में वरण करता है। और घेरा डालने वाले दुष्ट पुरुष के साथ होने वाले संग्राम में ही तुम लोग भी ऐश्वर्यवान् प्रतापी पुरुष को अपना नेता वरण किया करो। आप सब आप्त जन वीर्य और धन आदि में सपम्न होकर रहो। हे वीर पुरुष! अग्रणी नेता के प्रेमपात्र तुझको मैं दीक्षित करता हूँ। क्षत्रिय और ब्राह्मण या राजा और प्रजा दोनों के हित के लिये सम्पन्न प्रिय तुझ वीर पुरुष को जलों द्वारा अभिषिक्त करता हूँ। हे आप्त पुरुषो! आप सब लोग मिलकर इस उत्तम पुरुष को देवों द्वारा सम्पादन करने योग्य राजव्यवहार के लिए जलों से अभिषिक्त करें। और विद्वानों द्वारा संगत होकर करने योग्य व्यवस्थाकार्य के लिये अभिषिक्त करें। राजा प्रजा के प्रति कहता है—हे प्रजाजनो! यदि तुममें से जो कोई लोग अशुद्ध, त्रुटिपूर्ण होकर शत्रुओं से पराजित होकर पछाड़ खा गये हैं तो यह मैं

इस प्रकार आप लोगों को उस त्रुटि के दूर करने के लिये विशुद्ध, त्रुटि-रहित करता हूँ। शत० १।१।३।८।१२॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु॥ १४॥

यज्ञो देवता। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! तू प्रजा के लिये सुखप्रद है। तेरे द्वारा विघ्नकारी राक्षसों को नीचे दबा कर नष्ट किया जाता है। हमारे अधिकार और संपत्ति को हमें न देनेहारे अदानशील, दुष्ट पुरुष भी मार दिये जाते हैं। तू सचमुच इस अखण्ड पृथिवी की त्वचा के समान रक्षक है। अर्थात् जिस प्रकार त्वचा देह की रक्षा करती है उसी प्रकार बाह्य आघातों से तू पृथिवी निवासी प्रजा की रक्षा करता है। तुझको यह पृथिवीवासी प्रजाजन प्रत्यक्ष रूप में जानें। हे राजन्! तू वनस्पतियों का हितकारी जिस प्रकार मेघ बरसता है उसी प्रकार तू प्रजा के प्रति सुखों का वर्षक और अभेद्य रक्षक है। जिस प्रकार दृढ़ शिला अन्न आदि पदार्थों को चूरा २ कर देती है उसी प्रकार तू भी शत्रुओं को चकनाचूर कर देता है। तू विशाल मूल वाला, दृढ़ आधार वाला है। पृथिवी और उसके ऊपर बसने वाली प्रजा के त्वचा के समान संवरणकारी रक्षक लोग भी तुझे प्रत्यक्ष रूप में जानें। शत०।१।१।४-७॥

[1]अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। [2]हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि॥ १५॥

यज्ञो देवता (१) निचृत् जगती निषादः (२) याजुषी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! तू अग्नि का स्वरूप है। वेद आदि वाणियों के विस्तार करने का स्थान है। तुझको हम प्रजाजन शुभगुणों की प्राप्ति के निमित्त

स्वीकार करते हैं। तू काष्ठ के बने मूसल के समान शत्रुनाशक और बड़े भारी पाषाण के समान शत्रु का दलन करने वाला है। यह विद्वान् पुरुषों के उपकार के लिये ग्रहण करने योग्य अन्न या भोग्य पदार्थ है, वह तू राजा उसको शान्तिदायक रूप में तैयार कर। उत्तम रीति से दुःखशमन करने के लिये उसको उत्तम रीति से तैयार कर। हे अन्न आदि पदार्थों को तैयार करने वाले सत्पुरुष! तू आ। हे अन्न आदि पदार्थों को तैयार करने वाले पुरुष! तू आ। शत० १।१।४।८–१३॥

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳसंघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयःअपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु ²देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

वायुः सविता च देवते (१) ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः, (२) विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे राजन्! तू चोर डाकुओं को नाश करने वाला और मधुर वाणी बोलने हारा है। तू हमें अन्न आदि पदार्थ या प्रेरक आज्ञा वचन, परम विद्यादि पराक्रम तथा अन्यान्य बलकारी पदार्थों को प्राप्त करने का उपदेश कर। तुझ वीर राजा के द्वारा हम शत्रुओं को मार मार कर विजय करें। हे ज्ञानी राजन्! तू वर्षों में अधिक वायु होने से वर्षवृद्ध है। वृद्ध अनुभवी तुझको प्रत्येक पुरुष जाने। प्रजा में विघ्नकारी दुष्ट पुरुष पराजित और दूर हो, और शत्रुगण भी पछाड़ २ कर दूर कर दिये जायं। इस प्रकार विघ्नकारी दुष्ट पुरुष ताड़ित हों। हे प्रजागण! तुम्हारे बीच में व्यापक, ज्ञानी पुरुष धर्म अधर्म और बुरे भले का विवेक करें। सुवर्ण सम्पन्न सूर्य के समान प्रतापी राजा प्रजाजनों को त्रुटिरहित साधन से स्वीकार करे। शत० १।१।३।१८–२४॥

धृष्टिरस्यपाग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं

वह । ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ १७ ॥

अग्निर्देवता । ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू शत्रु को घर्षण करने, पराजित करने में समर्थ है । तू कच्चे, अपरिपक्व आयु वाले जीवों को खाने वाले को या रोगादि ज्वर को विनाश कर । और चिता की अग्नि अर्थात् मृत्युकारक कारण और उसके समान अन्य प्रजाघातक जन्तु को भी दूर कर । विद्वानों को परस्पर संगत करके उनको राष्ट्र में बसा । तू स्थिर है, इस कारण तू पृथिवी को दृढ़ कर । ब्राह्मणों को वृत्ति देने वाले, क्षत्रियों को वृत्ति देने वाले और अपने समान वीर्यवान् पुरुषों को भी वृत्ति देने वाले तुझ स्वामी पुरुष को शत्रु के वध करने के लिये स्थापित करता हूँ ।

[1]अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । [2]धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । [3]विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चितः स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

अग्निर्देवता (१) ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः । (२) आर्ची त्रिष्टुप् धैवतः (३) आर्ची पंक्तिः । पंचमः ।

भा०—हे शत्रुसंतापक और प्रजा के अग्रणी नेता राजन् ! तू वेद और वेदज्ञ पुरुषों को अपने आश्रय में ले । और अन्तरिक्ष की विद्या को उन्नत कर । (ब्रह्मवनित्वा०) इत्यादि पूर्ववत् ॥ तू राष्ट्र के धारण करने में समर्थ है । तू द्यौलोक की विद्या को उन्नत कर, (ब्रह्मवनित्वा०) इत्यादि पूर्ववत् । हे राजन् ! तुझे समस्त दिशाओं भले के लिये स्थापति करता हूँ । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग भी प्रजा को ज्ञान देने हारे और स्वयं ज्ञानवान् हैं । आप लोग सबसे ऊपर रहकर सबको ज्ञानवान् करने में

कुशल हो। आप लोग पाप और पापियों को भून डालने वाले और अङ्गारों के समान जाज्वल्यमान, तेजस्वी पुरुषों की तपश्चर्या से स्वयं तप करो।॥ शत० १। २। ५। १०-१३॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु॥१९॥

अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! तू प्रजा का शरण है। तेरे द्वारा राष्ट्र के विघ्नकारी राक्षसगण मार भगाये जांय। शत्रुगण भी पछाड़े जांय। तू अखण्ड पृथिवी की त्वचा वा ढाल के समान रक्षा करने हारा है। तुझे यह समस्त पृथिवी प्रत्यक्षरूप में अपना स्वामी स्वीकार करे। हे सेने! तू पालन करने के बल से युक्त, शत्रुओं का धर्षण करने में समर्थ है। पृथिवी को संवरण करने वाली प्रभुशक्ति तुझे प्राप्त करे। हे प्रभुशक्ते! तू सूर्य के समान प्रकाशयुक्त तेजस्वी विद्वानों का आश्रयभूत है। तू मेघ की कन्या बिजली के समान अतिबलवती या मेघ से उत्पन्न वृष्टि के समान सब का पालन करने वाली है। उत्तम फलदात्री पूर्वोक्त सेना तुझे प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करे॥ श० १। २। ५। १४-१७॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥ २०॥

सविता देवता। विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार अन्न समस्त प्रजाओं का धारण पोषण करता है उसी प्रकार तू भी प्रजा का धारण पोषण करता है। शिल्पी, विद्वानों और सत्तावान् राज पुरुषों को तृप्त कर। हे राजन्! प्राण अर्थात् राष्ट्र के जीवनधारण के हेतु बल की प्राप्ति, उदान अर्थात्

आक्रमण, चढ़ाई और पराक्रम के लिए, और व्यान अर्थात् समस्त राष्ट्र में विद्याओं के फैलाने के लिए स्वीकार करते हैं। अति विस्तृत उत्कृष्ट रूप से बन्ध करने वाली राज्य-व्यवस्था के प्रति लक्ष्य करके राष्ट्र के दीर्घ जीवन के लिए तुझ को राष्ट्रपति के पद पर हम स्थापित करते हैं। हे प्रजाजनो! तुम्हारा शासक सुवर्ण को हाथ में रखने वाला धनैश्वर्य-सम्पन्न राजा तुमको त्रुटिरहित हाथ से स्वीकार करे, तुम्हें अपनावे और तुम्हारी रक्षा करे। और हे राजन्! हम प्रजाजन तुझ को प्रजा के समस्त व्यवहारों का निरीक्षण करने के लिये नियुक्त करते हैं। तू बड़ी शक्ति-शालिनी, विशाल प्रजाओं का वीर्यमय अंश है॥ श० १। २। ५। १८—२२॥

[1]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।
[2]सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्॥२१॥

यज्ञो देवता। (१) गायत्री। ऋषभः। (२) विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—सर्वोत्पादक ईश्वर देव के शासन में या उसके बनाये संसार में, ब्राह्मण, क्षत्रिय या प्रजा और राजा की बाहुओं से, और सर्वपोषक वैश्यगण के हाथों से तुझको स्थापित करता हूँ। राष्ट्ररूप यज्ञ में दोषों के नाश करने वाले विद्वानों के साथ आप्त प्रजाजन मिला करें। ये दोष दूर करने वाले पुरुष साररूप बल से युक्त किये जायें। निरन्तर गमन करने वाले, दूरगामी रथ आदि साधनों के साथ धनैश्वर्य सम्पन्न प्रजायें युक्त होकर रहें। मधु अर्थात् ज्ञान से समृद्ध प्रजायें मधु अर्थात् अध्यात्म-आनन्द से सम्पन्न तत्व-ज्ञानी पुरुष से मिलें और आनन्द लाभ करें। शत०॥ १। २। ३। २—२॥

[1]जनयत्यै त्वा सं यौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् [2]अग्निष्टे

त्वचं मा हिंसीद् देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

(१) यज्ञो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) प्रजापतिसवितारौ । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! तुझको नाना प्रकार के ऐश्वर्य और पुत्र आदि उत्पादन करने में समर्थ पृथ्वीरूप स्त्री के साथ मिलाता हूँ । समस्त यह भाग पुरुष और स्त्री दोनों का है । हे पुरुष ! तुझको इच्छानुरूप वीर्य और अन्न आदि समृद्धि प्राप्त करने के लिए नियुक्त करता हूँ । हे पुरुष ! तू वीर्य सेचन में समर्थ साक्षात् यज्ञरूप प्रजापति है । तू पूर्णायु हो । तू बहुत विस्तृत होने में समर्थ हो । अतः खूब अधिक विस्तृत हो । हे गृहस्थरूप यज्ञ ! तेरा यज्ञपति गृहस्थ पुरुष प्रजा द्वारा खूब फले । हे स्त्री ! तेरे शरीर के अंगों को तेरा पति विनाश न करे । प्रेरक परमेश्वर तुझे अति सुखमय गृह में परिपक्व करे । शत० १ । २ । ६ । ३-४ ॥

मा भेर्मा संविक्था अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् । त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू मत डर । तू उद्विग्न मत हो । गृहस्थरूप यज्ञ सदा बलवान् रहे । और यज्ञशील पुरुष की सन्तान भी कभी ग्लानि-युक्त, मलिन, निर्बल न हो । हे गृहपते ! तुझको मैं तीन वेदों में पारंगत और दो वेदों में पारंगत और एक वेद में पारंगत होने के लिए नियुक्त करता हूँ । शत० १ । २ । ७ । १–५ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः । सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

द्यौर्विद्युच्च देवते । स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिः पंचमः ॥

भा०—(देवस्य त्वा०)पूर्ववत् [१ । २१] । हे बाहुवत् वीर पुरुष ! पोषक राजा के हाथों वा सर्वप्रेरक राजा के शासन में तुझ को मैं ग्रहण

करता हूँ। तू विद्वानों के निमित्त राष्ट्रयज्ञ के सम्पादन के लिए बनाया गया है। तू परमैश्वर्यवान् राजा का दायां हाथ है। हज़ारों को भून डालने में समर्थ है। सैकड़ों तेजों से तू दीप्त होता है। वायु के समान दूर तक फैलनेवाला, सूर्य के समान तेजस्वी और शत्रु का नाश करने वाला है।

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलंमा हिंसिषं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

सविता देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे पृथिवी! हे पृथिवी, तेज, वायु आदि के परस्पर संगत होने के आश्रयभूत! एवं विद्वानों और राजाओं के यज्ञ की स्थलि! मैं तेरे ऊपर बसी यव आदि ओषधियों के वृद्धि के कारण रूप मूल को विनाश न करूं। हे पुरुष! तू गौ आदि पशुओं के स्थान और सत्पुरुषों के गमन करने के निवासस्थान को प्राप्त हो। हे पृथिवी! तेरे ऊपर द्यौलोक निरन्तर उचित काल में वर्षा करे। हे शासक राजन्! सर्वोत्कृष्ट पृथिवी जो दुष्ट पुरुष हम से द्वेष करता है और जिसे हम भी अप्रिय समझते हैं, उसको सैकड़ों पाशों से बाँध। इस बंधन से उसको मत छोड़। शत० १।२।२।१६॥

[1]अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। [2]अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥ २६ ॥

सविता देवता। (१) स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिः, (२) भुरिक् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—इस पृथिवीवासिनी प्रजा के हित के लिये हिंसकस्वभाव शत्रु को विद्वानों के यज्ञस्थान से मैं क्षत्रिय पुरुष दूर मार भगाऊं। (वज्रं-गच्छ०) इत्यादि पूर्ववत्। हे प्रजापीड़क असुर पुरुष! तू सुख को मत प्राप्त कर। हे पृथिवी! तेरा उत्तम रस आकाश की तरफ़ मत जावे, शुष्क न हो। (वज्रं गोष्ठानं गच्छ०) पूर्ववत्॥

गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा॒ परि॑गृह्णामि। सु॒क्ष्मा चासि॑ शि॒वा चा॑सि स्यो॒ना चासि॑ सुष॒दा॑ चा॒स्यूर्ज॑स्वती॒ चासि॒ पय॑स्वती च २७॥

यज्ञो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

भा०—हे यज्ञमय प्रजासंघ! तुझको गायत्री छन्द से अर्थात् ब्राह्मणों के ज्ञानकार्य से मैं स्वीकार करूं, अपनाऊं। तुझको त्रिष्टुप् छन्द से अर्थात् क्षत्रियों के क्षात्रकर्म से स्वीकार करता हूँ और जगती छन्द से अर्थात् वैश्य कर्म से स्वीकार करता हूँ, अपनाता हूँ। हे पृथिवी! तू उत्तम भूमि है। कल्याणकारिणी है सुखदायिनी है। तू सुखपूर्वक बसने और बैठने योग्य है। उत्तम अन्न रस से युक्त है। और तू दूध और घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त है। शत० १।२।३।६-११॥

गायत्रच्छन्दा वै ब्राह्मणः तै० १।१९।६॥ ब्रह्म गायत्री। क्षत्रं त्रिष्टुप। शत० १।३।५।५॥ जागतो वै वैश्यः, ऐ० १।२८॥ जगतीछन्दा वै वैश्यः। तै० १।१९।९॥

पु॒रा क्रू॒रस्य॑ वि॒सृपो॑ विरप्शिन्नुदा॒दाय॑ पृथि॒वीं जी॒वदा॑नुम्। यामैर॑यँश्च॒न्द्रम॑सि स्व॒धाभि॒स्तामु॒ धीरा॑सो अनु॒दिश्य॑ यजन्ते। प्रो॒क्षणी॒रासा॑दय द्विष॒तो व॒धो॑ऽसि॥ २८॥

अघशंस ऋषिः। यज्ञो देवता। विराड् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे महापुरुष! घोर तथा योद्धाओं की नाना चालों से युक्त युद्ध के पूर्व ही समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाली पृथिवी और पृथिवी निवासिनी प्रजा को उठाकर, उन्नत करके जिसको धीर

पुरुष स्वयं अपने श्रम से धारण उत्पादन करने योग्य अन्नों द्वारा सबके अह्लादक राजा के अधीन सौंप देते हैं, उसको लक्ष्य करके ही धीर पुरुष यज्ञ करते हैं या परस्पर संगति करते या संघ बना २ कर रहते हैं। हे राजन्! तू उत्कृष्ट रूप से सेवन करने वाले सुख के साधनों को और आप्त पुरुषों को स्वीकार कर और पुनः शस्त्र लेकर तू शत्रुओं के वध करने में समर्थ हो। शत० २। ३। १८। २२॥

[1]प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि। [2]प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ-रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि॥ २९॥

यज्ञो देवता (१) भुरिग्जगती। धैवतः॥ (२) त्रिष्टुप्। षड्जः॥

भा०—विघ्नकारी लोग राज्यारोहण और राष्ट्रशासन के उत्तम कार्य में विघ्न करते हैं उनको एक एक करके दग्ध कर दिया जाय। शत्रु जो प्रजा को उचित अधिकार नहीं देते वे भी एक २ करके जला दिये जायं, पीड़ित किये जायं। विघ्नकारियों में प्रत्येक को खूब संतप्त किया जाय और दूसरों को उचित अधिकार आदि न देने हारे पुरुषों को खूब अच्छी प्रकार पीड़ित, दण्डित किया जाय। हे राजन्! और हे शत्रुओं के नाशक! तू अभी तीक्ष्ण नहीं है। तुझ बलवान् वीर को संग्राम के प्रदीप्त करने के लिये मांजता हूँ, उत्तेजित करता हूँ। (प्रत्युष्टं रक्ष०) इत्यादि पूर्ववत्। सेना के प्रति—हे सेने! तू शत्रु को नाश करने हारी है, तो भी तू अभी तीक्ष्ण नहीं है। तुझ बलवती, संग्राम करने में चतुर सेना को संग्राम को प्रदीप्त करने के लिये उत्तेजित करता हूँ। शत० १। ३। ४। १-१०॥

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पोऽस्यूर्ज्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषा

वपश्यामि । अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ ३० ॥

यज्ञो देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे सेने ! तू पृथिवी को बांधने या वश करने वाली है । तू राजा की व्यापक शक्ति है । तुझ सेना को मैं सेनापति हिंसारहित आंख से देखता हूँ । हे सेना ! तू युद्धाग्नि की ज्वाला के समान तीक्ष्ण है । युद्ध क्रीड़ा करने वाले सुभटों के लिये उत्तम रूप से आहुति देने वाली है । तू मेरे सर्व स्थानों, नामों और जन्मों तथा प्रत्येक यज्ञ या श्रेष्ठकर्म या प्रत्येक युद्ध के लिये रक्षक हो । शत० १ । २ । ४ । १२–१७ ॥

[1]सवितुस्त्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । [2]तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ ३१ ॥

यज्ञो देवता (१) जगती । निषादः । (२) अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—आजि अर्थात् युद्ध के उपयोगी शस्त्रों के प्रति कहते हैं । शस्त्रास्त्रबल को सर्वप्रेरक राजा के शासन में, विना छिद्र के शोधन करने हारे वायु रूप साधन से और सूर्य की रश्मियों से अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूँ । वह बलयुक्त शस्त्र तेज है, वीर्य है, अमृत है । उसका नाम धाम है, राज्य का धारक और शत्रु को दबाने वाला है । वह युद्धविजयी राजाओं का प्रिय और कभी पराजित न होने वाला है, युद्ध-यज्ञ करने वालों का साधन है । शत० १ । २ । ४ । २४-२८ ॥ १ । ३ । ५ । १–१८ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

[आद्ये ऋचश्चैकत्रिंशत्]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकारविरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये प्रथमोध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

१—३४ परमेष्ठी प्राजापत्यो देवाः प्राजापत्याः, प्रजापतिर्वा ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

यज्ञो देवता । निचृत् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे यज्ञमय राष्ट्र या राजन् ! तू सब प्रजाओं को अपने भीतर आकर्षित करने वाला और चारों ओर से खोदी हुई खाई के बीच में स्थित दुर्ग के समान सुरक्षित है । अग्रणी नेता के लिये प्रेम से स्वीकृत तुझ को मैं जल से अभिषिक्त करता हूँ । इस पृथिवी से सब पदार्थ और सुख प्राप्त होते हैं । उसको कुश आदि ओषधि के लिये उपयोगी जानकर जल से सींचता हूँ । ये ओषधि आदि पदार्थ जीवनों और प्राणियों की वृद्धि करते हैं, अतः प्राणियों वा प्राणों के निमित्त सेवित, उस पृथिवी का सेचन करता हूँ । शत० १ । ३ । ६ । १—२ ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानाम्पतये स्वाहा ॥ २ ॥

यज्ञो देवता स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—हे पर्जन्यरूप प्रजापते ! तू पृथिवी को गीला करने वाला है । हे राजन् ! क्षात्रबल ! तू उस व्यापक विष्णुरूप यज्ञ या राष्ट्र की शिखा है । हे पृथिवी ! ऊन के समान कोमल विद्वान् पुरुषों के लिये उत्तम रीति से बैठने और बरतने के योग्य तुझ को आसन आदि से आच्छादित करता हूँ । हे प्रजापुरुषो ! पृथिवी के स्वामी के लिए उत्तम

आदरपूर्वक वाणी कहकर उसका आतिथ्य करो। लोक के पालक पुरुष के लिए आदर वचनों का प्रयोग करो। उत्पन्न प्राणियों के पालक पुरुष के लिए उत्तम वाणी आदि से आदर करो। क्षत्रं वै प्रस्तरः। श० १। ३।४।१०॥

[1]गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडईडितः। [2]इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडईडितः। [3]मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तान्ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ईडितः॥ ३॥

अग्निर्वा देवता। (१) भुरिग् आर्ची त्रिष्टुप्। (२) आर्ची पंक्तिः। (३) पंक्तिः। (२,३) पंचमः॥

भा०—हे राष्ट्रमय यज्ञ! तुझको वाणी को धारण करने वाला, समस्त विश्व को बसाने हारा, समस्त संसार के सुखों के लिए चारों ओर से पुष्ट करे। हे विद्वन् राजन्! तू यज्ञ करने हारे की चारों ओर रक्षा और पोषण करने के कारण 'परिधि' है। हे विद्वन्! तू मार्गप्रदर्शक और स्तुतियोग्य और सब प्रजाओं द्वारा स्तुति किया गया है। तू ऐश्वर्यवान् राजा का भी समस्त विश्व के कल्यान और रक्षा के लिये बलवान् बाहु अर्थात् सेनापति रूप में परम सहायक है। राष्ट्ररक्षक राजा का रक्षक है। तू स्तुति योग्य है। हे राजन् सबका स्नेही और दुष्टों का नाशक अधिकारी दोनों तेरी अपने स्थिर कानून या धर्मशास्त्र द्वारा समस्त लोक के सुख के लिए रक्षा करें। शत०। १। ३.७। १–५॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे॥४॥

विश्वावसुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे दीर्घदर्शिन्! ज्ञानवान् अग्रणी! नाना यज्ञों में विविध प्रकार के ज्ञानों वा वाणियों से सम्पन्न, दीप्तिमान्, अजेय इस राष्ट्र-

पालनरूप यज्ञ में सबसे बड़े तुझको हम भली प्रकार और भी तेज सम्पन्न करें।

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थ ऊर्णम्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्य आ त्वा वसवो रुद्रा आदित्याः सदन्तु ॥ ५ ॥

यज्ञो देवता। निचृद् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तुझको सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष आगे से किसी प्रकार के भी अपवाद से बचावे। हे राजन्! विद्वान् के योग से तू तेजस्वी हो विद्वान् सर्व प्रेरक की तुम राजा और प्रजा दोनों दो बाहुओं के समान हो। हे सर्वाश्रय राजन्! ऊन के समान कोमल तुझको मैं फैलाता हूँ। तू विद्वानों के लिये उत्तम रीति से आश्रय लेने योग्य हो। तुझ पर वसु नामक विद्वान्, दुष्टों को रुलाने में समर्थ अधिकारीगण, ४८ वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारीगण आकर विराजें। शत० १। ३। ७। ७-१२॥

[1]घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद [2]प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सद आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

विष्णुर्देवता (१) ब्राह्मी त्रिष्टुप्। (२) निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—यज्ञ में तीन स्रुए होते हैं, जुहू, उपभृत् और ध्रुवा ये तीनों ब्रह्माण्ड में तीन लोक द्यौः, अन्तरिक्ष और पृथिवी हैं। राष्ट्र में राजा, भृत्य और प्रजा हैं। हे राजन्! तू समस्त प्रजागण से शक्ति लेने वाला और सबको सुख प्रदान करने में समर्थ, तेजः और पराक्रम से युक्त है। वह राजशक्ति इस प्रिय राज्यसिंहासन पर अपने अनुकूल तेज से युक्त

होकर विराजमान हो। हे राष्ट्र के अधिकारी वर्ग! तुम भी तेज से सम्पन्न हो। राजा तुमको अपने समीप रख कर भृति या वेतन द्वारा पोषण करता है। वह अधिकारीगण रूप प्रकृति इस अपने अनुकूल आसन पर अपने प्रीतिकर अनुकूल तेज से युक्त होकर विराजमान हो। हे प्रजागण! तू भी घृत के समान पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों और तेजोमय सुवर्ण आदि पदार्थों को प्राप्त करने और कराने वाला हो। नाम से तुम ध्रुवा अर्थात् सदा पृथिवी के समान स्थिर हो। वह तू भी अपने प्रिय भवनों और आसनों पर अपने प्रिय तेज सहित विराजमान हो। सब कोई अपने २ भवनों आसनों और पदों पर अपने प्रिय अनुकूल तेज से विराजें। सत्यज्ञान के आश्रयस्थान न्यायकारी ईश्वर के आश्रय पर वे तीनों और उनके आश्रित समस्त उपादेय पदार्थ भी स्थिर रहें। हे व्यापक प्रभो! तू उनकी रक्षा कर। तू यज्ञ की रक्षा कर। यज्ञ के पालक स्वामी की रक्षा कर। यज्ञ के नेता प्रवर्तक मेरी रक्षा कर। शत० १।३।७।१४-१६॥

अग्ने॑ वाजजि॒द्वाजं॑ त्वा सरि॒ष्यन्तं॑ वाज॒जित॒ꣳ सम्मा॑र्ज्मि।
नमो॑ दे॒वेभ्यः॑ स्व॒धा पि॒तृभ्यः॑ सु॒यमे॑ मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

अग्निर्देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे अग्रणी! राजन्! तू संग्राम का विजय करने हारा है। संग्राम के प्रति गमन करने की इच्छा करते हुए युद्ध से विजय करने हारे तुझको मैं परिशुद्ध करता या भली प्रकार अभिषिक्त करता हूँ। हे विद्वान् पुरुषो! युद्धक्रीड़ा करने वाले वीरों के लिये अन्न हो। पालक राष्ट्र के अधिकारियों के लिये उनके शरीर की रक्षार्थ वेतन आदि सामग्री उपस्थित है। राजप्रकृति और शासक अधिकारी प्रकृति दोनों मुझ राष्ट्र पुरोहित के अधीन उत्तमरूप से राष्ट्र को नियन्त्रण करने में समर्थ, एवं सुव्यवस्थित सुसंयत रहें। शत० १।४।६।१५॥ तथा शत० १।५।१।१॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्यᳩं संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वो ऽध्वर आस्थात् ॥ ८ ॥

विष्णुर्देवता । विराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—आज युद्धवीरों के लिये विक्षोभ रहित, सम्पन्न आजि अर्थात् संग्राम की हितकारी सामग्री को मैं राजा धारण करूं। हे राष्ट्र में शासन-व्यवस्था द्वारा व्यापक राजन्! मैं प्रजाजन तेरा पैर गमन साधनों से कभी अपमान न करूं। हे पृथिवी में प्रदीप्त राजन्! तेरे अधीन शासक होकर मैं विद्वानों, प्राणियों और ऐश्वर्यों से पूर्ण इस आश्रयस्वरूप पृथिवी को प्राप्त करूं। हे पृथिवी! तू व्यापक राजा का आश्रय स्थान है। इस राष्ट्रशासन रूप यज्ञ के द्वारा ही ऐश्वर्यवान् राजा वीरोचित कार्य को करता है वह राजा सबसे ऊपर विराजमान रहकर, किसी से भी हिंसित न होकर सब पर शासक रूप से विराजता है। शत० १।५।१।२।३॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्युमवतान्त्वान्द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्य इन्द्र आज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९ ॥

अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—हे अग्नि के समान प्रकाशक राजन्! तू राष्ट्र की सुव्यवस्था करके संग्रह करने के कर्म की, और दूत के सन्धि विग्रह आदि कर्म की रक्षा कर। 'द्यौः' प्रकाशरूप न्यायविभाग और पृथिवी बड़ी राज्यसभा दोनों, अथवा स्त्री-पुरुष प्रजायें दोनों तेरी रक्षा करें। और तू इन दोनों की रक्षा कर। तू विद्वानों के लिये उनकी इच्छानुकूल उत्तम कार्य करने हारा हो। संग्रामोपयोगी अन्न और शस्त्रादि सामग्री से ऐश्वर्यवान् राजा समर्थ होता है, वेदवाणी इसका उपदेश करती है। जितने ज्योतिर्मय,

सुवर्ण आदि कान्तिमान् बल, पराक्रम के पदार्थ हों वे ज्योतिर्मय तेजस्वी राजा के साथ संगत हों। शत०। १। ५। १। ४-७॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकंᳬसन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा॥ १०॥

इन्द्रो देवता। उपेत्यस्य पृथिवी। भुरिग् ब्राह्मी पंक्तिः पंचमः॥

भा०—ऐश्वर्यवान् परमेश्वर मुझमें यह आत्मबल धारण करावे। हमें अति अधिक सुवर्ण, विद्या और बल आदि धनों से पूर्ण अनेक ऐश्वर्य प्राप्त हों। हमारी सब कामनाएं और इच्छायें सफल और धर्मयुक्त हों। पृथिवी के समान अन्नदात्री माता आदर से युक्त हो। और सुखदात्री माता मुझको उपदेश करे। और उसके पश्चात् ज्ञानोपदेशक आचार्य के पद से ज्ञानी उपदेष्टा मुझे उत्तम उपदेश करे। शत० ।१।८।१।४०-४२॥

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि॥ ११॥

द्यावापृथिव्यौ, देवस्येत्यस्य सविता, प्राशित्रं च देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—बालकों को सब प्रकार के सुख का देने वाला पिता मान और आदर का पात्र हो। मुझको वह पिता शिक्षा प्रदान करे और उसके पश्चात् आचार्य पद से आचार्य उत्तम ज्ञानोपदेश करे। हे अग्ने! सर्वोत्पादक परमेश्वर के उत्पादित इस जगत् में मैं प्राण और अपान के बलों से, और पोषक समान वायु के बलों से तुझ अन्न को ग्रहण करूं। और तुझे कभी मन्द न होने वाले जाठर-अग्नि के मुख से अच्छी प्रकार भोजन करूं। शत० १। ७। ४। १३-१५॥

एतन्ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिन्तेन मामव॥ १२॥

बृहस्पतिरांगिरस ऋषिः। सविता। भुरिग् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक, प्रकाशक, सर्वप्रद, परमेश्वर ! तेरे उपरोक्त यज्ञ का विद्वान् लोग नाना प्रकार से वर्णन करते हैं। यह यज्ञ वेदवाणी के पालक, वेदज्ञान के ज्ञाता विद्वान् के लिये है। उस ही महान् यज्ञ के द्वारा मेरे इस यज्ञ की रक्षा कर। उस महान् यज्ञ द्वारा यज्ञ के परिपालक स्वामी की भी रक्षा कर। और उससे मेरी भी रक्षा कर। शत० १।७।४।२१॥

मनो॑ जू॒तिर्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ समि॒मन्द॑धातु। विश्वे॑ दे॒वास॑ इ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ॥ १३ ॥

बृहस्पतिरांगिरस ऋषिः। बृहस्पतिर्विश्वेदेवाश्च देवताः॥

भा०—अति वेगवान् मन ज्ञान-यज्ञ के योग्य समस्त साधनों का अभ्यास करे। वेदवाणी का परिपालक या बृहत् महान् राष्ट्र का पालक विद्वान् इस यज्ञ का सम्पादन करे। वही विद्वान् इस विघ्नरहित यज्ञ को उत्तम रीति से धारण करे, उसमें विघ्न और विच्छेद होने पर भी उसको भली प्रकार जोड़ दे। इस राज्य में और यज्ञ में समस्त विद्वान् पुरुष हर्षित हों। हे ब्रह्मन्! तू प्रतिष्ठा को प्राप्त कर। शत० १।७।४।२२॥

[1]ए॒षा ते॑ अग्ने स॒मित्तया॒ वर्ध॑स्व॒ चा च॒ प्यायस्व। व॒र्धि॒षी॒महि॑ च व॒यमा च॑ प्यासिषीमहि। [2]अग्ने॑ वाजजि॒द्वाज॑ त्वा सस॒वाꣳ सं॑ वा॒ज॒जित॒ꣳ संमा॑र्ज्मि ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता (१) अनुष्टुप्। गान्धारः। (२) निचृद् गायत्री। षड्जः।

भा०—हे अग्रणी! यह पृथिवी और प्रजा तेरे प्रदीप्त और तेजस्वी होने का साधन है। उससे तू बढ़ और खूब पुष्ट हो। हम प्रजाजन तुझसे बढ़ें और सब प्रकार से वृद्धिशील, हृष्ट पुष्ट, समृद्ध हों। हे राजन्! तू ऐश्वर्य एवं संग्राम को जीतने हारा है। युद्ध में प्रयाण करने वाले और युद्ध के विजयी तुझको भली प्रकार अभिषिक्त करता हूँ। शत० १।८।२।४–६॥

[1]अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि।
अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाज-
स्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा
प्रसवेन प्रोहामि। [2]इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च
वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ॥ १५ ॥

अग्नीषोमा च देवते। (१) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः। (२) इन्द्राग्नी देवते अतिजगती। निषादः ॥

भा०—शत्रुसंतापक सेनापति और शान्तियुक्त सर्वप्रेरक राजा दोनों के उत्तम विजय के साथ मैं भी उत्तम विजय लाभ करूं। मैं अपने को युद्धोपयोगी उत्कृष्ट सामग्रीयुक्त ऐश्वर्य से आगे बढ़ाऊँ। पूर्वोक्त सेनापति और राजा उसको दूर मार भगावें जो हमसे द्वेष करता है और जिसको हम द्वेष करते हैं। युद्ध के सेनाबल के उपयोग से मैं उस शत्रु को दूर फेंक दूं। इसी प्रकार वायु और विद्युत् के समान कंपा देने और जड़मूल से पर्वतों को उखाड़ देने वाले बलवान् अस्त्रों और अस्त्रज्ञों के उत्कर्षलाभ के साथ मैं राजा उत्कृष्ट विजय लाभ करूं। युद्ध के उपयोगी सेनाबल के ऐश्वर्य से मैं अपने को आगे बढ़ाऊं। पूर्वोक्त वायु और विद्युत् उसको दूर मार भगावें जो हमसे द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करें। उस दुष्ट शत्रु को युद्ध के योग्य बल, वीर्य, उत्तम २ अस्त्र साधन से मैं दूर भगा दूं।

[1]वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा सजानाथां द्यावापृथिवी
मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। [2]व्यन्तु वयोऽक्तꣳ रिहाणा
मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टि-
मावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि ॥ १६ ॥

(१) द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः। निचृदार्ची पंक्तिः पंचमः। (२) विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! तुझको राष्ट्र में बसने वाले ब्राह्मणों, शत्रुओं को रुलाने वाले क्षत्रियवीरों, और आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यों के लिये प्रजापति रूप से अभिषिक्त करता हूँ। द्यौ और पृथिवी दोनों की प्रजायें तुझे अपनावें। सूर्य और मेघ तुझे और तेरे राष्ट्र की वृष्टि द्वारा रक्षा करें। नाना प्रकार की स्तुति करने हारे विद्वान् जन गान करने वाले पक्षियों के समान तुझ प्रतापी की शरण में आवें। वायुओं के वेग से चलने वाली, मेघ मालाओं के समान उमड़ती हुई सेनाओं को तू प्राप्त हो। हे राजन्! अपने वशीभूत रसों का ग्रहण करने वाली भूमि के समान होकर तू उत्तम राज्य को प्राप्त हो। वहाँ से हमें ऐश्वर्य सुखों की वर्षा को प्राप्त करा। हे राजन्! तू हमारी दर्शनशक्ति की रक्षा करने हारा है। मेरे देखने के साधन चक्षु और विद्वानों की रक्षा कर। शत० १।८।३।१२-१९॥

यं परिधिं पर्यधत्था अग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः। तन्तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥

देवल ऋषिः। अग्निर्देवता। जगती। निषादः॥

भा०—हे अग्रणी राजन्! व्यापारियों द्वारा सुरक्षित रहते हुए जिस राष्ट्र को चारों ओर के आक्रमण से बचानेवाले सेनानायक आदि शासक को राष्ट्र की सीमाओं पर नियुक्त करते हो, तेरे द्वारा नियुक्त इस 'परिधि' नामक सीमापाल को प्रेमपूर्वक तेरे अनुकूल बनाता हूँ। जिससे वह तुझसे कभी न बिगड़े। हे परिधिनायको! तुम भी राजा के पालन करने योग्य अन्न आदि भोग्य पदार्थ को प्राप्त करो। शत० १।८।३।२२८

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

सोमसूद्मः सोमशुष्मो वा ऋषिः। विश्वेदेवाः देवताः। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजा के नियुक्त अधिकारी पुरुषो ! आप लोग शासन से बड़े शक्ति शाली और उत्तम आसन और आस्तरणों या पदों पर अधिष्ठित होने वाले, युद्ध में चतुर, व्यवहारज्ञ और रक्षा करने के लिये चारों ओर रखने योग्य हो। आप लोग उत्तम ऐश्वर्य के भागी बनो। आप सब लोग इस प्रत्यक्ष वेदमय न्यायवाणी को इस न्यायासन में बैठकर हम सबको प्रसन्न करो, और समस्त सुखों को प्राप्त करने वाली वाणी और क्रिया से उत्तम उपदेश करो। शत० १। २। २५॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मां धत्तम्। यज्ञ नमश्च त उप च यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व ॥ १९ ॥

शूर्प, (या सूर्य) यवमान्, (या पवमान्, यवान्) ऋषिः, (या कृषि) उद्वालवान्, धानान्तर्वान् (या धनान्नवान्), एते पञ्च ऋषयः। अग्निवायू देवते।
भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे अग्नि के समान शत्रुसंतापक और वायु के समान वेगवान् राजपुरुषो ! आप दोनों तेज को धारण करने वाले हो। आप राष्ट्र-शासन रूप यज्ञ में शासन भार की धुरा को उठाने में समर्थ हो। आप दोनों राष्ट्र का पालन करो। आप दोनों उत्तम ज्ञानपूर्ण एवं सुखप्रद हो। मुझको सुख में या शुभ मति में धारण करो। हे पूजनीय प्रभो ! तुझे हम नमस्कार करते हैं। और तू हमें प्राप्त हो। हे प्रभो ! आप यज्ञ के कल्याणकारी स्वरूप में उत्तम रीति से स्थित हो। मेरे उत्तम इष्ट कार्य में स्थित रह। शत० १। ८। ३। २५॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्या अविषन्नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

अग्निसरस्वत्यौ च देवते। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! हे अनष्टजीवन ! प्रभो ! हे सर्वव्यापक ! आप मुझको कठोर दारुण दण्ड-रूप दुःख से रक्षा करो । भारी बन्धनकारिणी अविद्या या पाप-प्रवृत्ति से रक्षा करो । दुष्टजनों की संगति से बचाओ । दुष्ट अन्न के भोजन से रक्षा करो । हमारे अन्न को विषरहित करो । घर में उत्तम रूप से विराजने योग्य भूमि हो अग्नि के समान प्रतापी स्वामी से यह उत्तम प्रार्थना है । वह हमें उत्तम फल प्राप्त करावे । उत्तम रीति से बसने वाले पृथिवी आदि लोकों के पालक से यह उत्तम प्रार्थना है । यश ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली वेदवाणी से हम उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ॥ शत० १ । ७ । २ । २० ॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः । देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित । मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳस्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

मनसस्पतिर्ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः ।

भा०—हे सब शुभ पदार्थों वा गुणों के देने और उनका प्रकाशन करने हारे परमेश्वर ! जिस ज्ञान से तू समस्त संसार के पदार्थों और विज्ञानों को जानता और सब को जानता है, इसी से तू स्वयं भी 'वेद' स्वरूप है । उसी वेदमय ज्ञान रूप से तू ज्ञान प्रकाशक विद्वानों के लिये भी स्वयं वेद या ज्ञान प्रकाशक रूप से प्रकट होता है । उसी ज्ञानमय रूप में हे परमेश्वर ! आप मेरे लिये 'वेदमय' ज्ञानप्रद रूप से प्रकट हों । ज्ञान का प्रकाश करने हारे पुरुष गमन करने योग्य मार्ग को जानने वाले होते हैं । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग मार्गोपदेशक वेद का ज्ञान करके उपदेश करने योग्य यज्ञ या संसार की सत् व्यवस्थाओं को प्राप्त होवो । हे संकल्प विकल्प करने वाले समष्टिरूप मन के परिपालक प्रभो ! हे प्रकाशक ! इस संसाररूप यज्ञ को महान् प्राण के आधार पर आप धारण कर रहे हो । यह समस्त का वायु रूप सूत्रात्मा तुझ में उत्तम आहुति अर्थात् कारण रूप से व्यवस्थित है । शत० १ ।९ ।२। २३-२८ ॥

सं बर्हिरङ्क्ताᳬ हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः ।
समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥२२॥

लिंगोक्ता इन्द्रो वा देवता । विराट् त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—महान् अन्तरिक्ष घृत और हवि के साथ संयोग करें। सूर्य की किरणों से, अग्नि, वायु आदि आठ तत्त्वों से, और प्राणों से भी भली प्रकार युक्त हो। ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर समस्त इन्द्रियों और समस्त दिव्य पदार्थों से संयुक्त हो। जब २ उत्तम आहुति हो तब २ दिव्य जल बहे। शत० १।९।२।२३॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥

प्रजापति र्देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे पुरुष ! तुझको कर्मबन्धन के दुःख से कौन विशेष रूप से मुक्त करता है ? वह सर्वोत्तम परमेश्वर ही तुझको कर्मबन्धन से युक्त करता है। वह परमेश्वर तुझे किस कार्य के लिये या किस हेतु से मुक्त करता है। तुझे उस महान् मोक्ष प्राप्ति के लिये मुक्त करता है। संसार के उत्तम पदार्थ और कर्मसाधनाएं किसके लिये हैं ? ये समस्त कर्मसाधनाएं आत्मा को पुष्ट करने के लिये हैं। तब ये कर्मफल, भोग-विलास आदि किसके लिये हैं ? हे विलासमय तुच्छ भोग ! तू मुक्तिमार्ग के बाधक लोगों के सेवन करने योग्य अंश है। शत० १।७।२।३३॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

त्वष्टा देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हम लोग तेज, पुष्टि, दृढ़ शरीरों और कल्याणकारी शुद्ध चित्त से भली प्रकार संयुक्त रहें। उत्तम २ पदार्थों का दाता सर्वोत्पादक परमेश्वर हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे हमारे शरीर में जो कुछ विपरीत,

अनिष्टजनक, प्राणोपघातक पदार्थ हों उसको शुद्ध करे, दूर करे। शत० १।९।३।६॥

[1]दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो[2]ऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। [3]पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

विष्णुर्देवता। (१) निचृदार्ची पंक्तिः। (२) आर्ची पंक्तिः पंचमः।
(३) जगती। निषादः ॥

भा०—महान् आकाश में व्यापक परमेश्वर जगतों की रचना करने वाले बल से नाना प्रकार से व्यापक है। अन्तरिक्ष में व्यापक परमेश्वर तीनों लोकों के पालक व्यापार से व्यापक है, वहां वायु, मेघ, विद्युत् रूप से प्रकट है। पृथिवी में परमेश्वर प्राणों की रक्षा करने वाले बल, अन्न आदि रूप से व्यापक है। इसी प्रकार व्यापक परमात्मा के अनुकरण में राजा द्युलोक में जगत छन्द से अर्थात् स्वर्ण रत्नादि ऐश्वर्य में वैश्यों के बल से, और अन्तरिक्ष में त्रैष्टुभ छन्द से अर्थात् तीनों वर्णों की रक्षारूप क्षात्रबल से, और पृथिवी निवासी जनता में गायत्र छन्द अर्थात् ब्राह्मणोचित बल से व्यापक रहे। हमारा शत्रु जो हमसे द्वेष करता है और जिसको हम द्वेष करते हैं वह उन २ लोकों से और उन २ स्थानों से इस उपभोग योग्य अक्षय अन्न आदि पदार्थ से और इस भूमि के ऊपर प्राप्त प्रतिष्ठा से सर्वथा भाग रहित करके निकाल दिया जाय। तब हम सुखमय लोक को प्राप्त हों और ज्ञान समृद्धि को भली प्रकार प्राप्त हों। शत० १।७।३।११।१४॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदा असि वर्चो मे देहि ।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २६ ॥

ईश्वरो देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू किसी की अपेक्षा बिना किये जगत् के उत्पादन, पालन और संहार में समर्थ है । तू प्रशंसनीय, परम ज्योति अथवा सबको अपने वश करने वाला है । तू सूर्य के समान तेज का का देने हारा है । मुझे तेज प्रदान कर । मैं भी सूर्य के समान सब चराचर जगत् के प्रेरक उत्पादक परमेश्वर के उपदेश किये आचार या व्रत का पालन करूं । शत० १ । ९ । ३ । १६ । १७ ॥

[1] अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाग्ने गृहपतिना भूयाः । [2] अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥

अग्निर्देवता । (१) निचृत्पंक्तिः । पंचमः । (२) गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ज्ञानवन् गृहपालक ! गृह के पति अर्थात् पालक रूप तेरे बल से मैं उत्तम गृह का स्वामी हो जाऊं, और तू मुझ गृहपति के द्वारा उत्तम गृहपति हो । हम स्त्री और पुरुष गृहपति और गृहपत्नी दोनों के करने योग्य समस्त कर्त्तव्य सौ बरसों तक मिल कर किया करें । मैं सूर्य के व्रत को पालन करूं, उसके समान गृहकार्य का प्रेरक, पालक होकर नियमपालक, ज्ञानप्रकाशक तेजस्वी, तपस्वी होकर रहूँ ।

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि-
दमहं य एवास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिक् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे व्रतों के पालक परमेश्वर ! आचार्य ! मैंने व्रत को पालन किया, उस व्रत के पालन करने में मैं समर्थ हुआ । मेरा वह व्रत सिद्ध

हुआ। मैं साक्षात् जो भी वस्तुतः हूँ वही यथार्थ शक्ति रूप आत्मा मैं रहूँ। शत० १।७।३।२३॥

अग्नये॑ कव्य॒वाह॑नाय॒ स्वाहा॒ सोमा॑य पितृम॒ते स्वाहा॑।
अप॑हता॒ असु॑रा॒ रक्षा॑ᳬसि वेदि॒षदः॑॥ २९॥

प्रजापतिर्ऋषिः अग्निर्देवता।

भा०—क्रान्तदर्शी विद्वानों के हित कर्म मार्गदर्शक आचार्य एवं विद्वान् के लिये उत्तम अन्न आदि दान करो और आदरपूर्वक वचन बोलो। पिता, माता और गुरुजनों से युक्त ब्रह्मचारी जिज्ञासु के लिये उत्तम अन्न का दान और आदरपूर्वक सुन्दर वचन का प्रयोग करो। यज्ञभूमि में विद्यमान विघ्नकारी केवल प्राणों में रमण करने वाले अर्थात् इन्द्रियों के विषय-भोगों में ही जीवन का व्यय करने वाले, विषम-विलासी दुष्ट पुरुषों को मार कर दूर भागा दिया जाय।

ये रू॒पाणि॑ प्रतिमु॒ञ्चमा॑ना॒ असु॑राः॒ सन्तः॑ स्व॒धया॒ चर॑न्ति।
प॒रा॒पुरो॑ नि॒पुरो॒ ये भर॑न्त्य॒ग्निष्टाँल्लो॒कात्प्रणु॑दात्य॒स्मात्॥ ३०॥

अग्निर्देवता। भुरिक् पांक्तिः। पंचमः।

भा०—जो लोग नाना वस्त्र आदि फैशनों को करते हुए केवल इन्द्रियों के भागों में रमण करते हुए अपने बल से विचरण करते हैं, और जो दूर २ तक बड़े २ अपने पुर बनाते हैं, और नीचे भूमि में अपने पुर बसाते, दुष्टों का सन्तापक राजा उन लोगों को इस लोक से निकाल दे।

अत्र॑ पितरो मादयध्वं यथाभा॒गमावृ॑षायध्वम्।
अमी॑मदन्त पि॒तरो॑ यथाभा॒गमावृ॑षायिषत॥ ३१॥

पितरो देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—इस गृह में पालन करनेहारे गुरु, विद्वान् पुरुष, माता पिता एवं वृद्धजन आनन्द प्रसन्न रहें और स्वयं और को भी वे सुप्रसन्न करें। अपने भाग के अनुकूल अर्थात् अधिकार, मान, पद एवं शक्ति,

योग्यता के अनुकूल सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट हों और औरों को भी आनन्दित करें। पालक वृद्धजन खूब हर्षित प्रसन्न हों और अपनी शक्ति, योग्यता एवं पद के अनुरूप हृष्ट पुष्ट हों।

[1]नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य॒ नमो॑ वः पितरः॒ शोषा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ जीवा॑य॒ नमो॑ वः पितरः स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो॒ घोरा॑य॒ नमो॑ वः पितरो॒ म॒न्यवे॒। [2]नमो॑ वः पितरः पितरो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्नः पितरो दत्त स॒तो वः पितरो देष्मै॒तद्वः पितरो॒ वासः॥ ३२॥

लिंगोक्ता देवताः पितरः (१) ब्राह्मी बृहती। (२) निचृद् बृहती। पंचमः॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक पुरुषो! वृद्धजनो! ब्रह्मानन्द रस और ज्ञानरस के लिए आप लोगों का हम आदर करते हैं। आप लोगों का जो शोषण अर्थात् दुःखों का निवारण और शत्रुओं को कमजोर करने का सामर्थ्य है उसके लिए आपका हम आदर करते हैं। अपके प्रजा को जीवन धारण कराने के सामर्थ्य के लिए आप लोगों को हम नमस्कार करते हैं। स्वयं समस्त राष्ट्र के धारण करने के सामर्थ्य के लिए और अन्न उत्पन्न करने के लिए आप लोगों का हम आदर करते हैं। आप लोगों के अति भय दिलाने वाले घोर युद्ध करने के सामर्थ्य के लिए आप लोगों को हम नमस्कार करते हैं। आप लोगों के मान बनाये रखने वाले उच्चता के भाव के लिए अथवा आपके दुष्टों और देश का यश कीर्त्ति के नाशकों के प्रति उत्तेजित हुए क्रोध और ज्ञान के लिये आप लोगों को हम नमस्कार करते हैं। हे पालक वृद्ध शासक जनो! आप लोग हमारे और समस्त राष्ट्र के पालक हो, अतएव आपका हम आदर सत्कार करते हैं। हे पालक पुरुषो! आप लोगों को हम नमस्कार करते एवं सत्कार करते हैं। हे पालक जनो! हमारे गृह के निवासी स्त्री आदि बन्धुओं के प्रति उनको उचित पदार्थ एवं विद्या और शिक्षा प्रदान करो। हे वृद्ध गुरुजनो! हम लोग आप लोगों को अपने पास विद्यमान नाना अन्न,

धन, वस्त्र आदि पदार्थ प्रदान करें। हे पालक जनो! आप लोगों के लिये यह आच्छादन करने योग्य उत्तम वस्त्र एवं निवास गृह है। आप इसे स्वीकार करें।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥३३॥

पितरो देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—पुत्रों का पालन करने में समर्थ गृहस्थ जनो! आप लोग गर्भ का आधान करो और फिर पुष्टिकर पदार्थों के द्वारा बने शरीर वाले सुन्दर बालक का पालन पोषण करो, जिससे इस लोक में वह बालक पूर्ण पुरुष रूप हो जाय। अथवा हे पालक आचार्य आदि जनो! पद्म की माला धारण किये विद्यार्थी कुमार को अपने विद्यारूप सावित्री के गर्भ में धारण करो। जिससे यह पूर्ण विद्वान् पुरुष हो जाय।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ ३४ ॥

आपो देवता। भुरिग उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे प्राप्त पुत्रादि जनो! उत्तम अन्न रस, रोगहारी जीवनप्रद तेजोदायक घृत, पुष्टि कारक दुग्ध, अन्न, और सब प्रकार से स्रवित रस से युक्त, पक्के फल एवं ओषधि विधि से तैयार किये उत्तम रसायन आदि इन सब को धारण करते हुए मेरे पालक वृद्धजनों को तृप्त करो। आप अब स्वयं अपने आपको और अपने वृद्ध, पालक, सत्कार योग्य पुरुषों को भी अपने बल पर धारण पोषण करने में समर्थ हो।

इति द्वितीयोऽध्यायः॥

[द्वितीये ऋचश्चतुस्त्रिंशत्]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः॥

तृतीयोऽध्यायः ।

॥ ओ३म् ॥ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

विरूप आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—प्रदीप्त करने के साधन काष्ठ से जिस प्रकार अग्नि को तृप्त किया जाता है उसी प्रकार अच्छी प्रकार तेजस्वी बनने वाले साधन से परमेश्वर की उपासना करो, और अग्नि को जिस प्रकार घृत आदि पदार्थों से जगाया जाता है उसी प्रकार उद्दीपन करने वाले साधनों के अनुष्ठानों से अतिथि के समान पूजनीय उसको जगाओ, और अग्नि में हवियों के समान परमेश्वर में और कर्मफलों को आहुति के रूप में निरन्तर त्याग करो ।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतन्तीव्रञ्जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥

वसुश्रुत ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—खूब अच्छी प्रकार प्रदीप्त तथा प्रकाशमान् अग्नि के समान प्रत्येक पदार्थ में व्यापक परमेश्वर को अतितीव्र आज्य, जल और उपायन सब प्रकार से प्रदान करो ।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अंगों में रस की न्याईं व्यापक अग्नि और परमेश्वर ! तुझे उत्तम प्रकाशित होने के साधन समिधाओं तथा योग आदि द्वारा और घी तथा तेज और तप द्वारा बढ़ाते हैं । हे पदार्थों के संयोग विभाग करने में अनुपम बल वाले ! महान् होकर तू खूब प्रकाशित हो ।

उप॑ त्वाग्ने ह॒विष्म॑तीर्घृ॒ताची॑र्यन्तु हर्यत । जुष॑स्व स॒मिधो॒ मम॑ ॥४॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे कान्तियुक्त अग्ने ! तथा परमेश्वर तेरे समीप घृत से तथा हवि से युक्त समिधायें प्राप्त हों उन मेरी समिधाओं का तू सेवन कर ।

[१]भूर्भुवः॒ स्वः॒ [२]द्यौरि॑व भू॒म्ना पृ॑थि॒वीव॑ वरि॒म्णा ।
तस्या॑स्ते पृथिवि देवयजनि पृ॒ष्ठेऽग्निम॑न्ना॒दम॒न्नाद्या॒याद॑धे ॥ ५ ॥

अग्निवायुसूर्याः लिंगोक्ताः पृथिवी च देवताः । (१) दैवी बृहती ।
(२) निचृद्बृहती । मध्यमः ॥

भा०—पृथ्वी लोक, अन्तरिक्षलोक और द्यौलोक हित के लिए मैं महान् सामर्थ्य से और अधिक प्रजाजनों से उसी प्रकार युक्त हो जाऊं जैसे महान् आकाश नक्षत्रों से युक्त है । पृथिवी जिस प्रकार विशाल है, सबको आश्रय देती है, उसी प्रकार की विशालता से मैं भी युक्त होऊं । हे विद्वानों के यज्ञ करने के आश्रयभूत पृथिवी ! उस तेरी पीठ पर समस्त अन्नों के भोग करने वाली अग्नि के समान प्रजापति राजा को स्थापित करता हूँ । शत० २ । ८ । १-२८ ॥

आयं गौः पृश्नि॑रक्रमी॒दस॑दन् मा॒तर॑ पु॒रः । पि॒तरं॑ च प्र॒यन्त्स्वः॑ ॥६॥

सार्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिका । अग्निर्देवता । गायत्री षड्जः ॥

भा०—यह गमनशील तथा रसों और ज्योतियों को अपने भीतर ग्रहण करने हारा आदित्य, मातृरूप पृथिवी के ऊपर नित्य प्राची दिशा में विराजता है, और चारों ओर व्याप्त है, और सबके पालक आकाश को भी अपने निज वेग से जाता हुआ उसको भी व्याप्त करता है ।

अ॒न्तश्च॑रति रोच॒नास्य प्रा॒णाद॑पान॒ती । व्य॑ख्यन्महि॒षो दिव॑म् ॥७॥

वायुरूपोऽग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

भा०—इस महान् अग्नि की ही वायुरूप दीप्ति है, जो शरीर के के भीतर, इस ब्रह्माण्ड के भीतर प्राण रूप होने के पश्चात् अपान का

स्वरूप धारण करती है। यही अनन्त महिमा से युक्त होकर द्यौलोक को विशेष रूप से बतलाता है।

त्रिᳬंशद्धाम् विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः॥ ८॥

अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—जो प्रकाशक ईश्वर रूप अग्नि तीस धारक पदार्थों को व्याप्त होकर उनको प्रकाशित करता है उसी व्यापक परमेश्वर के ज्ञान के लिये वेद-वाणी पढ़ी जाती है, और उसको प्रतिदिन उसके प्रकाशक वाक्यों के द्वारा निश्चय से मनन करना चाहिये। उक्त ६—८ शत० २।१।४।२९॥

दयानन्द—जो अग्नि प्रतिदिन तीसों धर्म्मों के धारक पदार्थों को प्रकाशित करता है उस 'पतंग' पतन-पातनादि गुणों से प्रकाशित स्वयं-गतिशील, अन्यों के प्रेरक अग्नि के ज्ञान के लिये प्रति दिन विद्वानों को वाक् (वेद) का अध्ययन करना चाहिये। वह वाणी नित्य शरीरस्थ विद्युत् अग्नि से प्रकाशित होता है, उसके गुण-प्रकाशन के लिये इस वाणी का श्रवण और उपदेश करना चाहिये। ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र, प्रजापति, इनमें से अन्तरिक्ष वह आदित्य अग्नि को छोड़ शेष ३०। पतङ्ग = अग्नि परमेश्वर है। अथवा प्राणो वै पतङ्गः। कौ० ८।४। पतन्निव हि अङ्गेषु। जै० ३।३।३५।२॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ९॥

अग्निर्ज्योतिरिति द्वयस्य तत्रा ऋषिः। ज्योतिः सूर्य इति द्वयस्य जीवलश्चैलकिश्च ऋषी। अग्निसूर्यौ देवते। पंक्तिः। मध्यमः॥

भा०—भौतिक अग्नि परमात्मज्योति की प्रतिनिधि और परमात्म-ज्योति भौतिक अग्नि में प्रकट है, यह सत्य बात है। भौतिक सूर्य परमात्म

ज्योति की प्रतिनिधि है । और परमात्मज्योति भौतिक सूर्य में प्रकट है । यह वास्तविक बात है भौतिक अग्नि दीप्तिमान है और वह परमात्म-ज्योति भी दीप्तिमान् है, इस प्रकार ही सत्य जानो । भौतिक सूर्य दीप्तिमान् है । और परमात्मज्योति भी दीप्तिमान् है, यह सत्य ज्ञान है । सूर्य ज्योति रूप है और ज्योति सूर्य रूप है, यह बात सत्य है ।

[1]सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ।
[2]सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या । जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

प्रजापतिर्ऋषिर्जीवलश्चैलकिश्च । (१) अग्निः । गायत्री । (२) सूर्यः । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—यह भौतिक अग्नि सर्व-प्रकाशक, सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से सेवन योग्य है, तथा परमेश्वर की शक्ति रूप रात्रि के बल से सेवन योग्य है वह अग्नि सबको सेवन करता हुआ अपनी महिमा सर्वत्र व्याप्त है । सर्व प्रकाशक सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से सूर्य सेवने योग्य होता है और परमेश्वर की शक्तिरूप उषा के बल से सेवन योग्य है । वह सूर्य सबको सेवन करता हुआ अपनी महान् शक्ति से सर्वत्र व्यापक है ।

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११ ॥

[११–३०] बृहदुपस्थानमन्त्राणां देवा ऋषयः । गोतमो राहूगण ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—यज्ञ में आते हुए हम ईश्वर की उपासना के लिये मन्त्रों का उच्चारण करें । वह हमारा दूर और पास सर्वत्र सुनता है । शत० ३ । ३ । ४ । १० ॥

अग्निमूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् ।
अपा रेताꣳसि जिन्वति ॥ १२ ॥

विरूप आंगिरस ऋषिः । अग्निः निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—सर्वस्वामी ईश्वर सर्वोपरि विराजमान है। वह द्यौ, आकाश और सूर्य आदि से भी महान् है। वह जलों के उत्पादक सामर्थ्यों को पुष्ट करता है। शत० २। ३। ४। ११॥

उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै।
उभा दातारविषाᳪ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३॥

भरद्वाज बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! हे शत्रुसंतापक सेनानायक! तुम दोनों को अपने पास बुलाने के लिये, और दोनों को नाना ऐश्वर्य के द्वारा एकत्र आनन्द लाभ करने के लिये मैं बुलाता हूँ। तुम दोनों अन्नों और ऐश्वर्यों के प्रदान करने वाले हो। तुम दोनों को उत्तम अन्न की प्राप्ति और भोग के लिये मैं बुलाता हूँ। शत० २। ३। ४। १२॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः।
तञ्जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १४॥

देवश्रवोदेवरातौ भारतावृषी। अग्निर्देवता। स्वराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे राजाग्नि! तेरा वह मूल आश्रय स्थान, ऋतुओं, राजकर्ताओं और सदस्यों में आश्रित है। जहां से तू सामर्थ्यवान् होकर प्रकाशमान होता है। उस अपने मूलकारण को भली प्रकार जानता हुआ तू ऊंचे सिंहासन पर आरूढ हो और तू हमारे ऐश्वर्य को बढ़ा।

ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० । १।१३। ऋतवः उपसदः। शत० १०। २। ५। ७। सदस्या ऋतवोऽभवन् तै० ३। १२। ९। ४। शत० २। ३। ४। १३॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५॥

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—अग्नि के समान शत्रुसंतापक सर्वश्रेष्ठ पुरुष को इस राष्ट्र में

राष्ट्र के धारण करने वाले वाले पुरुषों द्वारा अधिकारी रूप में स्थापित करते हैं। यह सबको अपने वश में लाने वाला, सबका संगितकारक संग्रामों में स्तुति के योग्य है। सन्तानों वाले सत्कर्मी, तथा तपस्वी वानप्रस्थ जिस प्रकार वनों में नाना प्रकार से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक प्रजासंघ में जिस पूजनीय तथा विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष को विशेष रूप से प्रदीप्त करते हैं। शत० २। ३। ४। १४॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रे अह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

अवत्सार ऋषिः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—दूर २ तक प्रज्ञा द्वारा पहुंचने वाले विद्वान् लोग इस राजा की श्रेष्ठ कान्ति को और (सहस्रसाम्) हजारों को अन्न वस्त्र शरण देने वाले पुष्टिकारक बल को, गाय से दूध के समान प्राप्त करते हैं। शत० २। ३। ४। १५॥

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥१७॥

अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे अग्ने! परमेश्वर! तू हमारे शरीरों की रक्षा करने हारा है। तू शरीर की रक्षा कर। हे अग्ने! तू आयु का देने वाला है, मुझे आयु प्रदान कर। हे अग्ने तू तेज देने वाला है तू मुझे तेज का प्रदान कर। और जो मेरे शरीर में न्यूनता हो मेरी उस न्यूनता को पूर्ण कर। शत० २। ३। ४। १७-२०॥

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय ॥ १८ ॥

चित्रावसो इत्यस्य ऋषय ऋषिः। अग्नी रात्रिश्च देवते। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे परमेश्वर ! तेजस्वी आयु के बढ़ाने और देने वाले, बल के देने वाले शत्रुओं के नाशक, किसी से भी न मारने योग्य तुझको, हम दीर्घायु बलवान् और शत्रुओं से न मारे जाकर, तुझे सौ वर्षों तक अधिक दीप्तिमान् करते हुए, बराबर बढ़ाते और कीर्ति में उज्ज्वल ही करते रहें। हे नाना प्रकार के ऐश्वर्य वाले ! तुझसे मेरा कल्याण हो। तेरे पालन और पूर्ण करने वाले सामर्थ्य का मैं सदा भोग करूं। शत० २।३।४।२१–२३॥

सं त्वम॑ग्ने सूर्य॑स्य वर्च॑सागथाः समृषी॑णाᳪं स्तुतेन॑।
सं प्रियेण धाम्ना समहमायुषा सं वर्च॑सा सं प्रजया सᳪं रायस्पोषे॑ण ग्मिषीय॥ १६॥

अग्निर्देवता। जगती। निषादः॥

भा०—ईश्वर सूर्य के समान तेजोमय, ऋषियों के मन्त्रों द्वारा स्तुति किया गया है। एवं प्रिय धारण सामर्थ्य से युक्त है। वह मुझे आयु, तेज, प्रजा, धन, आदि दे। शत० २।३।४।२४॥

अन्ध स्थान्धो॑ वो भक्षीय मह॑ स्थ महो॑ वो भक्षीयोर्ज॑स्थोर्जं॑ वो भक्षीय रायस्पोष॑ स्थ रायस्पोषं॑ वो भक्षीय॥ २०॥

आपो देवता। भुरिग् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे जल के समान समस्त अन्न आदि पदार्थों के उत्पादक आप्त पुरुषो ! अथवा हे गौओं एवं उनके समान सर्वोत्पादक भूमियो ! तुम प्राणप्रद अन्न हो। अर्थात् तुमसे प्राप्त अन्न को मैं खाऊं। तुम बल वीर्य रूप हो, तुम्हारे बल वीर्य का मैं भोग करूं। तुम उत्तम अन्न रस रूप हो, तुम्हारे बलकारी रस का मैं भोग करूं। तुम ऐश्वर्य की पुष्टि करने वाले हो तुम्हारे द्वारा मैं ऐश्वर्य की पुष्टि को प्राप्त करूं। शत० २।३।४।२५॥

रेव॑ती रम॑ध्वम॒स्मिन्योना॑व॒स्मिन् गो॒ष्ठे॑ऽस्मिँल्लो॒के॑ऽस्मिन् क्षये॑ ।
इ॒हैव स्त॒ माप॑गात ॥ २१ ॥

विश्वेदेवा देवताः । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे धन सम्पन्न प्रजाओ ! आप लोग, वाणियों के निवास स्थान, या भूमि के आश्रयभूत, सबके बसाने वाले, घर के समान आश्रयप्रद राजा पर निर्भर रहकर, इस राष्ट्र में आनन्दपूर्वक रहो, यहां ही रहो, यहां से दूसरे देश मत जाओ। तथा हे गौवो ! तुम इस गोशाला और घर में रहो, यहां से दूर मत होओ । शत० २।३।४।२६॥

[1]सं॒हि॒तासि॑ विश्वरू॒प्यूर्जा॑मावि॑श गौप॒त्येन॑ ।
[2]उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे॒ दोषा॑वस्त॒र्धिया व॒यम् ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ २२ ॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । (१) भुरिगासुरी गायत्री, (२) गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे गौ ! तू भली प्रकार से घरों में बांध ली जाती है । तू ही नाना प्रकार के पशुओं की प्रतिनिधि है । तू अन्न सम्पत्ति और गौओं के पति या स्वामित्व के यश के साथ मुझे प्राप्त हो । शत० २।३।४।२६ ॥

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् । वर्द्ध॑मान॒ꣳस्वे दमे॑ ॥२३॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—सर्वत्र यश और प्रताप से प्रकाशमान्, शत्रुओं से न नाश होने योग्य दुर्गों और उत्तम रक्षा के उपायों के रक्षक, सत्यज्ञान के प्रकाशक, अपने दमन कार्य में सबसे अधिक बढ़ने वाले तुझ राजा को हम अन्न का उपहार करते हुए प्राप्त हों ।

इसी प्रकार यज्ञों के रक्षक, ऋग्वेद के प्रकाशक, परम मोक्ष में विद्यमान, सर्वोपरि राजमान परमेश्वर की हम उपासना करें । शत० २ । ३ । ४ । २७ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! वह तू पुत्र के लिये पिता के समान सुख पूर्वक प्राप्त होने योग्य हो, और हमारे कल्याण के लिये हमें प्राप्त हो।

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमः रयिं दाः ॥२५॥

[२५–२८] बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्चत्वार एकैकश ऋषयः । अग्निर्देवता । भुरिग् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! तू हमारा निकटतम सहायक, रक्षक, सुखकारी, और हमारे गृहों के लिए हितकारी है । तू सबका नेता होकर सबको बसाने वाला और धन-ऐश्वर्य के कारण कीर्ति से सम्पन्न है । तू हमें भली प्रकार प्राप्त हो और हमें अति उज्ज्वल धन-ऐश्वर्य प्रदान कर ।

तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ २६ ॥

अग्निः । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे तेज से अति देदीप्यमान ! हे प्रकाशयुक्त राजन् ! निश्चय से हम परम प्रसिद्ध तुझसे अपने मित्रों के लिये भी प्रार्थना करते हैं। वह तू हमारे अभिप्राय को जान, अथवा वह तू हमें ज्ञान प्राप्त करा, और हमारी स्तुति और प्रार्थना को श्रवण कर। हमें सब प्रकार के पापाचारी, अत्याचार करने वाले हिंसक पुरुष से बचा। शत० २। ३। ४। ३१ ॥

इड एह्यदित एहि काम्या एत । मयि वः कामधरणं भूयात् ॥२७॥

इडा अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अन्नदात्री पृथिवि ! हमें तू प्राप्त हो । हे अखण्डित राज्य-शासनव्यवस्थे ! तू हमें अखण्ड चक्रवर्ती राज्य शासन के रूप में प्राप्त

हो। प्रजाजनो ! आप लोगों की समस्त अभिलाषों का पालन-पोषण मेरे पर निर्भर हो। शत० ३। २। ४। ३४॥

सोमानꣳस्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं य औशिजः ॥२८॥

बृहस्पतिर्मेधातिथिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे वेदशास्त्र के पालक ईश्वर ! वा आचार्य ! तू जो कान्ति या प्रताप से तेजस्वी और प्रतापी है, उसको ही, सबका प्रेरक, सबका आज्ञापक और राज्यप्रबन्ध आदि कार्यों में, रथ में अश्व के समान, नियुक्त कर। शत० ३। २। ४। ३५॥

यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्द्धनः।
स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २९ ॥

बृहस्पतिर्मेधातिथिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। गायत्री। षड्जः।

भा०—हे वेद के पति ! जो धनवान्, रोगों और मानस दोषों को दूर करने हारा, रत्नों का ज्ञाता, या वासस्थान, नगर, ग्रामादि एवं लोक-लोकान्तरों का ज्ञाता, शरीरों की पुष्टि को बढ़ाने वाला है, और जो विना विलम्ब से यथोचित काल में कार्यसम्पादन करता है, वह राजा हमें प्राप्त हो। शत० २। ३। ४। ३५॥

मा नः शꣳसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

बृहस्पतिर्मेधातिथिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे वेद के पालक प्रभो ! अदानशील का अनिष्टचिन्तन, और धूर्तता, हम तक न पहुंचे। तू हमें बचा। शत० २। ३। ४। ३६॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षम्मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ॥३१॥

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यः, स्वस्त्ययनम्। विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—मित्र, अर्यमा और वरुण इन तीनों का बड़ा ज्ञान-प्रकाश और न्याय का आश्रय त एवं अभेद्य, अच्छेद्य प्रजापालन कार्य हो।

राज्य-शासन में मित्र सबको मरने से त्राण करने वाला, रक्षा-विभाग। अर्यमा = न्याय विभाग। वरुण = शत्रुदमन एवं योद्धवर्ग। शत० २। ३। ४। ३७॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशंसः ॥३२॥

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यः। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—उन राष्ट्रवासी प्रजाओं के घरों में, और मार्गों में, और शत्रु, चोर, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले कार्यों में, पापयुक्त कामों की शिक्षा देने वाला, दुष्ट षड्यन्त्रकारी पापीजन बल नहीं पकड़े। शत० २। ६। ४। ३७॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ३३

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः। आदित्यो देवता। विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—वे मित्र, अर्यमा और वरुण अखण्डशासन या पृथिवी के पुत्रों को पापों और दुःखों से त्राण करने वाले हैं, जो मनुष्य को जीवन-लाभ के लिये अविनाशी प्रकाश का प्रदान करते हैं। शत० २।३।४।३७॥

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे।

उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। पथ्या बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! प्रभो! आप कभी भी हिंसक नहीं हैं। आत्म-समर्पण करने वाले पुरुष को सदा सुख प्रदान करते हैं। हे ऐश्वर्यवन् तुझ राजा का दान ही निश्चय से सदा हमें प्राप्त होता है, और खूब ही और बार बार हमें मिलता है। शत० २। ३। ४। ३८॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—समस्त देवों के उत्कृष्ट शासक, विजेता महाराज के उस अति श्रेष्ठ पाप को भून डालने वाले तेज को हम सदा अपने ध्यान में रक्खें, जो हमारी बुद्धियों और समस्त कार्य-व्यवहारों को उत्तम मार्ग संचालित करता है। शत० २। ३। ४। ३९॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२ अश्नोतु विश्वतः।
येन रक्षसि दाशुषः॥ ३६॥

वामदेवो गौतम ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—जिससे हे राजन्! तू दानशील, करप्रद प्रजाजनों की रक्षा करता है, वह तेरा अपराजित, युद्ध का रथ है, वह हमें सब ओर से प्राप्त रहे, हमारी रक्षा करे। शत० २। ३। ४। ४०॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि शᳬस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुम्मे पाहि॥३७॥

आसुरिरादित्यश्चर्षी। प्रजापतिर्देवता। ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—प्राण, उदान और व्यान इनके बल पर मैं पुरुष पुत्रपौत्र आदि सन्तानों से उत्तम सन्तान वाला होऊं। वीर्यवान्, शूरवीर पुरुषों से मैं उत्तम वीरों वा पुत्रों वाला होऊं और पुष्टिकारक धन, ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थों से मैं उत्तम पुष्टि युक्त, धन आदि सम्पन्न होऊं। हे नरों के हितकारिन्! तू मेरी प्रजा का पालन कर! हे स्तुति योग्य! मेरे पशुओं का पालन कर। हे संशयरहित! मेरे अन्न की तू उत्तम रीति से रक्षा कर। शत० २। ४। १। १-५॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सह आयच्छस्व॥ ३८॥

आदित्य आसुरिश्चर्षी। अग्निर्देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः॥

भा०—समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी, और हमारे लिये सबसे अधिक ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले, श्रेष्ठ पुरुष की शरण में हम जाएं

और कहें—हे हमारे अग्रणी पुरुष ! तू हमारा सम्राट् है। तू धन और अन्न को और समस्त बल को, सब ओर से एकत्र कर और हमें प्रदान कर। शत० २।४।१।७-८॥

अ॒यम॒ग्निर्गृ॒हप॑ति॒र्गार्ह॑पत्यः प्र॒जाया॑ वसु॒वित्त॑मः।
अग्ने॑ गृहपते॒ऽभि द्यु॒म्नम॒भि सह॒ आय॑च्छस्व॥ ३९॥

आसुरिरादित्यश्चर्षी। अग्निर्देवता। भुरिग् बृहती न्यकुंसारिणी। मध्यमः॥

भा०—यह हमारा अग्रणी राजा हमारे घरों का पालक होने से गृहस्वामी के समान, और गार्हपत्य-अग्नि के समान समस्त गृहस्वामियों से संयुक्त है अथवा राष्ट्ररूप गृह का स्वामी है। वह प्रजा के ऐश्वर्य प्राप्त करने वालों में सबसे श्रेष्ठ है। हे अग्रणी ! गृहों के स्वामिन् ! तू बल, अन्न और धन ऐश्वर्य को सब प्रकार से नियत कर और हमें प्राप्त करा।

अ॒यम॒ग्निः पु॑री॒ष्यो॒ र॒यि॒मान् पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः।
अग्ने॑ पुरीष्या॒भि द्यु॒म्नम॒भि स॒ह आय॑च्छस्व॥ ४०॥

आसुरिरादित्यश्चर्षी अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—यह अग्रणी पुरुष, लक्ष्मी और ऐश्वर्य प्राप्त करने और प्रजा को पुष्ट करने योग्य कर्मों का साधक राजपद प्राप्त करने योग्य है। यह ऐश्वर्यवान् और प्रजा के बल और ज्ञान को बढ़ाने वाला है। हे राजन् ! हे इन्द्रासनयोग्य पुरुष ! धन और बल को हमें प्राप्त करा।

पुरीष्यः—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति। श० २।१।१।७॥

गृ॒हा मा बि॑भीत॒ मा वे॑पध्व॒मूर्ज॒ बिभ्र॑त॒ एम॑सि।
ऊर्ज॒ बिभ्र॑द्वः सु॒मनाः॑ सु॒मे॒धा गृ॒हानैमि॒ मन॑सा॒ मोद॑मानः॥४१॥

आसुरिरादित्यः शंयुश्च बार्हस्पत्य ऋषयः। वास्तुपतिरग्निर्देवता। आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे गृहस्थ पुरुषो ! आप लोग मत डरो, हम सैनिक राजपुरुषों से भय मत करो। मत कांपो, दिल में मत घबराओ, जब कि हम विशेष बल धारण करते हुए आवें। मैं राजा या अधिकारी पुरुष भी बल धारण करता हुआ, शुभ मन से और उत्तम बुद्धि से युक्त होकर, अपने मन से प्रसन्न होता हुआ, गृहस्थ पुरुषों को प्राप्त होऊं।

येषा॑म॒ध्येति॑ प्र॒वस॒न्येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः ।
गृ॒हानुप॑ ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्तु जान॒तः ॥ ४२ ॥

शंयुर्ऋषिः । वास्तुपतिरग्निर्देवता अनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—प्रवास में रहता हुआ पुरुष जिनकी याद किया करता है, और जिनके बीच में बहुत अधिक परस्पर शुभचित्तता एवं सुहृद्भाव है, उन गृहस्थ पुरुषों को हम अधिकारी जन अपने समीप मान पूर्वक बुलाते हैं। वे हम पहचानने वालों को अपना जानें।

उप॑हूता इ॒ह गाव॒ उप॑हूता अ॒जाव॑यः ।
अथो॒ अन्न॑स्य की॒लाल॒ उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः ।
क्षेमा॑य व॒ः शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳश॒ग्मꣳशं॒योः शं॒योः ॥४३॥

शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । वास्तुपतिर्देवता । भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—राष्ट्र में और गृह में दुधार गौवें हमें प्राप्त हों। बकरियां और भेड़ें प्राप्त हों। प्राण धारण करने में समर्थ भोग्य पदार्थों में से उत्तम अन्न आदि पदार्थ हमारे घरों में प्राप्त हो। हे गृहस्थ पुरुषो ! तुम लोगों के पास मैं आप लोगों के कुशल क्षेम के लिये और विघ्नों और विघ्नकारियों को शान्त करने और सुख प्रदान करने के लिये प्राप्त होऊं। सुखशान्तिदायक प्रत्येक उपाय से कल्याण और सुख ही प्राप्त हो।

प्र॒घा॒सिनो॑ हवामहे म॒रुत॑श्च रि॒शाद॑सः ।
क॒र॒म्भेण॑ स॒जोष॑सः ॥ ४४ ॥

[४४-६३] प्रजापतिर्ऋषिः । मरुतो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हम लोग उत्तम अन्न के भोजन करने हारे, हिंसकों के विनाशक, और उत्तम कर्म करने हारे पुरुष के साथ प्रेम करने वाले, शूरवीर पुरुषों को अपने घरों पर बुलावें, निमन्त्रित करें। शत० २।५।२।२१ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदवयजामहे स्वाहा ॥ ४५ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। स्वराड् अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हम जो पाप, अपराध, अयुक्त कार्य, निषिद्धाचरण ग्राम में करें, जो बुरा काम जंगल में करें, जो बुरा कार्य हम सभा में करें, और जो बुरा काम हम आंख आदि इन्द्रियों के सम्बन्ध में करें, उसको हम सर्वथा त्याग दें। यह प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति दृढ़ भावना किया करे। शत० २।५।२।२५।

मा षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥४६॥

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो मरुतश्च देवताः। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे राजन्! इस राष्ट्र में रहते हुए हमें मत मार, प्रत्युत उत्तम रूप से हमारी रक्षा कर। हे बलशालिन्! निश्चय से विजयशील सैनिकों सहित तेरा पृथक् भाग है। अर्थात् अन्नादि पदार्थों के लिये राजा अपना कर प्रजा से नियत भाग में लेले। उसके लिये वह प्रजा का नाश न करे। जिस सुखों के प्रवर्षक राजा के लिये अन्नों के बने उत्तम पदार्थ बड़ी भारी पूजा-सत्कार हैं, और अन्न से सम्पन्न या अन्नादि से सम्पन्न प्रजागणों या मारणशील सैनिक अधिकारीगण की वाणी जिसकी वन्दना करती है उस तुझ अर्थात् इन्द्र के लिये प्रजा का अवश्य पृथक् भाग है। शत० २।५।२।२८ ॥

क्षत्रं वा इन्द्रो विशो मरुतः। क्षत्रं वै निषेद्धा विशो निषिद्धा आसन्निति। शत० २।५।३७ ॥

अक्र॒न् कर्म॑ कर्म॒कृतः॑ स॒ह वा॒चा म॑यो॒भुवा॑।
दे॒वेभ्यः॒ कर्म॑ कृ॒त्वास्तं॒ प्रेत॑ सचाभुवः ॥ ४७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—काम करने वाले पुरुष अपनी वाणी से परस्पर एक दूसरे को सुख शान्ति प्रदान करते हुए, काम करें। और हे काम करने वाले कर्मचारी पुरुषो ! विद्वान् राजा आदि धनदाता पूज्य पुरुषों के लिये काम या सेवा करके परस्पर साथ मिल कर एक दूसरे के सहाय से सामर्थ्य-वान् होकर प्रसन्नता पूर्वक अपने २ घर को जाया करो। शत० २ । ५ । २ । २९ ॥

अव॑भृथ निचुम्पुण निचे॒रुर॑सि निचुम्पु॒णः । अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मे-
नो॑ऽयासिष॒मव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतम्पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ ४८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे अवभृथ, सबको नीचे से ऊपर तक भरण-पोषण करने हारे ! हे सर्वथा मन्द २ गति से चलने हारे ! अथवा नीचे स्वर से सभ्यता पूर्वक कहने हारे ज्ञानी पुरुष ! तू सब ज्ञानों को भली प्रकार से संग्रह करने हारा, और सर्वथा मन्द गति, अति शान्ति से सर्वत्र पहुचने हारा या अति शान्ति से वार्तालाप करनेहारा है। मैं भी अपने इन्द्रिय आदि प्राणों से, अथवा विद्वानों के द्वारा युद्ध विजयी सैनिकों द्वारा युद्ध में किये घात-प्रतिघात आदि के अपराध को दूर करता हूँ। साधारण मनुष्यों के द्वारा मनुष्यों के किये पाप को दूर करूं। हे देव ! राजन् ! अति अधिक रुलाने वाले, अति कष्टदायी हिंसक शत्रु पुरुष से तू हमारी रक्षा कर। शत० २ । ५ । २ । ४७ ॥

पू॒र्णा द॑र्वि॒ परा॑पत॒ सुपू॑र्णा॒ पुन॒राप॑त।
व॒स्नेव॒ विक्री॑णावहा॒ इष॒मूर्ज॑ꣳ शतक्रतो ॥ ४९ ॥

और्णवाभ ऋषिः । यज्ञो देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः ॥

भा०—हे देने योग्य पदार्थों को अपने भीतर लेने वाली पात्रिके ! तू पूर्ण होकर, भरी २ दूसरे के पास जा। खूब पूर्ण होकर, भरी २ ही फिर हमें भी प्राप्त हो। हे सैकड़ों कर्म करने में समर्थ राजन् ! विक्रय करने योग्य पदार्थों के समान ही हम अन्न आदि और अपने बल पराक्रम का भी विनिमय करें, लें, दें।

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारन्निहराणि ते स्वाहा ॥ ५० ॥

और्णवाभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग् अनुष्टुप्। गान्धारः।

भा०—व्यापार के लेने देने का नियम दर्शाते हैं। तुम अपना पदार्थ मुझे दो तो मैं भी तुम्हें अपना पदार्थ दूं। तुम मेरा पदार्थ गिरवी रक्खो तो मैं तुम्हारे पदार्थ को भी अपने पास रक्खूं। और तू यदि पूर्ण मूल्य का ये पदार्थ मेरे पास ले आवे तो तेरे द्रव्य का भी पूर्ण मूल्य चुका दूं। इस प्रकार सत्यवाणी, व्यवहार द्वारा व्यापार किया जाता है। शत० २।५।३।१९॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्र ते हरी ॥५१॥

गौतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट पांक्तिः। पंचमः स्वरः॥

भा०—स्वतःप्रकाश आत्मज्ञानी पुरुष अन्न का भोजन करें। सब को प्रसन्न करें और स्वयम् सबके दुःखों को दूर करें और विशेष ज्ञान से परिपूर्ण, विपश्चित्, ज्ञानी पुरुष नई २ मति द्वारा ईश्वर एवं अन्य पदार्थों के सत्यगुणों का वर्णन करें। हे राजन् ! सेनापते ! तू अपने हरणशील घोड़ों के समान बल और पराक्रम को भी इस राज्यकार्य में संयोजित कर। शत० २।६।१।३८॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णबन्धुरः।
स्तुतो यासि वशाँ२ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५२ ॥

गोतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! उत्तम रूप से सब को देखने हारे तुझको हम अभिवादन करते हैं। तू पूर्ण रूप से सबको व्यवस्था में रखने हारा होकर सबसे प्रशंसित होकर निश्चय से कामना योग्य समस्त पदार्थों को प्राप्त कर। और हे राजन् ! तू अपने रथ में अश्वों के समान दूरगामी एवं नाना पदार्थ प्राप्त कराने वाले बल पराक्रम दोनों को नियुक्त कर। शत० २। ६। १। ३३॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितृणां च मन्मभिः ॥५३॥

बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। अतिपादनिचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—विद्वानों के कथा-प्रवचन सम्बन्धी गुणानुवाद से, और पालन करने वाले गुरुजनों के ज्ञानसाधन, प्रमाणों या मनन करने योग्य मन्तव्यों द्वारा हम लोग ज्ञान और संकल्प विकल्प करने वाले अन्तःकरण की शक्ति को बढ़ावें। शत० २। ६। १। ३९॥

आ न एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥

बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। विराड् गायत्री। षड्जः स्वरः॥

भा०—हमें बार २ उत्तम विद्या और उत्तम कर्म, अनुकूल संस्कार को पुनः स्मरण के लिये, और चिरकाल तक जीवन धारण करने के लिये, और सबके सूर्य के समान ज्योतिर्मय परमेश्वर के देखने के लिये मनः शक्ति या ज्ञान शक्ति प्राप्त हो। शत० २। ९। १। ३९॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः।
जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥ ५५ ॥

बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः स्वरः॥

भा०—हे पालक पूजनीय पुरुषो ! दिव्य शक्तियों वाला जन हमें पुनः २ ज्ञान प्रदान करे। हम लोग जीवन और उत्तम व्रतों को प्राप्त हों। शत० २। ६। १। ३९॥

वयᳪं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

बन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे सबके प्रेरक राजन्! परमेश्वर ! हम तेरे बनाये शासन-कर्म में वर्तमान रह कर, और अपने शरीरों और आत्माओं में तेरे दिये ज्ञान को धारण करते हुए प्रजा पुत्र आदि से युक्त होकर, सुख प्राप्त करें ।

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे दुष्ट जनों को रुलाने हारे राजन् ! तेरा यह सेवन करने योग्य अंश है । उसको अपनी भगिनी अर्थात् सेना और माता अर्थात् पृथिवी के साथ स्वीकार कर । यह हमारा उत्तम त्याग है । हे राजन् ! तेरा यह सेवन करने योग्य अंश है । भूमि को चारों ओर धातुओं ओषधियों के खोदने वाला खनक वर्ग तेरे निमित्त नाना पदार्थों का देखने वाला है । वह तेरे लिये अभिमत लोह आदि धातु और औषध आदि पदार्थ प्राप्त कराता है । शत० २ । ६ । २ । १० ॥

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—दुःखों का द्रावण करने वाले, तीनों कालों में ज्ञानमय वेद-वाणी से तीन रूप अथवा उत्साह, प्रज्ञा, नीति आदि तीन शक्तियों से युक्त राजा से अपने समस्त कष्टों का अन्त करवावें । जिससे वह हमें अपने राष्ट्र का सबसे उत्तम वासी बनावे, और जिससे वह हमें सबसे श्रेष्ठ पदाधिकारी बनावे, और जिससे वह हमें उत्तम व्यवसाय वाला, दृढ़ निश्चयी, कर्म में सफल बनावे । शत० २ । ६ । २ । ११ ॥

भेषजमसि भेषजङ्गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ।
सुखम्मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वराड गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे दुःखों का द्रावण करने वाले ! तू समस्त रोगों को दूर करने में समर्थ है । अतः गौओं घोड़ों और पुरुषों के लिये भी तू उनके रोगों का नाशक है । तू ही मेष, मेढ़ा, पुरुष और मेढ़ी या स्त्री के लिये भी सुखकारी है । शत० २ । ६ । १ । १२ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनं ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ ६० ॥

वसिष्ठ ऋषिः । रुद्रो देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—तीन शक्तियों से सम्पन्न, उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले, प्रजा के पोषण कार्य को बढाने वाले राजा का हम सत्संग करें, जिससे मैं प्रजाजन मृत्यु के बन्धन से लता के बन्धन से पके खरबूजे के समान स्वयं मुक्त रहूँ, और अमृत अर्थात् जीवन वा मोक्ष से मुक्त न होऊं । इसी प्रकार उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले, पति को प्राप्त कराने वाले, वेदत्रयी रूप ज्ञान से युक्त राजा का हम आदर करते हैं । जिससे मैं स्त्री लताबन्धन से खरबूजे के समान इस पितृ लोक के बन्धन से मुक्त हो जाऊं, उस पति लोक के बन्धन से न छूटूं । शत० २ । ६ । २ । १२ । १४ ॥

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि । अवततधन्वा
पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि ॥ ६१ ॥

रुद्रो देवता । भुरिगास्तारपंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे शत्रुओं के रुलाने वाले शूरवीर ! तेरा यह रक्षण सामर्थ्य है, उससे उत्तम सामर्थ्यवान् होकर घास, वन आदि वाले महा पर्वतों को भी पार करने में समर्थ है। तू धनुष कस शत्रुओं को दमन करने में समर्थ बल से युक्त होकर, चर्म के समान आच्छादन वस्त्र धारण किये हुए, हमें न विनाश करता हुआ, सुख पूर्वक गुजर जा। शत० ६। ६। २। ७॥

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद् देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ ६२ ॥

नारायण ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—नित्य प्रज्ज्वलित तीव्र जाठर अग्नि से युक्त या देदीप्यमान चक्षु वाले तत्वदर्शी पुरुष को जो बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि तीनों अथवा तिगुणी आयु प्राप्त होती है, और ज्ञान के पालक पुरुष को जो त्रिगुण बाल्य आदि तीनों आयु प्राप्त होती हैं, और जो विद्वान् पुरुषों में त्रिगुण आयु है, वह त्रिगुण आयु हमें भी प्राप्त हो।

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिᳬसीः।
निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय
सुवीर्याय ॥ ६३ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। रुद्रो देवता। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—हे दुष्टों को रुलाने हारे राजन्! तू राष्ट्र के लिये कल्याण-स्वरूप है, स्वयं अपने आपको धारण करने की शक्ति या वज्र तेरा पालक है। तुझे हमारा नमस्कार हो। मुझ, तेरे अधीन प्रजाजन को मत मार। मैं दीर्घ आयु को प्राप्त करने के लिये, अन्न आदि भोग्यपदार्थ की प्राप्ति के लिये, उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने के लिये, धन की वृद्धि के लिये, उत्तम प्रजा को प्राप्त करने के लिये, और उत्तम बल वीर्य के लाभ

के लिये, तुझ तीक्ष्ण स्वभाव के उग्र पुरुष को अपने ऊपर आघात करने के कार्य से निवृत्त करता हूँ, रोकता हूँ।

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

[तृतीये त्रिषष्टिर्ऋचः ।]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

१–२७ प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासो अजुषन्त विश्वे । ऋक्सामाभ्याᳬ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम । इमा आपः शमु मे सन्तु देवीरोषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अबोषध्यौ देवते । विराड् ब्राह्मी जगती, त्र्यवसाना अत्यष्टिर्वा । निषादः ॥

भा०—हम पृथिवी के बीच विद्वानों के यज्ञ करने और राजाओं के शासन करने के इस स्थान पर प्राप्त हों। जहां विद्वान् और राजा लोग आकर बसें, वहां ऋगवेद के मन्त्रों और सामवेद के मन्त्रों से और यजुर्वेद के मन्त्रों से समस्त बाधाओं को पार करते हुए धन की वृद्धि और प्रचुर अन्न प्राप्त करके हम सब आनन्दित रहें। ये आप्त पुरुष मेरे लिए शान्तिदायक हों। हे दोषों से रक्षा करने में समर्थ राजन्! तू हमारी रक्षा कर। हे अपने बल से राष्ट्र को धारण करने में समर्थ या वज्र के समान क्षत्र-बल से सम्पन्न राजन्! इस मुझ प्रजाजन को या राष्ट्र को नष्ट मत कर। शत० ३।१।१।११, १२–१७ ॥

आपो॑ अ॒स्मान्मा॒तरः॑ शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्वः॑ पुनन्तु। विश्व॒ᳬ हि रि॒प्रम्प्र॒वह॑न्ति दे॒वीरुदिदा॑भ्यः शुचि॒रा पू॒त ए॑मि। दी॒क्षा॒त॒पसो॑स्त॒नूर॑सि॒ तान्त्वा॑ शि॒वाᳬ श॒ग्मां परि॑दधे भ॒द्रं वर्णं॒ पुष्य॑न् ॥ २ ॥

आपो देवताः। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः ॥

भा०—हमें जलों के समान स्वच्छ और माता के समान पालन करने वाले आप्तजन शुद्ध करें। वे तेजोमय अंश से पवित्र करने वाले आप्त-जन हमें घृत से जिस प्रकार शरीर के विष नाश हो जाते हैं उसी प्रकार पवित्र करें। दिव्य गुणोंवाली देवियों के समान आप्तजन समस्त पाप को धो बहाते हैं। इनसे ही सब प्रकार से पवित्र होकर मैं उत्कृष्ट पद को प्राप्त होऊं। वस्त्र के समान आत्मा के वास के स्थान हे शरीर! तू व्रतधारण और तपस्या का बना शरीर है। उस तुझ कल्याणकारी शरीर को मैं उत्कृष्ट जीवनस्थिति को पुष्ट करता हुआ धारण करूं। शत० ३। १। २। १०-२० ॥

म॒हीना॒म्पयो॑ऽसि वर्चो॒दा अ॑सि॒ वर्चो॑ मे देहि।
वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दा अ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि ॥ ३ ॥

मेघो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! तू पृथिवीवासिनी प्रजाओं का पुष्टिकारक सार भाग है। हे राजन्! तू तेज का प्रदान करने हारा है मुझे तेज प्रदान कर। तू राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को आंख में पुतली के समान देखने वाला है। तू दृष्टि का देने वाला है, मुझे दृष्टि प्रदान कर।

चि॒त्पति॑र्मा पुनातु वा॒क्पति॑र्मा पुनातु दे॒वो मा॑ सवि॒ता पु॑नात्व॒-च्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑। तस्य॑ ते पवित्रपते प॒वित्र॑पूतस्य॒ यत्का॑मः पु॒ने तच्छ॑केयम् ॥ ४ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। परमात्मा देवता। निचृद् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—चेतनाओं का पति परमेश्वर मुझे पवित्र करे। सबका उत्पादक परमात्मा निर्दोष तथा परम पावन अपने स्वरूप से और सूर्य की तेजोमय किरणों से मेरे अन्तःकरण और देह को पवित्र करे। हे शुद्धात्माओं के पालक! पवित्रगुणों से परिपूत जो तू है उसकी कृपा से पवित्र हुआ मैं जिस कामना को करके अपने आपको पवित्र दीक्षित करूं उसको पूर्ण कर सकूं।

आ वो॑ देवास ईमहे वा॒मम्प्र॑य॒त्य॒ध्व॒रे।
आ वो॑ देवास आ॒शिषो॑ य॒ज्ञिया॑सो हवामहे ॥५॥

देवा देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! उत्तम सुख और उत्तम फल देने वाले हिंसारहित शासनरूप यज्ञ में आप लोगों से हम सुन्दर रक्षा याचना करते हैं। हे विद्वान् तथा यज्ञ करने हारे पुरुषो! आप लोगों से मन को आशाओं या इच्छाओं की हम याचना करते हैं।

स्वाहा॑ य॒ज्ञम्मन॑सः स्वाहो॒रोर॒न्तरि॑क्षात्।
स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ᳬ स्वाहा॒ वाता॒दार॑भे॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

यज्ञो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—मैं मन से उत्तम वेदोक्त वाणी के मनन द्वारा यज्ञ सम्पादन करूं। विशाल अन्तरिक्ष से उत्तम आहुति द्वारा यज्ञ सम्पादन करूं। विस्तृत आकाश और पृथिवी मण्डल दोनों से दोनों की शक्तियों को परस्पर आदान प्रतिदान की क्रिया से यज्ञ का सम्पादन करता हूँ। मैं वायु से यज्ञ करता हूँ।

[1] आकू॑त्यै प्र॒युजे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ मे॒धायै॒ मन॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑ दी॒क्षायै॒ तप॑से॒ऽग्नये॒ स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै पू॒ष्णे॒ऽग्नये॒ स्वाहा॑। आपो॑ देवी॑र्बृहती॒र्विश्व॑शम्भुवो॒ द्यावा॑पृथि॒वी उरो॑ अन्तरिक्ष। बृह॒स्पत॑ये ह॒विषा॑ विधेम॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यब्बृहस्पतयो देवताः । (१) पंक्तिः । पंचमः ।
(२) आर्ची बृहती । मध्यमः ॥

भा०—संकल्पों या अभिप्राय को प्रकट करने वाले, इन्द्रियों को अपने ग्राह्यविषयों में प्रयुक्त करने वाले चेतन आत्माग्नि को अपने आत्मा-रूप से कहो । धारणावती बुद्धि को, संकल्पविकल्प करने वाली शक्ति को चेतन आत्माग्नि रूप से कहो । व्रतधारण करने और तपस्या करने वाली शक्ति को चेतन आत्माग्नि रूप से कहो । शब्दोच्चारण करने वाली शक्ति और शरीर को निरन्तर पुष्ट करने वाली शक्ति को आत्माग्नि रूप से कहो । इन रूपों में प्रकट होने वाले आत्माग्नि को तुम स्वयं अपनी आत्मा जानो । दिव्य शक्तियों से युक्त जल जो समस्त जगत् की शान्ति को उत्पन्न करते हैं, और सूर्य और भूमि, और अन्तरिक्ष इन सबमें विद्यमान महान् शक्ति के परिपालक परमेश्वर के लिये हम सत्यज्ञान और प्रेमभाव रूपी हवि द्वारा उपासना यज्ञ करें, यह भी एक महान् यज्ञ है । शत० ३ । १ । ४ । ५–१७ ॥

विश्वो॑ द॒वस्य॑ ने॒तुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒यइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

स्वस्त्यात्रेयं ऋषिः । ईश्वरः सविता देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—समस्त मनुष्य लोग अपने नेता ईश्वर और राजा की मित्रता को चाहें, और धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये शस्त्रास्त्र धारण करें, और सभी धन को शरीर और आत्मा की पुष्टि के लिये चाहें । यही उसका उत्तम सद्-उपयोग है । शत० ३ । १ । ४ । १८ । २३ ॥

ऋ॒क्सा॒मयोः॒ शिल्पे॑ स्थ॒स्ते वा॒मार॑भे त मा॑ पातमास्य य॒ज्ञस्यो॒दृचः॑ ।
श॒र्म्मा॑सि॒ शर्म मे यच्छ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसीः ॥ ९ ॥

विद्वान् देवता । आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों ऋग्वेद और सामवेद इन

दोनों के भीतर से उत्पन्न विशेष कौशल रूप हैं। उन दोनों का मैं अभ्यास करता हूँ। वे दोनों उत्तम ऋचाओं से युक्त यज्ञ की समाप्ति तक मुझे पालन करें। हे शिल्पपते! तू शरण है। मुझे सुख प्रदान कर। हे शिल्पस्वामिन्! तुझे मैं आदरपूर्वक नमस्कार करता हूँ, मुझ को विनष्ट मत कर। शतपथ ३।२।१।१८॥

ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि। सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि। ²उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यंहस आस्य यज्ञस्योदृचः॥ १०॥

आंगिरस ऋषयः। यज्ञो देवता। (१) निचृदार्षी, निषादः,
(२) साम्नी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे अग्नि से उत्पन्न होने वाली पृथिवी! तू हल आदि द्वारा ऊनके समान कोमल होकर अन्न देती है। तू मुझ में अन्नादि पदार्थ प्रदान कर। तू उत्पादक जल को एकत्र करने वाली है। व्यापक जल का आश्रय स्थान है। यज्ञ करने वाले यज्ञपति का भी आश्रय है। हे सूर्य की किरण! ऐश्वर्यशील मेघ का तू उत्पत्ति स्थान है। तू हमारी खेतियों को उत्तम सस्य से युक्त कर। हे सेवन करने योग्य जल आदि पदार्थों के पालक पर्जन्य! तू ऊपर आ। ऊंचा होकर इस वर्षायज्ञ की समाप्ति पर्यन्त कष्टों से हमारी रक्षा कर।

¹व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीन्धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे। ²ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

अग्निर्देवता। (१) स्वराड् ब्राह्मी, गांधारः स्वरः। (२) आर्षी
उष्णिक्। ऋषभः स्वरः॥

भा०—हे लोगो ! आप व्रत करो कि हम अग्निहोत्र और ब्रह्मोपासना किया करेंगे, अग्निहोत्र तथा नाना यज्ञ किया करेंगे, यज्ञयोग्य वनस्पतियों का संग्रह किया करेंगे। हम दिव्य तथा उत्तम सुख प्राप्त कराने वाली, तेजोदायिनी, पूज्य परमेश्वर तक पहुंचा देने वाली ध्यानधारणावती योगसमाधि से प्राप्त प्रज्ञा की याचना करते हैं। वह भवसागर के पार पहुंचानेहारी ब्रह्ममयी प्रज्ञा हमारे वश में रहे जो इन्द्रियगण मन से प्रकट होते और मन के साथ युक्त होकर बल के कार्य करने में समर्थ हो जाते हैं वे भी हमारी रक्षा करें, वे हमारा पालन करें उनकी भली प्रकार आत्मा में आहुति दें उनको अपने भीतरी आत्मा के अन्तर्मुख कर लें। शत० ३। २। २। १-१८॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ता अस्मभ्यमयक्ष्मा अनमीवा अनागसः स्वदन्तु देवीरमृता ऋतावृधः ॥ १२ ॥

आपो देवताः। ब्राह्मी अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे जलों के समान स्वच्छ बुद्धि वाले आप्त पुरुषो ! आप लोग प्रशस्त धन और ज्ञान से युक्त और ज्ञानरस के पान करने वाले बने रहो। जिस प्रकार जल पेट के भीतर सेवन करने योग्य होते हैं उसी प्रकार आप लोग हमारे बीच में सुख से सेवन करने योग्य हैं। आप राजयक्ष्मादि-रोगों से रहित, नीरोग, निष्पाप, दिव्यगुणों से युक्त, और सत्यज्ञान को बढ़ाने वाले, दीर्घजीवी होकर हमें सब प्रकार के सुख प्रदान करावें। शत० ३। २। २। १९॥

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुञ्चामि न प्रजाम्। अंहोमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या सम्भव ॥ १३ ॥

आपो देवताः। भुरिग् आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे पुरुष ! यह तेरी यज्ञ के योग्य तनू है। संकल्प कर कि

प्रजोत्पादक वीर्यशक्ति का नाश नहीं करूंगा, अपितु इस अप्-तत्त्व को अपने में धारण करूँगा। तुम पापकर्मों को छुड़ाने वाले और वेदवाणी द्वारा उत्तम यज्ञानुष्ठान करने हारे होकर पृथिवी में स्थिर गृह आदि बना-कर रहो। और पृथिवी पर हे पुरुष! तू भली प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न कर। शत० २।२।२२०॥

अग्ने त्वꣳसुजागृहि वयꣳ सु मन्दिषीमहि।
रक्षा णो अप्रयुच्छन् प्रबुधे नः पुनस्कृधि ॥१४॥

अग्निर्देवता। स्वराडार्च्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे शत्रुसंतापक राजन्! तू भली प्रकार जाग, प्रमाद रहित रह कर राज्य शासन कर हम अच्छी प्रकार निश्चिन्त होकर सोवें। हमारी प्रमाद रहित होकर रक्षा कर। और फिर हमें जागृत दशा में करदे। शत० ३।२।२।२२॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्म आगन्। वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

अग्निर्देवता। भुरिग् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—शयन के बाद मेरा मन मुझे पुनः प्राप्त होता है। प्राण मुझे पुनः प्राप्त होता है। चक्षु मुझे फिर प्राप्त होता है। मुझे श्रोत्र पुनः प्राप्त होता है। समस्त नर-देहों में प्राणों के नेतारूप से विद्यमान जीवात्मा अविनाशी है, शरीर का रक्षक है और शरीर में अग्नि को पैदा करता है। वह हमें निन्दनीय दुष्टाचरण से बचावे। शत० ३।२।२।२३॥

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवो नः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ॥ १६ ॥

वत्सः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे दिव्य परमेश्वर ! अथवा राजन् ! तू व्रतों, उत्तम कर्मों का पालक है, उनको निर्विघ्न समाप्त होने देने में रक्षक है। तू सत्य में और यज्ञों में भी सब प्रकार से स्तुति योग्य है। हे सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक ! हमें इतना अर्थात् बहुत परिमाण में प्रदान कर और भी अधिक दे। तू हमें जीवन और धन का देने हारा है। तूने सब प्रकार का जीवनोपयोगी धनैश्वर्य प्रदान किया है।

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजं गच्छ।
जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ॥ १७ ॥

अग्निर्देवता। आर्ची त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे वीर्यवान् पुरुष ! यह तेरा शरीर है। यह तेज है। इस देह से तू मिल कर उत्पन्न होजा। प्रकाशमान् जीवन को प्राप्त हो। हे वाणी तू 'जू', सब के सेवन करने योग्य है। तू मनन और विज्ञान से धारण की गई यज्ञसम्पादन करने या व्यापक परमात्मा के भजने में लग जाती है।

जूरित्येतद् ह वा अस्याः वाचः एकं नाम। मनसा वा इयं वाग् धृता। मनो वा इदं पुरस्ताद्वाचः इत्थं वेद, मा एतदवादीः, इत्यलग्लमिव वै वाग् वेदद् यन्मनो न स्यात्। शत० ३। २। ४। ११॥ 'जू' यह वाणी का एक नाम है। मन इस वाणी को वश रखता है। वाणी बोलने के पूर्व मन विचार करता है। ऐसा बोल, ऐसा मत बोल। यदि मन न हो तो वाणी गड़बड़ बोल जाती है।

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यन्त्रमशीय स्वाहा।
शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

वाग्विद्युतौ देवते। स्वराड् आर्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे वाणि ! सत्य को उत्पन्न करने वाली जो तू है उसकी प्रेरणा पाने के लिये मैं शरीर के यन्त्र या नियमन् को प्राप्त करूं, और

उसका उत्तम रीति से उपयोग करूं। हे आत्मा ! तू दीप्तिमान् है, आह्लादक है, अविनाशी है। समस्त दिव्य शक्तियों में सूक्ष्म रूप से विद्यमान है। शत० ३।२।४।१२-१५॥

चिद॑सि म॒नासि॒ धीर॑सि॒ दक्षि॑णासि क्ष॒त्रिया॑सि य॒ज्ञिया॒स्यदि॑तिरस्युभयतः शी॒र्ष्णी। सा न॒: सुप्रा॑ची सुप्र॑तीच्येधि मि॒त्रस्त्वा॑ प॒दि ब॑ध्नीतां पू॒षाध्व॑नस्पा॒त्विन्द्रा॒याध्य॑क्षाय॥१९॥

वाग विद्युतौ देवते। भुरिग् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः स्वरः॥

भा०—हे वाक्शक्ते! तू शरीर की चेतना है। तू मननकारिणी है। तू ध्यान करने वाली, ज्ञान को धारण करने वाली है। तू बलकारिणी शक्ति है। राष्ट्र में जिस प्रकार शरीर में चेतना है। यज्ञ में जिस प्रकार क्षात्रशक्ति है, उसी प्रकार शरीर में चेतना है। यज्ञ में जिस प्रकार दीप्तमान् अग्नि है, उसी प्रकार शरीर में समस्त प्राणों की उपास्या शक्ति यह चेतना है। पृथ्वी जिस प्रकार अखण्ड भाव से सब का आश्रय है, उसी प्रकार यह भी शरीर में अखण्ड अविनाशी है। जिस प्रकार प्रसव काल में गौ के गर्भ से बच्चा आधा बाहर आने पर आगे और पीछे दोनों ओर दो सिर वाली हो जाने से गौ 'उभयतः' शीर्ष्णी कहाती है, उसी प्रकार यह चेतना भी ज्ञान-प्रसव काल में उभयतः शीर्ष्णी है। उसका एक अंश बाहर पदार्थ का ज्ञान करता है और दूसरा अंश भीतरी मनन करता है। या बाह्य पदार्थों और भीतरी सुख दुःख आदि दोनों का ज्ञान करती या बाह्य चक्षु इन्द्रिय आदि उसका एक मुख है और भीतरी इन्द्रिय मन उसका दूसरा मुख है। वह तू हे चितिशक्ते! हमें उत्तम रीति से आगे आये पदार्थों पर जाने और उनका ग्रहण करने वाली और उत्तम रीति से भीतरी आत्मतत्त्व तक पहुंचने वाली है। तेरा स्नेही प्राण, जैसे गाय को पैरों से बांधते हैं, उसी प्रकार तुझे ज्ञान-साधन में बांधे अथवा स्नेही आत्मा तुझे ध्येय पदार्थ या ज्ञानमय ब्रह्म में लगावे, और पुष्टि-

कारक प्राण ही उसके ऊपर अध्यक्ष रूप से विद्यमान आत्मा के स्वरूप को प्राप्त या ज्ञान करने के लिये उस तक पहुंचने वाले योग या ज्ञान मार्ग से उसकी रक्षा करे। अर्थात् प्राणायाम के बल पर उस चितिशक्ति को ध्येय विषय पर बांधे और उस को विचलित होने से बचावे। शत० ३।२।४।१५-१०॥

[1]अनु॑ त्वा मा॒ता म॑न्यता॒मनु॑ पि॒तानु॒ भ्राता॒ सग॒र्भ्योऽनु॒ सखा॒ सयू॑थ्यः। [2]सा दे॑वि दे॒वमच्छे॒हीन्द्रा॑य॒ सोम॑ꣳ रु॒द्रस्त्वाव॑र्त्तयतु स्व॒स्ति सोम॑सखा॒ पुन॒रेहि॑॥ २०॥

वाग् विद्युत् च देवते। (१) साम्नी जगती। निषादः।
(२) भुरिगार्षी उष्णिक्, ऋषभः॥

भा०—मोक्षाभिलाषी के लिये कहा गया है कि ब्रह्म के मार्ग में जाने के लिये तुझे तेरी माता, तेरा पिता, तेरे सहोदर भाई, एक श्रेणी के मित्र अनुमति दें। और हे देवि ब्रह्मविद्ये! तू परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये विद्वान् को प्राप्त हो। हे देवि विद्ये! तुझको नैष्ठिक ब्रह्मचारी ग्रहण करे। हे पुरुष! या हे विद्ये! तू ईश्वर का सहवर्ती होकर हमें पुनः प्राप्त हो।

वस्व्य॒स्यदि॑तिरस्यादि॒त्यासि॑ रु॒द्रासि॑ च॒न्द्रासि॑।
बृह॒स्पति॑ष्ट्वा सु॒म्ने र॑म्णातु रु॒द्रो वसु॑भि॒राच॑के॥ २१॥

वाग्-विद्युतौ देवते। विराडार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे पृथिवी! तू शरीर में वास करने वाले जीवों को बसाने वाली है। तू अखण्ड है। तू आदान करने वाली, सबको अपने में धारण करने वाली है। तू सबको रुलाने वाले दुष्ट पीड़क शासकों द्वारा सेवित है। तू सबकी आह्लादकारिणी है। तुझे विद्वान् पुरुष उत्तम ब्रह्ममय आनन्द में प्रेरित करे। मुख्य प्राण जीवात्मा अन्य प्राणों सहित तुझ को प्राप्त करना चाहता है॥

अथवा ब्रह्मशक्ति लोकों में व्यापक, अखण्ड प्रकाशमयी, सर्व

रुदन्सारिणी या वेद द्वारा उपदेष्ट्री, सर्वाह्लादिका है। बृहस्पति अर्थात् परमात्मा उसे उत्तम आनन्दरूप में या ज्ञानरूप में प्रेरित करता है। वही रुद्र है जो कि उसको समस्त जीवों सहित अपनाता है।

अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्नाजिघर्मि देवयजने पृथिव्या इडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वि यौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥

वाग्विद्युतौ देवते । ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे बलवान् राजन्! तुझको पृथिवी के विद्वानों के एकत्र होने के स्थान में अखण्ड शासनव्यवस्था के शिर पर या मुख्यपद पर सुशोभित करता हूँ। हे राजन्! तू पृथिवी की मान-प्रतिष्ठा का पद है। तू उत्तम ज्ञान से तेजोमय हो। हे राजन्! तू हम में प्रसन्न होकर रह। हम प्रजाजन तेरे बन्धु हैं। तेरे ऐश्वर्य हमारे ऐश्वर्य हैं। हम प्रजाजन ऐश्वर्य की पुष्टि से वियुक्त न हों। ज्ञानवान् आपके भी बहुत से ऐश्वर्य हों। शत० ३। ३। १। ४–१० ॥

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा। मा म आयुः प्रमोषीर्मो अहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि ॥ २३ ॥

वाग्विद्युतौ, देवते । आस्तारपंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—दिव्यगुण युक्त प्रज्ञा से विवेक करके मैं कथन करूं। साधी गई और विस्तृत दर्शनशक्ति से देख भालकर मैं सत्य बात का कथन करूं। हे दिव्य वेदवाणी! तेरे दिखाये उत्तम सम्यक् दर्शन में रहते हुए मेरे जीवन को तू विनाश मत कर। और न मैं तेरे जीवन का नाश करूं और मैं वीर पुरुषों का लाभ करूं।

इसी प्रकार धारण पोषण में समर्थ कार्यकुशल दीर्घदर्शिनी पत्नी के द्वारा मैं समस्त कार्यों का निरीक्षण करूं। मैं उसके और वह मेरे जीवन

का नाश न करे, उसके सम्यगदर्शन में वीर पुत्र का लाभ करूं। शत० ३।३।१।१२-१६॥

[1]एष ते गायत्रो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भाग इति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भाग इति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬं साम्राज्यं गच्छेति मे सोमाय ब्रूतात्। [2]आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु॥ २४॥

यज्ञो देवता। (१) ब्राह्मी जगती। निषादः स्वरः।
(२) याजुषी पंक्तिः पंचमः॥

भा०—हे विद्वन्-मण्डल! सबके प्रेरक मुझ राजा को इस प्रकार स्पष्ट करके बतलाओ कि हे राजन्! तेरा यह ब्राह्मणों का भाग है। इसी प्रकार मुझ राजा को यह बतलाओ कि क्षात्रबल सम्बन्धी यह तेरा भाग है, और यह इतना वैश्य सम्बन्धी तेरा भाग है। मुख प्रेरक राजा को यह आज्ञा दो कि प्रजाओं के पालन और दुष्टों के दमन के समस्त उपायों के समस्त राजाओं के ऊपर, सर्वोपरि विराजमान महाराजा के पद को तू प्राप्त हो। प्रजाजन कहे—हे राजन्! तू हमारा है। तू वीर्यवान् है, तू स्वीकार करने योग्य है। विशेष रूप से या विविध प्रकार से चुनने वाले ज्ञानी पुरुष भी तुझको ही विशेष रूप से आदर योग्य पद पर चुनें। शत० ३।३।२।१-८॥

[1]अभि त्यं देवᳬं सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवᳬं रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भा अदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत [2]सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥ २५॥

सविता देवता। (१) ब्राह्मी जगती। निषादः। (२) निचृदार्षी
गायत्री। षड्जः॥

भा०—राष्ट्र के स्त्री पुरुष दोनों के प्रेरक, दिव्य गुणों वाले तथा क्रान्तदर्शी राजा का हम आदर करें, जिसकी कि अगम्य कान्ति सबसे ऊपर विराजती है, और जो सुवर्णादि धन पर वश करके, सदाचारी होकर, सुखमय राज्य बनाने में समर्थ है। हे राजन्! तुझे प्रजाओं के हित के लिये हम राजा नियुक्त करते हैं। तेरे आधार पर प्रजाएं जीवित रहें। प्रजा की वृद्धि पर तू भी अपना जीवन धारण कर। शत० ३।३।२।११-१९

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन।
सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः
परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

यज्ञो देवता। भुरिग् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे राजन्! शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में बलरूप से से विद्यमान तुझको हम राष्ट्रवासी प्रजाजन अपने तेजोमय सुवर्णरजतादि अर्थबल से, या अपने भीतर विद्यमान शरीर बल से अदला बदली करते हैं, स्वीकार करते हैं। और अपने आह्लादकारी धन-ऐश्वर्य के द्वारा तुझ प्रजारञ्जक पुरुष को अपनाते, स्वीकार करते हैं। और अपने अमर आत्मा द्वारा तुझ धीर को स्वीकार करते हैं। तेरे चक्रवर्ती राज्य में इस पृथिवी से उत्पन्न हमारे धन-ऐश्वर्य सब तेरे ही हैं, और तू साक्षात् तप का शरीर रूप है। तू प्रजा के पालन करने वाले पिता या परमेश्वर के प्रजापालन के कार्य के लिए हमारे द्वारा वरण करने योग्य है। तुझे प्रजा अपने सर्वोत्तम पशुधन सौंपकर अपना रक्षक स्वीकार करती है। हम प्रजाजन हजारों धन-समृद्धि, सम्पदाएं प्राप्त करके पुष्ट होवें और तुझे पुष्ट करें।

मित्रो न एहि सुमित्रध इन्द्रस्योरुमाविश दक्षिणमुशन्नुशन्तꣳ
स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजाङ्घारे बम्भारे हस्त सुहस्त
कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तान्रक्षध्वं मा वो दभन् ॥ २७ ॥

विद्वान् देवता। भुरिग् ब्राह्मी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे नरोत्तम ! तू राष्ट्र का मित्र बनकर, अन्ताराष्ट्रीय उत्तम २ धारण पोषण करने हारा होकर हमें प्राप्त हो। हे राजन् ! तू ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति के बलवान्, कामना युक्त, सुखप्रद विशाल पद को प्राप्त कर। हे प्रजा के उपदेष्टा, हे शस्त्रास्त्रों से शोभायमान ! हे पाप के शत्रो ! हे शत्रुओं को युद्ध में हनन करने में समर्थ, हे कारीगरी में कुशल ! हे कृशों के उज्जीवक ! अथवा शत्रुओं के कर्शन करने हारे, उनके बल को नीति द्वारा तोड़ने हारे सात मुख्य पदाधिकारी पुरुषो ! ये सब प्रजास्थ पुरुष या प्रतिनिधिगण तुम सबको नाना प्रकार से स्वीकार रहे हैं। उन सबकी आप लोग रक्षा करें और वे तुम सबका विनाश न करें।

[1]परि माग्ने दुश्चरिताद् बाधस्वा मा सुचरिते भज।
[2]उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ २ऽअनु ॥ २८ ॥

अग्निर्देवता। (१) साम्नी बृहती, मध्यमः। (२) साम्न्युष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे शत्रुसन्तापक राजन् ! तू मुझको दुष्ट आचार से सब ओर से हटा। और मुझको उत्तम चरित्र में स्थापित कर। मैं दीर्घायु पुरुषों का अनुगामी होकर सुदीर्घ आयु से युक्त तथा उत्तम जीवन से युक्त होकर उत्तम मार्ग में स्थिर रहूँ। शत० ३। ३। ३। १४ ॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हम लोग कुशल पूर्वक उद्देश्य तक पहुंचाने वाले, पाप से रहित जीवन मार्ग पर चला करें, जिससे सब प्रकार की द्वेष भावनाओं को हम दूर कर सकें और नाना ऐश्वर्य प्राप्त कर सकें। शत० ३। ३। ३। १। १८ ॥

[1]अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सद आसीद। अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः। [2]आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥

वरुणो देवता । (१) स्वराड् याजुषी त्रिष्टुप् ।
(२) विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू पृथिवीस्थ प्रजा का त्वचा के समान रक्षक है । तू पृथिवी के लिए गृह के समान शरण होकर विराज । वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार द्यौलोक को धारण करता है और अन्तरिक्ष को भी व्याप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी सर्वश्रेष्ठ प्रजा पर उनके काम्य सुखों की वर्षा करने वाला होकर आकाश और अन्तरिक्ष और उसमें होने वाले ऐश्वर्यों को अपने हस्तगत करे । वह पृथिवी के विशाल परिमाण को भी मापले, उसका पूरा ज्ञान रखे । वह सम्राट् होकर समस्त भुवनों पर अधिष्ठाता होकर रहे । सर्वश्रेष्ठ राजा के यही नाना प्रकार के कर्त्तव्य हैं ।

वनेषु व्यु॒न्तरि॑क्षं ततान॒ वाज॒मर्व॑त्सु॒ पय॑ उ॒स्रिया॑सु ।
हृत्सु॒ क्रतुं॒ वरु॑णो वि॒क्ष्व॒ग्निं दि॒वि सूर्य॑मदधा॒त् सोम॒मद्रौ॑ ॥ ३१ ॥

वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राजा के उपमानों का समुच्चय करते हैं । सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर वनों पर वर्षा करने के लिये अन्तरिक्ष में मेघों को तानता है । वेगवान् अश्वों और बलवान् पुरुषों में बल, वीर्य और अन्न प्रदान करता है । नदियों में जल, गौओं में दूध और सूर्य किरणों में सूक्ष्म पुष्टिकारक बल रखता है । हृदयों में दृढ़ संकल्प को धारण करता है । आकाश में प्रकाशवन् सूर्य को स्थापित करता है । पर्वत पर सोमवल्ली को या मेघ में सर्व-वृष्ट्युत्पादक जल को धारण करता है । सब नरों के नेता को प्रजा में स्थापित करता है । इसी प्रकार राजा अन्तरिक्ष के समान सब पर आच्छादक, रक्षक रहे । अश्वों में वेग के समान संग्रामों में विजयी रहे । गौओं में दूध के समान निर्बल का पोषण करे । हृदयों में दृढ़ संकल्प के समान प्रजा में स्थिरमति हो । आकाश में सूर्य के समान सबको प्रकाश दे, मेघ में स्थित जल के समान सबको प्राणप्रद हो ।

सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒रारो॑हा॒ग्नेर॒क्ष्णः क॒नीन॑कम् ।
यत्रैत॑शेभि॒रीय॑से॒ भ्राज॑मानो विप॒श्चिता॑ ॥ ३२ ॥

अग्निर्देवता निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू जहां कहीं भी विद्वान् पुरुषों के साथ अपने घोड़ों से जाय वहां तू सूर्य के प्रकाश के समान लोगों की आंखों पर चढ़ा रह । अग्नि के प्रकाश के समान लोगों की आंख की पुतली पर चढ़, अर्थात् अन्धकार में आंख जिस प्रकार सदा चमकती हुई आग या दीपक पर ही जाती है उसी प्रकार लोगों की आंखों की पुतली तेरी ओर ही लगी रहें ।

[1]उ॒स्रावे॒तं धू॑र्षाहौ यु॒ज्येथा॑मन॒श्रू अ॑वीरह॒णौ ब्र॑ह्म॒चोद॑नौ ।
[2]स्व॒स्ति यज॑मानस्य गृ॒हान् ग॑च्छतम् ॥ ३३ ॥

सूर्यविद्वांसौ देवते । (१) भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ।

(२) याजुषी जगती । निषादः ।

भा०—पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ, अपने राष्ट्र के वीर पुरुषों का नाश न करने वाले और ब्रह्मज्ञान या वेदविज्ञान को उन्नत करने वाले जो दो अधिकारी विद्वान् पुरुष हैं, वे आँसुओं से, क्लेश विपत्तियों और बाधा पीड़ा से रहित, सुप्रसन्न चित्त से रहने वाले हमें प्राप्त हों । उन दोनों को गाड़ी में बैलों के समान राष्ट्र-संचालन के कार्य में नियुक्त किया जाय । हे उक्त दोनों समर्थ नरपुंगवो ! आप दोनों दानशील धार्मिक, उदार प्रजाजन के घरों में सुखपूर्वक प्राप्त होओ ।

'अनश्यू' इति महर्षिसम्मतःपाठः । (अनश्च्यूःअनःच्यू) 'अनस्' शकट को 'च्यु' उठाने वा ले जाने वाले, राष्ट्र रूप शकट को चलाने वाले ।

[1]भ॒द्रो मे॑ऽसि॒ प्रच्य॑वस्व भुवस्पते॒ विश्वा॑न्य॒भि धामा॑नि ।
[2]मा त्वा॑ परिप॒रिणो॑ विद॒न् मा त्वा॑ परिप॒न्थिनो॑ विद॒न् मा त्वा

वृका अघायवो विदन्। ³श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सथंस्कृतम् ॥ ३४ ॥

यजमानो देवता। (१) भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः। (२) भुरिगार्ची बृहती मध्यमः। (३) विराड् आर्ची। गान्धारः ॥

भा०—हे पृथ्वी के पालक राजन्! तू मुझ राष्ट्रवासी प्रजाजन के लिये कल्याण करने और सुख पहुंचाने वाला है। पृथ्वी पर विद्यमान समस्त देशों को आक्रमण करके विजय कर। ऐसी दशा में तुझको घेर लेने वाले शत्रुगण न पकड़ सकें। और शत्रु लोग तुझे न जान पावें। और तुझ पर हत्या आदि का पाप करने की इच्छा वाले चोर लोग तुझे न पावें। तू उन पर बाज की न्याईं दूर तक आक्रमण कर और विजयी होकर आ। सत्संग करने योग्य पूजनीय विद्वान् पुरुषों के गृहों को प्राप्त हुआ कर। हम प्रजाजन और तुझ राजा दोनों का वह विजयोपयोगी युद्धोपकरण उत्तम रीति से सुसज्जित हो। या हमारा परस्पर वह सब शासन और विजय कार्य उत्तम रीति से हो।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतथं सपर्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शथंसत ॥३५॥

अभितपनः सूर्यो ऽभितपाः सौर्यो वा ऋषिः। सूर्यो देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः ॥

भा०—मित्र, वरुण दोनों अधिकारियों का आदर करो। मार्गदर्शी विद्वान् पुरुष या राजा के ज्ञान या कानून का आदर करो। दूरदर्शी विद्वानों और राजाओं में शक्तिमान् तथा दिव्य वेदवाणी के विद्वान् के गुणों की प्रशंसा करो।

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥ ३६ ॥

सूर्यो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती, मध्यमः।

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ राजा को ऊपर उठाने वाला है। हे दो सभाओ! तुम श्रेष्ठ राजा की आधार भूत दो राजसभा हों, एक राज नियम निर्मात्री 'लेजिस्लेटिव', दूसरी संचालिका 'एक्जीक्यूटिव' सभा। हे तीसरी सभे! तू ज्ञानों का आश्रय-भूत विद्वत्सभा या ज्ञानसभा है। और हे सभाभवन! तू स्वयंवृत राजा के राज्यशासन का मुख्यस्थान है। हे सर्वश्रेष्ठ राजन्! तू उस शासन और न्याय के उत्तम आसन पर विराजमान हो।

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥३७॥

गौतमो राहूगणः ऋषिः। यज्ञो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

भा०—हे प्रेरक राजन्! जिन स्थानों को साधन सामग्री से तेरे सैनिक प्राप्त कर लेते हैं, उन सब पर तू समर्थ अधिकारी होकर रह। और तू अपनी प्रजा के पुत्र, धन और गृह ऐश्वर्य आदि की वृद्धि करता हुआ, नाव के समान उनको सब कष्टों से पार करता हुआ, उत्तम वीर भटों से युक्त, वीरों को व्यर्थ युद्धकलहों में नाश न करता हुआ, हमारे गृह को प्राप्त हो, हमसे परिचय प्राप्त कर।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

[तत्र सप्तत्रिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥

पंचमोऽध्यायः ।

१—४३ प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वा ति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा ॥ १ ॥

विष्णुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे योग्य पुरुष ! तु अग्नि का स्वरूप है, तुझको राज्य शासन रूप यज्ञ या व्यापक राज्यव्यवस्था के कार्य के लिये स्वीकार करता हूँ । तू आह्लादकारी होने से चन्द्र का स्वरूप है तुझको मैं व्यापक प्रजा के पालन के लिये स्वीकार करता हूँ । तू अतिथि का आतिथ्य करने वाला है । तुझे व्यापक राज्य-शासन के लिये, बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने लिये उत्पादक राष्ट्र का पालन पोषण करने वाले के लिये स्वीकार करता हूँ । व्यापक या प्रजा के भीतरी पूज्यरूप से रहने वाले, अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक या शत्रुतापक, और धन की समृद्धि और पुष्टि प्रदान करने वाले, समस्त कार्यों में मुख्य रूप से वर्तमान होने के लिये तुझे स्वीकार करता हूँ ।

[1]अ॒ग्नेर्ज॒नित्र॑मसि॒ वृष॑णौ स्थ उ॒र्वश्य॑स्या॒युर॑सि पु॒रूरवा॑ असि । [2]गा॒य॒त्रेण॑ त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ त्रैष्टु॑भेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि॒ जाग॑तेन त्वा॒ छन्द॑सा मन्थामि ॥ २ ॥

विष्णुर्यज्ञो वा देवता । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः ।

(२) आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र या प्रजाजन ! तू अग्नि के समान शत्रुतापक राजा का उत्पन्न करने वाला है । हे सेनापति और प्राचीन मन्त्रिन् ! तुम दोनों राजा के कार्यों में बलप्रदान करने वाले हो । हे राजसभे ! तू विशाल

राष्ट्र को वश करने में समर्थ है। हे राजन् या सभापते ! तू बहुत से पुरुषों तक अपना ज्ञानमय उपदेश पहुंचाने में समर्थ सुवक्ता, उपदेष्टा है। हे राजन् ! तुझको ब्राह्मणों के रक्षा-बल से मथता हूँ, क्षात्रबल से मथता हूँ। वैश्य के बल से मथता हूँ, तुझे उन सामर्थ्यों से युक्त करता हूँ।

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

यज्ञो देवता। आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे सेनापति तथा प्रधान मन्त्री! तुम दोनों हमारे लिये समान चित्त वाले, पापरहित, एक समान संकल्पविकल्प वाले होकर रहो। तुम दोनों एक दूसरे के प्रति परस्पर के संग को विनष्ट मत करो। इस राष्ट्र के पालक राजा का भी नाश मत करो। तुम दोनों धन और ज्ञान से युक्त होकर आज से हमारे लिए कल्याण और सुखकारी होकर रहो। शत० ३।४।१।२०-२३ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपावा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳसदमप्रयुच्छन् स्वाहा ॥४॥

अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—राजा सबका रक्षक, विद्वानों का पुत्र होकर, मानो अग्नि में अग्नि के समान प्रविष्ट होकर खूब तेजस्वी होकर विचरता है। वह प्रमाद-रहित होकर उत्तम रीति से दान करे। अपने अधिकारी दिव्य पुरुषों को उनका वेतन आदि देने में और विद्वानों को अन्नवस्त्र देने में आलस्य न करे। शत० ३।४।१।२।५॥

[1]आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन ओजिष्ठाय। [2]अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपा अनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥५॥

विद्युद् देवता । आर्षी उष्णिक । ऋषभः ।
(२) भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! मैं तुझको चारों तरफ से रक्षक होने के लिये सब स्थानों पर पालक होने के लिये, शरीर का रक्षक होने के लिये, शक्तिमान् होने के लिये तथा शक्तिशालियों के ऊपर विराजने के लिये स्वीकार करता हूँ । हे राजन् ! तू कभी भी पराजित न होने वाला युद्ध-विजेता पुरुषों का परम बल है, जो कि कभी विनाश नहीं किया जा सकता, सब बाधाओं, पीड़ाओं और आघातों से रक्षा करने वाला, और निर्विघ्न मार्ग में सबको पहुंचा देने वाला है । हम प्रजाजन जल्दी ही अपने सत्य परिपालन के व्रत को प्राप्त हों । हे राजन् ! तू सज्जनों से प्राप्त होने योग्य उत्तम मार्ग में हमें स्थापित कर । शत० ३ । ४ । २ । १०–१४ ॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि । सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ॥ ६ ॥

अग्निर्देवता । विराड ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! आप व्रतों अर्थात् सत्य धर्माचरण और प्रजाओं के परस्पर व्यवहार शासन व्यवस्थाओं के पालक हैं । तेरे अधीन मैं प्रजाजन व्रतों का पालन करने हारा होऊं । आपकी जो विस्तृत शक्ति है वह शक्ति मुझ प्रजाजन पर शासन करे, और जो मुझ प्रजाजन में व्यापक सामर्थ्य है वह तेरे आधीन रहे । हे व्रतों के पालक प्रभो ! हम दोनों के समस्त व्रत एक साथ रहें । दीक्षा का पालक परमेश्वर मुझे दीक्षाग्रहण करने अनुमति प्रदान करे । और तपश्चर्या का पालक परमेश्वर मुझे तप-ग्रहण करने की अनुमति दे । शत० ३ । ४ । ३ । १–९ ॥

[1]अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे । आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व । [3]आप्याययास्मान्त्स-

खींन्सुन्या मेधयां स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामंशीय । एष्टा रायः प्रेषे भगांय ऋतमृतवादिभ्यो नमो द्यावांपृथिवीभ्यांम् ॥ ७ ॥

सोमो देवता । (१) आर्षी बृहती । मध्यमः । (२) आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे उत्पादक राष्ट्र ! तेरा प्रत्येक अंश बढ़े । तू धन के एकमात्र स्वामी राजा के लिये वृद्धि को प्राप्त हो । हमारे मित्र राष्ट्र को सन्मार्ग से ले जाने वाली बुद्धि से बढ़ा । हम तेरी प्रेरक आज्ञा या शासनव्यवस्था में रह कर इष्ट धनों को प्राप्त करें । सत्यज्ञानियों से ज्ञान और द्यौ पृथिवी में से अन्न प्राप्त करें ।

[1]या ते अग्नेऽयःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचोऽअपावधीत्वेषं वचो अपांवधीत् स्वाहां । [2]या ते अग्ने रजःशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपांवधीत्वेषं वचो अपांवधीत् स्वाहां । या ते अग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा । उग्रं वचो अपांवधीत्वेषं वचो अपांवधीत् स्वाहां ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता (१) विराड् आर्षी बृहती ॥
(२) निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! जो तेरी व्यापक शक्ति अयस् अर्थात् निम्न श्रेणी की प्रजाओं में प्रसुप्त रूप में विद्यमान् नाना सुखों की वर्षा करने वाली, तथा प्रजा के हृदयों में बसी है वह शत्रुओं के उग्र अर्थात् भयकारी वचन का नाश करती है, और प्रदीप्त क्रोधपूर्ण वचन का नाश करती है । इसी प्रकार जो तेरी व्यापक शक्ति रजस् अर्थात् क्रिया-शील मध्यम श्रेणी के लोगों में व्याप्त है वह भी अति सुख वर्षक या बड़ी विस्तीर्ण और निगूढ है । वह भी शत्रु के भयंकर और तीखे वचनों का नाश करती है । इसी प्रकार हे राजन् ! जो तेरी विस्तृत शक्ति हरणशील या ज्ञानवान् पुरुषों के भीतरी या हरणशील, अश्व आदि पशु और सवारियों में, अतिविस्तृत

और निगूढ रूप से विद्यमान है वह भी शत्रु के उग्र और तीक्ष्ण वचनों का नाश करती है। वह शक्ति राजा का उत्तम वचन ज्ञान रूप ही है।

इस मन्त्र के कुछ शब्दों के स्पष्टीकरण नीचे लिखे उद्धरण से स्पष्ट हैं—विशः एतद् रूपं यदयः। श० १३।२।२।१९॥ भूलोकस्य रूपमयस्मयः। तै० ३।७।६।५॥ अन्तरिक्षस्य रूपं रजता। तै० ३।७।६।५ ५॥ राष्ट्रं हरिणः। श० १३।२।९।८॥ हरिणी हि द्यौः शत० १४।१।३।१७॥ विड् वै हरणी। तै० ३।९।७।२॥ हरिश्रियः पशवः। तां० १५।३ १०॥

[1]तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात्। [2]विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना [3]नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्ने अङ्गिर आयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। [4]अनु त्वा देववीतये ॥९॥

अग्निर्देवता। (१) भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः (२) भुरिग् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः। (३) निचृद् ब्राह्मी जगती, निषादः यजुष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे पृथिवि! तू तप्त, भूख आदि से पीड़ित या आधिदैविक, हिम, वर्षा आतप आदि से पीड़ित पुरुष को अयन अर्थात् शरणरूप में प्राप्त होने वाली है अथवा 'तप्त' प्रतप्त या ताप देने वाले अग्न्युत्पादक पदार्थों को देनेवाली है। तू हे पृथिवि! मेरे समस्त वित्त धन ऐश्वर्य आदि भोग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाली है। मुझको संताप पीड़ा, दीनता से बचा। व्यथा, कष्ट, शत्रुओं और दुष्ट जीवों के आक्रमण आदि से बचा। सब प्रजाओं को अपने अधीन बाँधने वाला, अथवा

दुष्टों को बाँधने वाला अग्रणी नेता पुरुष 'नभस्' नाम से प्रसिद्ध है, वह मुझे प्राप्त करे। हे अग्रणी नेता पुरुष! हे शरीर में रस या प्राण के समान समाजशरीर के प्राणभूत पुरुष! तू समस्त प्रणियों को एकत्र कर मिलने और रक्षा करने हारा होने से 'आयु' है। उसी 'आयु' नाम से प्रसिद्ध होकर यहां प्राप्त हो। जो तू इस पृथिवी पर सामर्थ्यवान् है और जो तेरा शत्रुओं से न धर्षण किया जाने योग्य दुःसह, परस्पर संगतिकरण करने का बलकर्म है, उससे तुझे स्थापित करूं। इसी प्रकार सबको व्यवस्था में बाँधने वाला अग्रणी है उसे पृथिवी में प्राप्त करें। हे नभः नाम वाले! हे ज्ञानवन्! तू 'आयु' नाम से प्रसिद्ध है। तू सबको एकत्र करने में समर्थ है। तू दूसरी पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष में भी सामर्थ्यवान् है। वहां जो तेरा अप्रतिहत बल है उससे तुझे स्थापित करता रहूँ। इसी प्रकार हे राजन्! तू 'नभः' नामक है। सूर्य के समान तेजस्वी तू सबको जीवनों का प्रदाता 'आयु' इस नाम से तीसरी पृथिवी अर्थात् द्यौ में सूर्य के समान तेजस्वी है। हे राजन्! जो अप्रतिहत बल है उससे तुझे स्थापित करूं, और विद्वान्, शक्तिमान् पुरुषों की रक्षा के लिए दिव्य पदार्थों के प्राप्ति या भोग के लिए भी तुझे पुनः स्थापित करूं।

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳहासि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳहासि सपत्नसाही देवेभ्यः शुम्भस्व ॥१०॥

वागदेवता। ब्राह्म्युष्णिक् ऋषभः॥

भा०—हे सैनिक शिक्षे! तू शत्रुओं का विजय करनेवाली, उनका नाश करने वाली है। तू राजाओं के लिये शक्तिशाली होकर रह। तू उनके लिये समस्त कण्टकों का शोधन कर, तू राजओं को शोभित कर।

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः

पातिविदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

वाग देवता । निचृद् ब्राह्मी धैवतः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! विद्युत् की गर्जना के समान गर्जना करने वाले आग्नकेयारु का ज्ञाता पुरुष शत्रुनिवारक योद्धाओं द्वारा आगे से रक्षा करे । उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुष शत्रुओं को रुलाने में समर्थ बड़े २ सत्ताधारी सरदार, नृपतियों, क्षत्रिय राजाओं के सहित पीछे से तेरी रक्षा करे । मन के वेग के समान वेगवान्, अतिशीघ्रगामी रथों का अध्यक्ष, अथवा मानसज्ञान और विचार से आगे बढ़ाने वाला अतिविवेकी पुरुष पालन या रक्षा करने में समर्थ, वृद्ध, ज्ञानी, विचारवान्, ठण्डे दिमाग से सोचने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ तुझ राष्ट्रवासी को दायें से रक्षा करे । और समस्त प्रकार के शिल्प को रचनेहारा पुरुष ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले व्यवहारकुशल वैश्यों द्वारा बायें से तेरी रक्षा करे । और मैं राजा क्रोध और रोष से पूर्ण तथा वारण करने योग्य शत्रु को सुसंगठित अपने राष्ट्र से बाहर निकाल देता हूँ ।

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा । भूतेभ्यस्त्वा ॥१२॥

वाग् देवता । भुरिग् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे सैनिक शिक्षे ! तू शत्रुनाशक सिंही है । उत्तम रीति से प्रयोग की जाकर तू विद्वानों या धनसंग्रही वैश्यों को वृत्ति देनेवाली है । तू ब्राह्मणों और क्षत्रियों को वृत्ति देती है । तू उत्तम प्रजाओं को वृत्ति देने वाली नाशक 'सिंहा है । तू उत्तम रीति से प्रयोग की जाकर सुयोद्धाओं को प्राप्त कराती है । तेरा उत्तम उपयोग में समस्त प्राणियों के हित के लिये करूं । राजशासन व्यवस्था भी एक विद्या या दण्ड नीति है वह यहां 'सिंही' वागूरूप में कही गई है ।

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

यज्ञो देवता । भुरिगार्षी अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू स्थिर है । तू पृथिवीवासी प्रजा को दृढ़ कर तू स्थिर पदाधिकारियों को स्थापन करने वाला है । तू अन्तरिक्ष को और उसमें विद्यमान शक्ति मेघ, वायु आदि पदार्थों को बढ़ा, उन पर वशकर के उन शक्तियों को अधिक लाभदायक कर । तू स्थिर सिंहासन पर विराजमान है । तू द्यौलोकस्थ प्रकाश आदि पदार्थ को और अधिक शक्तिशाली कर । तू विद्युत् आदि तेजोमय पदार्थ को पूरा करने वाला है । अथवा शत्रुओं को संताप देने वाले महान् सामर्थ्य या सेनाबल का 'पुरीष' अर्थात् प्राणरूप राजा है । अथ यत् पुरीषं स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥ स एष प्राण एव यत् पुरीषम् । शत० ८ । ७ । ३ । ६ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४ ॥

श्यावाश्व ऋषिः सविता देवता । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—उस महान्, सर्वज्ञ, मेधावी परमेश्वर के ध्यान में, मेधावी, अपने आत्मा की उसमें आहुति करने वाले, या प्राणापान की आहुति देने वाले पुरुष अपने मन को योग द्वारा युक्त करते हैं । और अपनी बुद्धियों, वाणियों और समस्त कर्मों या चेष्टाओं या क्रियाओं को उधर ही लगा देते हैं । मैं उसका विशेष रूप से या नाना प्रकार से वर्णन करूं । वह समस्त उत्तम कर्मों और विज्ञानों का ज्ञाता एक ही है । उस सब के उत्पादक, सर्वप्रेरक, सर्वप्रदाता परमेश्वर की बड़ी भारी स्तुति, या महिमा है । वह सत्यवाणी का उपदेष्टा है, या सत्यवाणी स्वरूप है ।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।

समूढमस्य पाथ्ंसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षडजः ॥

भा०—चर और अचर समस्त जगत् में व्यापक परमेश्वर इस समस्त जगत् को विविध रूपों में व्याप्त होकर रचता है, और उसने सत्त्व, रजस् तमस् तीन प्रकार से इसमें अपने ज्ञान या स्वरूप को स्थापित किया है। और जिस प्रकार धूलिमय देश में कोई पदार्थ लुप्त रहता है और बड़ा यत्न करने पर ढूंढने से प्राप्त होता है उसी प्रकार उसका वह गूढ़ स्वरूप भी खूब गूढ है, और मनन निदिध्यासन द्वारा जानने योग्य है। उसका उत्तम रीति से ज्ञान करो और उसकी उपासना करो।

इरावती धेनुमती हि भूतथ्ंसूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥१६॥

वसिष्ठ ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराड आर्षी त्रिष्टुप धैवतः ॥

भा०—हे सर्वव्यापक परमेश्वर! आप इन दोनों द्यौ और पृथिवी को विशेष रूप से थाम रहे हो। और सब ओर से जैसे किसी पदार्थ के चारों ओर खूटियाँ या कीलें लगाकर वह उनमें तान दिया जाता है उसी प्रकार आपने अपनी धारणशक्ति से पृथिवी को धारण किया है। ये दोनों और पृथिवी अन्न और जल से पूर्ण, दुग्ध देने वाली गौओं और रसप्रद रश्मियों से पूर्ण, उत्तम अन्न चारे से पूर्ण हैं। और मननशील पुरुष को सब प्रकार के पदार्थ प्रदान करती हैं।

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्ती ऊर्ध्वं यज्ञं नयत मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये आयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

विष्णुर्देवता। स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों विद्वानों से बहुत शिक्षा प्राप्त होकर विद्वानों के बीच में अपने गृहस्थ धारण करने के उत्तम संकल्प को

आघोषित करो। आप दोनों सदा प्रकाश की ओर जाते हुए आगे बढ़ो। और हिंसा रहित शुभ कर्म का अनुष्ठान करते हुए गृहस्थ यज्ञ को ऊंचे पद तक पहुंचा दो। और परस्पर कभी कुटिलता का व्यवहार मत करो। और परस्पर सुख से वार्तालाप करो, या गोशाला को स्वीकार करो। दिव्य रमण योग्य, सुखदायी घर में रहते हुए अपने जीवन को नष्ट वा निन्दित मत करो। अपनी सन्तान को नष्ट वा निन्दित मत करो। इस संसार में पृथिवी के वृष्टि युक्त, हरे भरे, लम्बे चौड़े प्रदेश में दोनों आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करो।

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरꣳसधस्थं वि चक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जो पृथिवी के समस्त लोकों को नाना प्रकार से बताता है, जो ऊपर के लोकों को थाम रहा है, जो विक्रम दिखाता हुआ, तीन प्रकार से तीनों लोकों में, अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन शक्तियों द्वारा सर्वत्र व्यापक है, वह महान् व्यापक, सब का स्तुत्य, या सबको वेद द्वारा समस्त पदार्थों का उपदेष्टा है। उस व्यापक परमेश्वर के ही वीर्यों का उत्तम रीति से प्रवचन करूं, औरों को सिखाऊं। और हे पुरुष! उस परमेश्वर की उपासना के लिए तुझको मैं उपदेश करता हूँ।

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

विष्णुर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः।

भा०—हे चराचर में व्यापक परमेश्वर! द्युलोक से, और बड़ी भारी पृथिवी से, तथा विशाल अन्तरिक्ष से तू हमारे दोनों ही हाथों को ऐश्वर्य

से पूर दे। दायें और बायें से भी तू हमें नाना प्रकार का धन प्रदान कर। हे परमेश्वर! तेरी हम उपासना के निमित्त प्रार्थना करते हैं।

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २० ॥

औतथ्या दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। विराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—जिसके महान् तीन प्रकार के विक्रमों में समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थ और लोक लोकान्तर निवास करते हैं, वह व्यापक परमेश्वर अपने महान् सामर्थ्य के कारण, पृथिवी आकाशादि में सर्वत्र व्यापक, समस्त वेदवाणियों में प्रतिपाद्यरूप से स्थित, सबसे उत्कृष्टरूप से वर्णन किया जाता है व वह सबको उपदेश देता है।

विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ॥ २१ ॥

विष्णुर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे राजन्! तू व्यापक राज्यव्यवस्था का मस्तक भाग है। हे प्रधानमन्त्री और प्रधान सेनापति! तुम दोनों उस राज्य के मुख्य भाग हो। हे पुरुष! तू राज्य का सीवन करने वाला हो। हे राजन्! तू राज्य का स्तम्भ है। हे राज्य के प्रजाजन! तू राष्ट्रयज्ञ सम्बन्धी है। तुझे उस व्यापक शासन के लिये व्यवस्थित करता हूँ।

[1] देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्।
[2] आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवा अपि कृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

यज्ञो देवता। (१) साम्नी पंक्तिः। पंचमः।
(२) भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—राजा के राज्य में मैं सेनापति उस 'नारी' अर्थात् मनुष्यों की बनी सेना को अपने वश करूं। मैं दुष्टपुरुषों की गर्दन काटूं। विद्वान् पुरुष राजा को वेदवाणी या राजनीति का उपदेश करें।

रक्षोहणं बलगहनं [2]वैष्णवीमिदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि [3]यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं बलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

यज्ञो देवता । (१) याजुषी बृहती । मध्यमः । (२) स्वराड् ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू दुष्टपुरुषों का नाश करने वाली, गुप्त हिंसा के प्रयोगों का विनाश करने वाली, परस्पर संगतिकारिणी राष्ट्रनीति रूप विशाल वाणी का उपदेश कर । मैं इस प्रकार उस गूढ हिंसाप्रयोग को खोद कर परे करूं, जिस हिंसाकारी प्रयोग को सन्तान आदि, मन्त्री या मेरे गृह का कोई सम्बन्धी गाड़े । इसी प्रकार जिसको बल-विद्या में मेरे समान या मेरे से न्यून या अधिक बलशाली पुरुष गाड़े उस संवृत घातक प्रयोग को भी मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से खोद डालूं । मेरा बन्धु या बन्धुजनों से दूसरा व्यक्ति जिस गुप्त प्रयोग को गाड़े, यह मैं उस गुप्त घातक प्रयोग को उखाड़ दूं । जिस गुप्त प्रयोग को मेरे साथ उत्पन्न भ्राता, सहोदर भाई, या सहोदर भ्राता आदि से अतिरिक्त आदमी गाड़ दे उसको भी मैं यह प्रत्यक्ष रूप में उखाड़ दूं । इस प्रकार मैं सब घातक गुप्त क्रिया को उखाड़ दूं, निर्मल कर दूं ।

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ॥ २४ ॥

सूर्यविद्वांसौ देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू सर्वोपरि विराजमान, शत्रुओं का नाश करने वाला है । तू गर्वीले शत्रुओं का हन्ता और परस्पर की रक्षा करने वाले संघों में सर्वोपरि विराजमान है । हे राजन् ! तू विघ्नकारी पुरुषों का

नाशक होकर समस्त जनों पर राजा के समान विराजमान है। तू न स्नेह करने वाले शत्रुओं का नाशक होकर समस्त प्रजाओं पर राजा के रूप में विराजमान होता है।

[1]रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवं नयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां [2]वलगहना उपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवाः स्थ ॥२५॥

विष्णुर्यज्ञो वा देवता। (१) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः।

(२) आर्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—व्यापक राष्ट्र के पालक, राक्षसों के नाशकारी, शत्रु के घातक प्रयोगों को नाश करने वाले आप लोगों को मैं अभिषिक्त करता हूँ। मैं विघ्नकारी दुष्टों के नाशक, घातक साधनों के नाशक आप वीर पुरुषों को अपने अधीन रखता हूँ। दुष्टों के नाशक, गुप्त रूप से रखे घातकसाधनों के नाशक आप सब वीरपुरुषों को अपनी रक्षा में रखता हूँ। हे प्रधान अधिकारियो! आप दोनों भी राक्षसों और इनके गुप्त घातक प्रयोगों के नाशक हो। तुम दोनों को मैं अपने समीप के पद पर नियुक्त करता हूँ, और विवेक से निश्चत् करके उचित पद पर नियुक्त करता हूँ। यही विष्णु अर्थात् राष्ट्रयज्ञ की उचित नीति है। हे राष्ट्र! तू राज्यपालनरूप सद्व्यवस्था का स्वरूप है। और हे अधिकारी पुरुषो! आप लोग भी प्रजापति राजा के उपकारक भाग हो। अध्यात्म पक्ष में—शतपथ ने इन्द्रियों को विष्णुरूप आत्मा का उपकारक, रक्षोघ्न, संवरणकारी अज्ञान का नाशक माना है। उनमें चेतना का स्थापन अवनयन है, लोमादि लगाना अवस्तरण है, उनमें दो जबाड़े स्थित हैं, उनको दृढ़रूप से स्थापित करना पर्यूहण है। वहाँ शरीरमय अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है।

[1]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
आददे नायसीदमहꣳ रक्षसाङ्ग्रीवा अपि कृन्तामि । [2]यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वा ऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ २६ ॥

यज्ञो देवता । (१) आर्षी पंक्तिः । पंचमः ।
(२) निचृदार्षी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू हमारे शत्रुओं को दूर करने में समर्थ है अतः तू 'यव' है, तू हम से द्वेष करने वालों या ईर्षादि दोषों को दूर कर । और उन शत्रुओं को जो हमें कर नहीं देते हैं दूर कर । पिता, पालक, ज्ञानी पुरुषों के पदों पर विराजमान प्रजाजन, हे राजन् ! तुझे, द्यौलोक में सूर्य के समान स्थापन करने के लिये, अन्तरिक्ष में वायु के समान, और पृथिवी के हित के लिये अभिषिक्त करें । तू स्वयं समस्त प्रजा के पालक पुरुषों का आश्रय है ।

उद्दिवꣳस्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा ।
मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि । ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ २७ ॥

यज्ञो देवता । ब्राह्मी जगती । निषादः ।

भा०—हे राजन् ! प्रकाश को जिस प्रकार सूर्य उठा रहा है, उस प्रकार तू भी प्रकाश या ज्ञान और उत्तम पुरुषों को ऊपर स्थापित कर । अन्तरिक्ष को जिस प्रकार वायु पूर्ण कर रहा है उसी प्रकार अन्तरिक्ष को या मध्यम श्रेणी के लोगों को पूर्ण कर या पालन कर, और तू इस पृथिवी पर राष्ट्र की वृद्धि कर । तेजस्वी पुरुष वायु के समान प्रबल होकर तुझको संचालित करे । न्यायकर्त्ता और दुष्टों का वारक दोनों अधिकारी भी अपने स्थायी सामर्थ्य से तुझे संचालित करें । तुझको ब्राह्मणों का

पोषक, क्षात्रबल का पोषक, ऐश्वर्यों को पुष्ट करने वाला जानता हूँ। तू ब्रह्मज्ञान और विद्या को बढ़ा, क्षात्रबल को व वीर्य को बढ़ा, आयु को बढ़ा प्रजा की वृद्धि कर।

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

यज्ञो देवता। आर्षी जगती। निषादः ॥

भा०—हे पृथिवी! तू सदा स्थिर है, उसी प्रकार यह दानशील या संगतिकारक प्रजा भी इस प्रतिष्ठा के स्थान पर प्रजा और पशुओं सहित स्थिर होकर रहे। हे आकाश और भूमि! तुम दोनों घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण होवो। हे राजशक्ते! तू ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के लिये छत हो, उसको सब दुःखों और आघातों से बचानेवाली आड़ हो। हे राजन्! तू सब श्रेणियों के मनुष्यों के लिये छाया, शरण या आश्रय है।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ २९ ॥

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः। ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे स्तुतियों के उपयुक्त पात्र! ये स्तुतियों सब प्रकार से तेरे लिये हों। वृद्ध या वृद्धपुरुषों से युक्त तुझको लक्ष्य करके ये सब बढ़ी हुईं और तृप्त करने वाली सम्पत्तियाँ प्राप्त हों।

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ॥३०॥

ईश्वरसभाध्यक्षौ देवते। आर्च्युष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे सभापते! हे राजन्! तू ऐश्वर्यवान् राजपद का, सूत्र के समान सीकर उसे दृढ़ करने वाला है। जिस प्रकार सूत्र वस्त्र के खण्डों को सीकर दृढ़ कर देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्रों के भिन्न २ ऐश्वर्यवान् भागों को सीकर दृढ़ कर देता है। राजा के पद पर तू स्थिर

रूप से विराजने वाला है । हे राजसिंहासन पद ! या हे । राष्ट्र ! तू इन्द्र का पद है । तू समस्त विद्वान् पुरुषों का सम्मिलित एक सामूहिक ज्ञानपद है ।

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः ।
श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ॥ ३१ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्च्युनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू विशेष ऐश्वर्य और सामर्थ्य से युक्त है । नौका के समान सब प्रजाओं के भार को अपने ऊपर उठा लेने में समर्थ है । जिस प्रकार अग्नि आहवनीय पदार्थों का वहन करता है उसी प्रकार तू राज्य के कार्यों को वहन करने में समर्थ है । तू सर्वत्र पहुंचने वाला, या कल्याणकारी है । प्राण के समान सबको चेतना देने वाला है । तू सबको प्राप्त करने वाला है, सर्वज्ञाता या सब धनों का स्वामी है । तू ज्ञान का वर्धक या सब को ऐश्वर्य बांटने वाला है ।

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू सब का वश करने हारा, कान्तिमान्, तेजस्वी और क्रान्तदर्शी है । तू शत्रु है । सबका भरण पोषण करने में समर्थ है । तू रक्षा करने में समर्थ है । अन्न या सेवा करने योग्य गुण से युक्त है । तू स्वयं शुद्ध, निष्पाप और अन्यों का भी शोधन करने हारा है । तू परिषद् अर्थात् विद्वानों की सभा में विराजने हारा है । तू पवित्र करने वाला है । तू सबको परस्पर बांधने, संगठित करने हारा है । दुष्टों को खूब पीड़ा देने वाला है । तू सहिष्णु और तितिक्षु है । अन्नों और

ऐश्वर्य को क्षरित करने वाला, प्रदान करने वाला है। सत्य का कारण करने वाला, आकाश में चमकने वाला साक्षात् सूर्य है।

समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येकपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

अग्निर्देवता । ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन्! तू समस्त राष्ट्रवासी जनों में व्यापक, और समुद्र के समान गंभीर है। तू एक छत्र राजा के रूप में ज्ञात और राष्ट्र में व्यापक है। तू राष्ट्र का आश्रय और किसी से न मारने योग्य, सब से अधिक बलवान् है। तू इन्द्र के पद का स्वामी और सबका उपदेष्टा, आज्ञापक है। हे विद्वत्सभे! तू स्वयं परिषद् अर्थात् विद्वानों का आश्रय स्वरूप है। हे सत्य व्यवहार के द्वारभूत दण्डकर्त्ता और न्यायकर्ता! तुम दोनों मुझ सत्यवादी प्रजाजन को कष्ट मत दो। हे समस्त मार्गों के स्वामिन्! मुझको जीवन मार्गों के पार उतार दो। इस विद्वानों के चलने योग्य मोक्ष मार्ग में मेरा सदा कल्याण हो।

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिंसिष्ट ॥ ३४ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—राजा कहता है कि हे विद्वान् पुरुषो! मुझको मित्र की आंख से देखा करो। हे विद्योपदेश के सहित ज्ञानी पुरुषो! आप लोग सभी समान रूप से ज्ञानवान् हो। आप लोग अपने ज्ञान-उपदेश सहित नमन करने वाले, शिक्षाकारी बल और शत्रुओं को रुलाने वाले सैन्य से मेरी रक्षा करो। हे अग्नि के समान प्रकाशवन्, ज्ञानी पुरुषो! मेरा पालन करो और मेरी न्यून शक्तियों क पूर्ति करो। हे अग्रणीरूप मैं

चलने हारे नेता पुरुषो ! आप लोग मेरी रक्षा करो । आप लोगों को मैं सदा नमस्कार करता हूँ । आप लोग मेरा कभी घात मत करें ।

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानांᳬसमित् । त्वᳬ सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि वरूथᳬ स्वाहा । जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५ ॥

ऋतुर्भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू नानारूप से प्रकाशित होने वाला या सब प्रकार का ज्योति, प्रकाशक, सूर्य के समान तेजस्वी है । और समस्त देवों, विद्वानों और राजपदाधिकारियों को अच्छी प्रकार तेजस्वी बनाने और चमकाने वाला है । हे सब के प्रेरक राजन् ! तू शरीरों के नाश करने वाला और परस्पर द्वेष, कलह करने वाले और अन्य अर्थात् शत्रुओं से किये गये या लगाये गये, गूढ़ शत्रुओं से भी राष्ट्र को बचाने के लिये शत्रु के वरण करने में समर्थ विशाल सेनाबल को नियमन करता है । तेरे निमित्त हमारा यह उत्तम त्याग है । आज्य, घृत के समान पुष्टि कारक या आजि, संग्राम योग्य बलवीर्य को सेवन एवं प्राप्त करता हुआ आप्त राजा उत्तम व्यवस्था से, इस उत्तम आहुति को प्राप्त करे ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

अगस्त्य ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! हे विद्वन् ! तू समस्त प्रशस्त कर्मों और ज्ञानों को जानता हुआ ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये हमें उत्तम मार्ग से ले चल । और हमसे कुटिल पाप को दूर कर । तेरे लिये हम बहुत २ आदरसूचक वचन प्रयोग करें ।

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् । अयं

वाजंजयतु वाजसातावयᳬ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ३७ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—यह अग्रगामी सेनापति ! हमारी रक्षा करे । और यह संग्राम सम्बन्धी गढ़ों को ताड़ता हुआ और संग्रामों को विजय करता हुआ आगे बढ़े । और संग्राम कार्य में धन, अन्न व ऐश्वर्यों को भी विजय करे । और खूब प्रसन्न होकर उत्तम पराक्रम करता हुआ शत्रुओं को जीते ।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।
घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

विष्णुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे शत्रु के गढ़ों में और राष्ट्र में प्रवेश करने में चतुर सेनापते ! तू खूब अधिक पराक्रम कर । हमारे निवास के लिये बहुत अधिक ऐश्वर्य एवं विशाल राष्ट्र को उत्पन्न कर । घृत से चमकने वाली अग्नि के समान तू भी घृत का सेवन कर । और राष्ट्रयज्ञ के पति राजा को अपनी उत्तम आहुति से भली प्रकार विजय कार्य से पार कर दे ।

[1]देव सवितरेष ते सोमस्तᳬ रक्षस्व मा त्वा दभन् । [2]एतत्त्वं देव सोम देवो देवाँ२॥ उपागा इदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ॥ ३९ ॥

सोमसवितारौ देवते । (१) साम्नी बृहती । मध्यमः ।
(२) आर्षी पंक्तिः पंचमः ॥

भा०—विजय करने के अनन्तर सेनापति राजा के प्रति कहे—हे राजन् ! हे सब के प्रेरक और उत्पादक ! यह ऐश्वर्य समूह तेरा है । उसकी रक्षा कर । इस रक्षाकार्य में तुझको शत्रुगण न मार सकें । हे सुखप्रद ऐश्वर्यों के दाता राजन् ! हे सबके प्रेरक ! सब को अधिकार प्रदान करने द्वारा अन्य राज-शासकों को प्राप्त हो ।

राजा का वचन—मैं इस प्रकार धनैश्वर्य की वृद्धि, पुष्टि के सहित राष्ट्र के मनुष्यों के प्रति अपने को राज्य-रक्षा के कार्य से उत्तम रीति से आहुति करता हूँ। और वरुण के पाश से अपने आपको मुक्त करूं।

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि। यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। गांधारः॥

भा०—नियुक्त शासकजन राजा से अधिकारक-पद की दीक्षा इस प्रकार लेते हैं—हे राजन्! हे राज्यव्रतों को पालन करने हारे! तुझको हम वचन देते हैं कि जो तेरे में राज्य व्रतों और परस्पर की सत्य प्रतिज्ञाओं के पालन करने वाला तेरा स्वरूप मुझ में है वह तुझ में भी हो और जो मेरा स्वरूप तुझ में विद्यमान है। वह मेरे में भी हो अर्थात् राजा जो अधिकारी अपने अधीन अधिकारियों को प्रदान करता है वे राजा के ही समझे जांय। और जो अधिकार राजा के हैं वे कर्यनिर्वाह के अवसर पर अधिकारियों के समझे जांय। हे व्रतों के पालक राजन्! हम दोनों के कर्त्तव्य कर्म ठीक २ प्रकार से रहें। अधिकारदान का स्वामी तू राजा मुझे योग्य पदाधिकार की प्राप्ति की अनुमति दे और अपराधियों को सन्तप्त करने या दण्ड देने के सब अधिकारियों का स्वामी राजा मुझको दण्ड देने के भी अधिकार की उचित रीति से अनुमति दे।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

विष्णुर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—व्याख्या देखो म० ३८॥

अत्यन्याँ२ऽ अगान्नान्याँ२ऽउपागामर्वाक्त्वा परेभ्योऽविदम्परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा

देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः ॥ ४२ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! मैं प्रजा पुरुष तेरे से भिन्न और शत्रु-राजाओं को अतिक्रमण कर दूं, और अन्य नाना राजाओं के समीप भी शरण के लिये न जाऊं। दूर के राजाओं की अपेक्षा तुझे समीप, और निकृष्ट जनों की अपेक्षा तुझे उत्कृष्ट जानकर तेरे समीप प्राप्त हुआ हूँ। हे देव राजन् ! हे महावृक्ष के समान छायाप्रद ! विद्वानों का परस्पर संगतिलाभ करने के लिये तेरी हम सेवा करते हैं। और विद्वान् लोग भी विद्वानों की परस्पर संगति लाभ के लिये तुझे प्राप्त हों। हम लोग व्यापक राष्ट्र के पालन के लिये तुझे नियुक्त करते हैं। हे दुष्टों को दण्ड देने वाले राजन् ! तू हमारी रक्षा कर। हे अपने ही बल से समस्त राष्ट्र की रक्षा करने हारे शस्त्रवन् ! तू इस राष्ट्र की हत्या मत कर।

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव । अयं हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ॥ ४३ ॥

यज्ञो देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे शस्त्रास्त्रों के धारण करने हारे ! तू आकाश के निवासी लोकों को विनष्ट मत कर। इसी प्रकार अन्तरिक्ष के प्राणियों का मत कर। पृथिवी और उसके वासी प्राणियों से प्रेमभाव से मिलकर रह। हे राजन् ! यह शस्त्र अति तीक्ष्ण होकर तुझको बड़े भारी सौभाग्य के लिये नियुक्त करता है। इसलिये हे राजन् ! आप वृक्ष के समान ही बहुत से अंकुरों के समान बहुत से कार्य से युक्त होकर नाना मार्गों में

उन्नति और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो, और हम सब भी सहस्रों शाखाओं सहित नाना प्रकार से फलें फूलें ।

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

[तत्र त्रयश्चत्वारिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारनिरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पंचमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

॥ ओ३म् ॥ [1]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे नार्यसीदमहं रक्षसां ग्रीवा अपिकृन्तामि । [2]यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीः[3] दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताँल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि ॥ १ ॥

सविता देवता । (१) आर्षी पंक्तिः धैवतः ॥ (२) आसुर्युष्णिक् । (३) भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५, मं० २६ ॥

[1]अग्रेणीरसि स्वावेश उन्नेतॄणामेतस्य वित्तादधि त्वा स्थास्यति [2]देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु सुपिप्पलाभ्यस्त्वौषधीभ्यः । द्यामग्रेणास्पृक्ष आन्तरिक्षम्मध्येनाप्राः पृथिवी मुपरेणादृंहीः ॥ २ ॥

सविता देवता । (१) निचृद् गायत्री । षड्जः । (२) स्वराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! हे सभाध्यक्ष ! तू अग्रणी है । तू उत्तम कोटि के

नेताओं को स्थापित करने वाला है। तू इस राष्ट्र के पालन कार्य को भली प्रकार जान। सबका प्रेरक परमेश्वर तेरे पर भी अधिष्ठाता के रूप में विद्यमान रहे और वह तुझको मधुरगुण से चमकावे। और वह तुझे उत्तम फलवती, और दोषों का नाश करने वाली क्रियाओं से भी प्रकाशित करे। तू अपने अग्रगामी यश से द्यौलोक को स्पर्श कर, सूर्यलोक के समान बन। अपने मध्य, साधारण कार्यों से अन्तरिक्ष को पालन कर। और उत्कृष्ट व्यवस्था से पृथिवी लोक को दृढ कर।

[1]या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
[2]अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमवभारि भूरि। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृ ᳬ ह क्षत्रं दृ ᳬ हायुर्दृ ᳬ ह प्रजां दृ ᳬ ह ॥ ३ ॥

दीर्घतमा ऋषिः। विष्णुर्देवता। (१) आर्च्युष्णिक्। (२) साम्नीत्रिष्टुप्
ऋषभः। (३) भुरिगार्ची त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! तेरे योग्य जिन सभा आदि भवनों को प्राप्त करना चाहते हैं वे ऐसे हों जहाँ बहुत दीप्त किरणें आया करती हों। अधिक प्रशंसनीय तथा व्यापक राज्य का वही उत्कृष्ट स्थान इन भवनों में विराजता है। मैं तुझको ब्राह्मणों, क्षत्रियों और ऐश्वर्य से पुष्ट वैश्यों की यथोचित वृद्धि को विभाग करने वाला जानता हूँ। तू ब्राह्मणबल को बढ़ा, क्षात्रबल को पुष्ट कर, प्रजा की आयु को बढ़ा और प्रजा की भी वृद्धि कर।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे राजसभा के सभासदो! व्यापक शक्तिवाले राजा के उन कर्मों का निरीक्षण करो जिनसे वह नाना नियमों को बांधता है। तुममें से प्रत्येक ऐश्वर्यवान् राजा का योगदायी मित्र है।

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥

ऋष्यादिः पूर्ववत् । गायत्री ॥

भा०—राष्ट्र के व्यापक उस राजा के ही परम पद को विद्वान् प्रजा के प्रेरक नेता पुरुष आकाश में सूर्य के समान तेज से प्रतप्त होने वाला, देखते हैं ।

[1] परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम् । [2] दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

विद्वांसो देवताः । (१) आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः । (२) भुरिक् साम्नी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू प्रजा की चारों ओर से रक्षा करने वाला है । इसी कारण तुझको विद्वान् प्रजाएं चारों ओर से अधिकारी रूप में घेर कर बैठें । राष्ट्र की व्यवस्था करने हारे इस दानशील मनुष्यों के उपयोगी ऐश्वर्य चारों ओर से प्राप्त हों । हे राजन् ! तू प्रकाशमय सूर्य से उत्पन्न होने वाले किरण समूह के समान तेजस्वी है । और यह पृथिवी पर निवास करने वाला जन तेरे ही अधीन है । अरण्यजाति भी तेरी ही सम्पत्ति है ।

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान् ।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

त्वष्टा देवता । आर्षी बृहती । मध्यमः ।

भा०—हे राजन् ! तू प्रजा के नित्य समीप रह कर उनका पालन करने वाला है । उत्तम गुणवाली प्रजाएं, कान्तिमान् तथा राज्य के कार्य-भार को उत्तम रीति से वहन करने वाले विद्वान् पुरुषों को प्राप्त हों । हे देव ! हे प्रजाओं के दुःखों को काटनेहारे ! तू पशु, प्रजा और नानाविधि

सम्पत्तियों का उपभोग कर। नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ तुझे आस्वाद दें। शत ३। ७। ३। ९-१२॥

[1]रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि। [2]ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः॥ ८॥

बृहस्पतिर्देवता। (१) प्राजापत्यानुष्टुप्। ऋषभः॥ (२) निचृत् प्राजापत्या बृहती। मध्यमः।

भा०—प्रजाएं राष्ट्र में आनन्दित रहें। हे बड़े राष्ट्र के पालक! तू समस्त ऐश्वर्यों को धारण कर। सत्य, न्याय के पाश या व्यवस्था से देवोचित हविः अर्थात् आदान योग्य कर द्वारा तुझे नियुक्त करता हूँ। तू अब मनुष्य होकर भी प्रजा के भीतर के दुष्ट पुरुषों और शत्रुओं और प्रजाओं को परास्त कर।

[1]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। [2]अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि। [3]अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। [4]अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥ ९॥

सविता अश्विनौ पूषा च देवताः। (१) प्रजापत्या बृहती। मध्यमः। (२, ४) आसुरी पंक्तिः। निचृदार्ची पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! तुझको सर्वप्रकाशक, सर्वोत्पादक परमेश्वर के उत्पादित जगत् में, और सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाशमान तेजस्वी पाप-बाधक शक्तियों या बाहुओं से और सब के पोषक पृथिवी के हाथों के समान धारण और आकर्षण से स्वीकार करता हूँ। अग्रणी सेनानायक और शान्तस्वभाव न्यायाधीश दोनों से युक्त तुझको राज्यकार्य में नियुक्त करता हूँ। सेनापति और न्यायाधीश से युक्त अथवा अग्नि के समान सन्तापकारी और चन्द्रमा के समान आल्हादकारी भयानक और सौम्य गुणों से युक्त तुझको जलों और उनके समान आप्त पुरुषों, और तीव्र

रसयुक्त ओषधियों से अभिषिक्त करता हूँ। तुझे इन महान् राज्याभिषेक के लिये तेरी माता अनुमति दे, पिता तुझे अनुमति दे, भाई तुझे अनुमति दे, एक ही गर्भ में सोने वाला सहोदर तुझे अनुमति दे। एक जन-समुदाय में तेरे साथ रहने वाला साथी या सहपाठी या सहवर्गी पुरुष और तेरा मित्रगण तुझे अनुमति दे। शत० ३। ७। ४। ३-५॥

[1]अपां पेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तञ्चित्सद्देवहविः। [2]सं ते प्राणो वातेन गच्छतासं समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा १०

आपो देवता (१) प्रजापत्या बृहती। मध्यमः। (२) निचृदार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे दीक्षाप्राप्त राजन्! तू आप्तपुरुषों का पालन करने वाला है। दिव्य आप्त पुरुष आस्वादन करने योग्य, उत्तम तथा श्रेष्ठ अन्न आदि पदार्थों का स्वयं भोग करें और तुझे भी भोग करावें। बड़ों के आशीर्वाद से तेरा प्राण वायु के साथ मिल कर अनुकूल रूप से गति करे। और तेरे अंग या तेरे राष्ट्र के अंग, विद्वान् पुरुषों द्वारा, परस्पर संगत रहें। तू राष्ट्रमय यज्ञ का पालन होकर उत्तम आशाओं, शुभ कामनाओं और आशीर्वाद से युक्त हो। शत० ३। ७। ४। ६-९॥

[1]घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथासं रेवति यजमाने प्रियं धा आविश। [2]उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव। [3]वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

वातो देवता। (१) भुरिगार्ष्युष्णिक। (२) भुरिगार्ष्युष्णिक। ऋषभः।
(३) निचृत प्राजापत्या बृहती॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों तेज और स्नेह से युक्त होकर पशुओं का पालन करो। स्त्री! तू ऐश्वर्य और सौभाग्य सम्पन्न गृहपति के आश्रय रह कर उसका प्रिय आचरण कर, और उसके एकचित होकर रह। दिव्यगुणों वाले प्राण के साथ इसकी सहसंगिनी होकर विशाल अन्त-

रिक्ष से जिस प्रकार वायु सबकी रक्षा करता है करता है उसी प्रकार बड़े २ संकट से तू उसकी रक्षा कर। और इसके होमयोग्य अन्न आदि पदर्थों से स्वयं भी यज्ञ कर। और इसके शरीर से तू संगत होकर पुत्रलाभ कर। हे सुखों की वर्षा करने हारी। बड़े भारी गृहस्थ रूप यज्ञ में गृहस्थ यज्ञ को पालन करने में समर्थ गृहपति को स्यापित कर। गृहस्थयज्ञ में आये विद्वानों का प्रेमवचनों से सत्कार कर। और यज्ञ पश्चात् भी विद्वानों का आदर सत्कार करो।

माहिर्भूर्मा पृदांकुर्नमस्त आतानानर्वा प्रेहि।
घृतस्य कुल्या उप ऋतस्य पथ्या अनु॥ १२॥

विद्वांसो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे पुरुष! तू सर्प के समान कुटिल मार्ग पर चलने वाला या अकारण क्रोधी मत हो। मूढ़ के समान अभिमानी, व्यग्र के समान हिंसक, या अजगर के समान अपने संगी को हड़पजाने वाला मत हो। हे प्रजा के सुख को भली प्रकार विस्तृत करने वाले पुरुष! हम तेरा आदर करते हैं। तू अहिंसक होकर आ। और घृत आदि पुष्टिप्रद पदार्थ की धारा को प्राप्त हो, स्वीकार कर। और सत्यज्ञान के मार्गों का तू अनुसरण कर।

देवीरापः शुद्धा वोढ्वꣳ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म॥ १३॥

आपो देवताः। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे जलों के समान स्वच्छ विदुषी स्त्रियो! आप लोग शुद्ध आचरण वाली होकर स्वयंवर पूर्वक विवाह करो। और तुम कन्याजन विद्वान् पुरुषों में ही उत्तम रीति से उनकी अर्धाङ्गिनियों के रूप में उनको प्रदान की जाओ। कन्यायें उत्तर दें—हे विद्वान् पुरुषो! हम कन्याएं

विद्वान् पुरुषों के हाथों दी जावें। पुरुष कहें—हम विवाह करने वाले उनका पाणिग्रहण करने वाले होवें। शत० ३ । ८ । २ ॥

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि पायुं ते शुन्धामि चरित्राँस्ते शुन्धामि ॥ १४ ॥

विद्वांसो देवताः । भुरिगार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—स्त्री स्वयंवर के अवसर पर पति को कहती है—मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूँ, तेरे प्राण को शुद्ध करती हूँ, तेरी आंखों को शुद्ध करती हूँ, तेरे कान को शुद्ध करती हूँ, तेरी नाभि को शुद्ध करती हूँ, तेरे प्रजननाङ्ग को शुद्ध करती हूँ, तेरी गुदाभाग को शुद्ध करती हूँ, और तेरे चरणों और आचरणों को भी शुद्ध करती हूँ।

[1]मनस्त आप्यायतां वाक्त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायताश्चक्षु-स्त आप्यायताᳫं श्रोत्रं त आप्यायताम । यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳫं हिᳫंसीः ॥ १५ ॥

विद्वांसो देवताः । (१) भुरिगार्ची त्रिष्टुप । धैवतः ॥ (१) आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे मनुष्य! तेरा संकल्प विकल्प करने वाला चित्त बढ़े। तेरी वाणी, प्राण, चक्षु, कान, ये समस्त इन्द्रियां शक्तिमान् हों। जो तेरा क्रूर स्वभाव है वह दूर हो। जो तेरा स्थिर निश्चय या स्थिर स्वभाव है वह वृद्धि को प्राप्त हो वह भी और शुद्ध हो। सब दिनों के लिये शान्ति प्राप्त हो। हे ओषधि और ओषधियों के प्रयोक्ता वैद्य लोगो! तुम इसकी रक्षा करो। हे शस्त्र वा हे शस्त्रधारी पुरुष! इस मनुष्य को मत मार। शत० ३ । ८ । २ । १२ ॥

[1]रक्षसां भागोऽसि निरस्तᳫं रक्ष इदमहᳫं रक्षोऽभितिष्ठामीद-महᳫं रक्षोऽवबाध इदमहᳫं रक्षोऽधमन्तमो नयामि । [2]घृतेन

द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतङ्गच्छतम् ॥ १६ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते । (१, २) ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे दुराचारिन् ! तू दूसरों के कार्यों का नाश करके अपने स्वार्थ की रक्षा करने वाले नीच पुरुषों का ही भाग है । इस लिये ऐसा स्वार्थी पुरुष नीचे गिरा दिया जाय । मैं इस प्रकार दुष्ट पुरुष का मुका-बला करूं । मैं इस प्रकार विना विलम्ब के राज्यकार्य के विघ्नकारी पुरुष को नीचे गिरा कर दण्डित करूं । और शीघ्र ही इस प्रकार के विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को नीचे गहरे अंधकार में या अंधेरी कोठरी में घोर दुःख भोगने के लिये भेज दूं । और हे स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों घृत आदि पुष्टिप्रद पदार्थ से अच्छी प्रकार सम्पन्न रहो । ज्ञानवन् ! तू अत्यन्त सूक्ष्म २ तत्त्वों का भी ज्ञान कर । हे विद्वान् पुरुष ! तू अग्नि के स्वभाव का स्वयंप्रकाशक होकर अज अर्थात् अविनाशी परमात्मविष-यक ज्ञान को प्राप्त कर । यही सबसे उत्तम आहुति है । हे इस प्रकार उत्तम उपदेश-ज्ञान की परस्पर आहुति प्रदान या ग्रहण करने वाले स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों सर्वोच्च, सबका परम बन्धनकारी, सबके जन्म-मरण के कर्त्ता परमेश्वर का ज्ञान करो, उसको प्राप्त करो । शत० ३ । ८ । २ । १३-२२ ॥

इदमापः प्रवहतावद्यञ्च मलञ्च यत् । यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपे अभीरुणम् । आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुञ्चतु ॥१७॥

आपो देवताः । निचृद् ब्राह्म्युनष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे जलों के समान मलशोधक आप्त पुरुषो ! जो निन्दनीय कर्म और जो मलिन कार्य है और जो कुछ मैं दूसरे के प्रति द्रोहकार्य द्वेष, घात, वैर आदि करूं, और जो असत्यभाषण करूं, और जो निर्भय होकर मैं दूसरे को कोसूं, निन्दाजनक कहूँ उस सब मल को आप लोग

बहुत शीघ्र जलों के समान बहाकर दूर करो और मुझे स्वच्छ करदो। वे आप्तपुरुष तथा पवित्र करनेहारा पुरुष मुझको उस पाप से छुड़ावे।

[1]सं ते मनो मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम्। रेडस्यग्निष्ट्वा श्रीणात्वापस्त्वा समरिणन्वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णो रंहा ऊष्मणो व्यथिषत्प्रयुतं द्वेषः ॥ १८ ॥

अग्निर्देवता। (१) प्राजापत्यानुष्टुप्। गांधारः। (२) निचृदार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे मनुष्य! तेरा मन मनन-सामर्थ्य से युक्त हो, प्राण प्राण-बल से युक्त हो। तू ज्ञानवान् होने योग्य है। अग्नि रूप आचार्य तुझे ज्ञान में परिपक्व करे। आप्तपुरुष तेरे संग रहें। प्राण की तीव्रगति और परिपोषक सूर्य की उष्णता से अर्थात् तप से मुझे तपस्या कराई गई है। तुझ से द्वेषभाव को पृथक् कर दिया गया है। शत० ३। ८। ३। ९–२४॥

घृतं घृतपावानः पिबत् वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९ ॥

विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्म्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे घृत आदि के पान करने हारे पुरुषो! आप घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों का पान करो। आप लोग उत्तम पशु संपत्ति से प्राप्त दूध, दही, मक्खन और नाना लेह्य पदार्थ बनाकर खाओ। हे अन्नादि पदार्थ तू अन्तरिक्ष की हवि है। इस लिये इसकी आहुति दिया करो। इन पदार्थों को समस्त दिशाओं से, उपदिशाओं से, समीप के देशों से, और दूर २ के देशों से, और ऊंचे पर्वती देशों से, सभी दिशाओं या देशों से भली प्रकार प्राप्त करना चाहिये। शत० ३। ८। ३। ३१–३५॥

ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यदैन्द्र उदानो अङ्गे अङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपम्भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु ॥ २० ॥

त्वष्टा देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—हे मनुष्य ! इन्द्र अर्थात् जीवसम्बन्धी प्राण अर्थात् चेतना तेरे प्रत्येक अङ्ग में निरन्तर प्रकाशित हो। जीव की एक शक्ति उदान भी तेरे प्रत्येक अङ्ग में निरन्तर स्थित रहे। हे दिव्यगुणों वाले ! तथा वीर्य वाले ! तू जो अभी तक विषम रूपों वाला है। वह एकरूप वाला होकर बहुत अधिक शक्तिसम्पन्न हो जा। दिव्य लोगों के सत्संग में गमन करते हुए तेरे पीछे २ तेरे मित्र भी आत्म रक्षा के लिये चलें। तेरे माता पिता तेरे उन्नति के साथ हर्षित हों। शत० ३। ८। ३। ३६॥

[1]समुद्रङ्गच्छ स्वाहा[2]ऽन्तरिक्षङ्गच्छ स्वाहा [3]देवꣳ सवितारङ्गच्छ स्वाहा। [4]मित्रावरुणौ गच्छ स्वाहा[5]ऽहोरात्रे गच्छ स्वाहा [6]छन्दाꣳसि गच्छ स्वाहा [7]द्यावापृथिवी गच्छ स्वाहा [8]यज्ञं गच्छ स्वाहा [9]सोमं गच्छ स्वाहा [10]दिव्यं नभो गच्छ स्वाहा [11]ऽग्निं वैश्वानरङ्गच्छ स्वाहा [12]मनो मे हार्दि यच्छ [13]दिवं ते धूमो गच्छतु स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण स्वाहा ॥ २१ ॥

सेनापतिर्देवता। (१,६,१२) याजुषी उष्णिक्। ऋषभः। (२,५,१०) याजुषी अनुष्टुप्। गांधारः। (३,११) याजुषी पंक्तिः। पंचमः। (४७,) याजुषी बृहती। मध्यमः। (६, ८) याजुषी गायत्री। षड्जः। (१३) आर्च्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे मनुष्य ! तू उत्तम नौका आदि से समुद्र की यात्रा कर। विमान आदि उपाय से अन्तरिक्ष में जा। ब्रह्मविद्या से सर्वोत्पादक परमेश्वर को प्राप्त हो। योग विद्या से प्राण और उदान को वश कर। कालविद्या से दिन और रात्रि का ज्ञान कर। वेद वेदाङ्ग की विद्या से ऋग्, यजुः, साम और अथर्व वेदों का ज्ञान कर। आकाश, खगोल, भूगोल और भूगर्भ विद्या से आकाश और भूमि के पदार्थों का ज्ञान कर। उत्तम उपदेश से यज्ञ, अग्निहोत्र आदि कार्यों को जान। उत्तम उपदेश द्वारा ओषधियों के परम वीर्य का ज्ञान कर। उत्तम विद्या द्वारा

दिव्य गुणयुक्त 'नभः' आकाश के भागों को या जलों को जान। उत्तम विद्योपदेश द्वारा वैश्वानर अग्नि, जाठर अग्नि, अथवा सूर्य से प्राप्त अग्नि का ज्ञान कर। हे परमात्मन्! मेरे हृदय में प्राप्त होने योग्य उत्तम ज्ञान प्रदान कर। हे यज्ञाग्नि! तेरा धूआं आकाश तक जावे। तेरी ज्योतिः सुख देने वाली हो। और तू पृथिवी को यज्ञिय भस्म से भर दे।

माऽपो मौषधीर्हिंसीर्द्धाम्नोधाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च।
यदाहुरघ्न्या इति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च।
सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२ ॥

वरुणो देवता। (१) ब्राह्मी स्वराड् उष्णिक्। ऋषभः।
(२) विराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रजाओं द्वारा वरण करने योग्य! तू राष्ट्र में जलों, कूप, तड़ाग आदि, ओषधि, अन्न आदि के खेतों और वनों का नाश मत कर, उनकी रक्षा कर। और प्रत्येक स्थान से हमें भय से मुक्त कर। जब २ हम यह कहें कि हे न मारने योग्य राज्या धिकारियो! और हे दोषवारक राजन्! हम आगे अपराध न करने की शपथ लेते हैं तब २ उस अपराध के दण्ड से हमें मुक्त कर। हमारे लिये आप्तपुरुष और दण्डदाता अधिकारीजन उत्तम स्नेहकारी मित्र के समान वर्ताव करने वाले हों। और वे ही उस मनुष्य के लिये दुःखदायी हों जो हमें द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं। शत०३।५।१०।१।॥

हविष्मतीरिमा आपो हविष्माँ २ आविवासति।
हविष्मान्देवो अध्वरो हविष्माँ २ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

आपो यज्ञः सूर्यश्च देवताः। निचृदार्ष्युनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—अपराजित राजा स्वयं बलशाली होकर समस्त प्रजाओं को अपने वश रखे। और राजा अन्न आदि से समृद्ध हो जिस प्रकार हिंसा-

रहित यज्ञ और सूर्य अन्नों के उत्पादक है वैसे राजा भी हो। शत० ३। ९। २। १०+१२॥

[1]अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। [2]अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

अग्निर्देवता। (१) आर्षी त्रिष्टुप् धैवतः। (२) मेधातिथिर्ऋषिः। त्रिपाद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे स्वयं वरण करने हारी कन्याओ! मैं तुम्हारा पिता तुम को विपत्तिरहित गृह वाले पुरुष के गृह में स्थापित करूं। तुम आत्मिक शक्ति और बुरी शक्ति से सम्पन्न भाग, अर्थात् सेवन करने योग्य अंश को धारण करती हो अर्थात् उनके योग्य हो। स्नेही पुरुष और पापों से निवारण करने वालों के भागों को धारण करने वाली हो। समस्त विद्वान् पुरुषों के भोग्य अन्न आदि पदार्थों धारण करने वाली हो। जो गृहस्थ वधुएं सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के समीप रहें, और जिनके साथ सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष निवास करे वे हमारे गृहस्थ यज्ञ को बढ़ाने वाली हों। शत० ३। ९। २। १३–१७॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥ २५॥

सोमो देवता। आर्षी विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे कन्ये! मैं तुझे हृदय वाले अर्थात् प्रेम से युक्त पुरुष के प्रति मन वाले अर्थात् ज्ञानी पुरुष के प्रति प्रकाश वाले, और सूर्य के समान कान्तिमान् के प्रति प्रदान करता हूँ। और तू हे कन्ये! इस अहिंसक, उत्कृष्ट पद पर स्थित पुरुष को, ज्ञान-प्रकाश में स्थित विद्वानों के बीच में हैं। उनको नियमों में बांध। शत० ९ ३। ९। ३। १–५॥

[1]सोम॑ राजन्विश्वा॒स्त्वं प्र॒जा उ॒पाव॑रोह॒ विश्वा॒स्त्वां प्र॒जा उ॒पाव॑रोहन्तु [2]शृ॒णोत्व॒ग्निः स॒मिधा॒ हवं॑ मे शृ॒ण्वन्त्वापो॑ धि॒षणा॑श्च दे॒वीः। श्रोता॑ ग्रावाणो वि॒दुषो॒ न य॒ज्ञꣳ शृ॒णोतु॑ दे॒वः स॑वि॒ता हवं॑ मे॒ स्वाहा॑ ॥ २६ ॥

सोमो राजा देवता । (१) भुरिग् गायत्री । षड्जः । (२) आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सर्वप्रेरक राजन् ! सब प्रजाओं के आश्रय में रह, और सब प्रजाएं तेरे आश्रय में होकर रहें। उत्तम सेनाबल से प्रतापी सेनापति मेरी आज्ञा को सुने। और आप्त प्रजाएं और विदुषी तथा बुद्धि-प्रदान करने वाली श्रेष्ठ प्रजाएं भी मेरी आज्ञा को सुनें। हे उपदेश करने वाले गुरुजनो ! आप लोग भी, परमेश्वर को जिस प्रकार विद्वान् लोग श्रवण करते हैं उसी प्रकार, मेरे राष्ट्ररूप यज्ञ, के विषय में श्रवण करो। और प्रेरक राजा भी मेरी आज्ञा का श्रवण करे। यही उत्तम वेदानुकूल व्यवस्था है। शत० ३। ९। ३। ६–१४ ॥

देवी॑रापो अपान्नपा॒द्यो व॑ ऊ॒र्मिर्ह॑वि॒ष्य॒ इन्द्रि॒यावा॑न् म॒दिन्त॑मः तं दे॒वेभ्यो॑ देव॒त्रा द॑त्त शुक्र॒पेभ्यो॒ येषां॑ भा॒गः स्थ॒ स्वाहा॑ ॥२७॥

आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे दिव्य आप्त प्रजाजनो ! जो व्यक्ति तुम में से अपनी प्रजाओं में से ही उत्पन्न, जलों के बीच तरङ्ग के समान उन्नत, राष्ट्र के निमित्त आत्मा इति देने वाला, समस्त इन्द्रियों से सम्पन्न, राष्ट्र को हर्षित करने में सब से अधिक समर्थ है उसको, राजगण और विद्वान् पुरुषों के हितार्थ और वीर्य का पालन करने वाले आदित्य ब्रह्मचारियों, यतियों और सत्यज्ञान के पालन करने वाले विद्वानों के हितार्थ समस्त राजोचित अधिकार प्रदान करो, जिसमें से आप लोग भी एक श्रेष्ठ भाग हो। शत० ४। ३। २६ ॥

काषिरसि समुद्रस्य त्वाक्षित्या उन्नयामि ।
समापो अद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

प्रजा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे वैश्यवर्ग ! तू भूमि पर कृषि कराने में समर्थ है । तुझको मैं राजा अन्न के समुद्र के नाश न होने देने के लिये उच्च आसन पर बैठाता हूँ । जल जिस प्रकार जलों से मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार प्रजाएं अधिकारी पुरुषों को प्राप्त हों । ओषधियां जिस प्रकार ओषधियों से मिलकर अधिक गुणकारी और वीर्यवान् हो जाती हैं उसी प्रकार प्रजाएं अधिकारियों के साथ मिलकर राष्ट्र कार्य करें । शत० ३ । ७ । ३ । २६ । १७ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! जिस पुरुष का तू संग्रामों में रक्षा करता और संग्राम में जिसको भेजता है, वह पुरुष, आजीवन अन्न आदि वृत्तियोग्य पदार्थों को प्राप्त हो । यह सबसे उत्तम व्यवस्था है । शत० ३ । ७ । ३ । ३२ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । २आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् । उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्त ३निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

१मनो मे तर्पयत २वाचं मे तर्पयत ३प्राणं मे तर्पयत ४चक्षुर्मे तर्पयत ५श्रोत्रं मे तर्पयता६ त्मानं मे तर्पयत ७प्रजां मे तर्पयत ८पशून्मे तर्पयत ९गणान्मे तर्पयत १०गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

सविता देवता । (१) प्रजापत्या बृहती । मध्यमः । (२) स्वराडार्षी पंक्तिः । पंचमः । (३) आसुरी अनुष्टुप् । गान्धारः ॥ ३० ॥
प्रजाःसभ्या राजानो देवताः । (१) उष्णिहः । ऋषभः ॥ ३१ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रेरक परमेश्वर की आज्ञा में वर्तमान में प्रजा-वर्ग और अधिकारी वर्ग की आहुति के सहारे तथा पोषक वर्ग किसान आदि के हाथों के सहारे तुम्हें स्वीकार करता हूँ । तू आज्ञा देने वाला है, इस राष्ट्रयज्ञ को विचार में गम्भीर बन, और ऐसा बना कि तुझ शक्तिशाली राजा के लिये वह सम्पत्ति का उत्पादक हो । अपने उत्तम व्यवस्था दण्ड द्वारा राष्ट्र को बलशाली, अन्नशाली तथा मधुर पदार्थों वाला बना । हे प्रजाजनो ! आप लोग मुझ राजा से राज्यव्यवस्था द्वारा वश करने योग्य हैं । आप लोग राजा और विद्वान् पुरुषों की आज्ञा और उपदेश के श्रवण करने वाली हों । अतः मैं राजा तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि—तुझे कर आदि द्वारा तृप्त करो, संतुष्ट करो ॥ ३० ॥ मेरे मन को तृप्त करो । मेरी वाणी को तृप्त करो । मेरे प्राण को तृप्त करो मेरी चक्षुओं को तृप्त करो । मेरे कान को तृप्त करो । मेरी आत्मा को संतुष्ट करो । मेरे पुत्र-पौत्र आदि को संतुष्ट करो, मेरे पशुओं को संतुष्ट करो । मेरे अधीन शासकवर्गों को और सेनागण को सन्तुष्ट करो । और ऐसा तृप्त करो कि मेरे सैनिक और शासकवर्ग नाना पदार्थों के लिये तरसते न रहें, भूखे प्यासे न रहें ।

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवत इन्द्राय त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

समापती राजा देवता । पंचपाद् ज्योतिष्मती जगती । निषादः । त्रिष्टुप् वा । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तुझको मैं ऐश्वर्यवान् प्रजाजनों से युक्त इन्द्रपद के लिये, शत्रुओं को रोदन कराने वाले वीर पुरुषों से सम्पन्न इन्द्र पद के

लिये, और आदित्य के समान तेजस्वी गणों से युक्त इन्द्र पद के लिये, और अभिमान करने वाले शत्रुओं के नाशक इन्द्र पद के लिये, और राष्ट्र का भरण पोषण करने वाले बाज़ पक्षी के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले सेनापत्ति पद के लिये, और धनैश्वर्य को पुष्टि देने वाले अग्रणी पद के लिए, तुझ अमुक २ वीर विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी, गुणवान् पुरुष को पदाधिकारी बनाता हूँ।

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

सोमो देवता। भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे राष्ट्र प्रेरक राजन्! तेरा जो सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी रूप से रहने में जो तेज है, और जो तेरा तेज पृथिवी के समान सर्वाश्रय बने रहने में है, और जो वायु के समान सबके प्राणों का स्वामी होने में तेरा तेज है, उस द्वारा तू इस राष्ट्रयज्ञ के कर्त्ता के लिये तथा धनाधि ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र के लिये महान् तेज सम्पन्न कर। और तुझे अधिकार और वेतन आदि देने वाले इस राष्ट्र के लिये तू अधिकार पूर्वक आज्ञा प्रदान किया कर। शत० ३।९।४।१२॥

श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ता अमृतस्य पत्नीः।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

यज्ञो देवता। स्वराड् आर्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे प्रजाजनो! तुम लोग शीघ्र कार्य सम्पादन करने में समर्थ कार्य सम्पादन करने में समर्थ हो। तुम लोग धन ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले और जल का उचित रूप से सेवन करते हो। विद्वान् या धन दान करने वाले वे तुम योग्य उत्तम राजाओं और शासक पुरुषों के हाथ इस राष्ट्रमय यज्ञ को प्राप्त कराते हो। और तुम

आदर पूर्वक बुलाये जाकर इस राष्ट्र से उत्पन्न उत्तम फल का या राजा के इस राज्य का आनन्द प्राप्त करो। शत० ३।९।४।१६॥

मा भेर्मा संविक्था ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथामूर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः॥ ३५॥

द्यावापृथिव्यो देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे राजन्! और हे प्रजागण! तू भय मत कर। तू भय से कंपित न हो। तू बल को धारण कर। हे राजा और प्रजा! तुम दोनों एक दूसरे का आश्रय होकर, बलवान्, दृढ, हृष्ट पुष्ट होकर, एक दूसरे का बल बढ़ाओ, और अपने को बलवान् करो। पाप करने वाले दुष्ट पुरुष को मारो, सौम्य गुणों वाले की हत्या मत करो। शत० ३।९।४। १६-१८॥

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश आधावन्तु।
अम्ब निष्पर समरीर्विदाम्॥ ३६॥

सोमो देवता। उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे राजन्! तेरी शरण में पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन सब ओरों से समस्त दिशाओं के प्रजाजन आवें। हे हमारे प्रेमी! हमारा सब प्रकार से पालन कर। समस्त प्रजाएं तुझे अपना स्वामी भली प्रकार जानें। शत० ३।९।४।२१॥

त्वमङ्ग प्रशंꣳसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम्। न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः॥ ३७॥

गोतम ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिगार्षी अनुष्टुप्। गान्धार॥

भा०—हे सबसे अधिक शक्तिमन्! तू विजिगीषु राजा होकर मनुष्यमात्र को उत्तम शिक्षा प्रदान कर। हे ऐश्वर्यवन्! तेरे हे दूसरा कोई उन पर दया करने वाला नहीं है। हे राजन्! मैं तुझे उत्तम वेदा-

नुकूल राजधर्म के वचनों का उपदेश करता हूँ। शत० ३।९।४।२४॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

[तत्र सप्तत्रिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

॥ ओ३म् ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो अꣳशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

प्राणो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू आज्ञा देने वाले स्वामी के लिये पवित्र हो, अर्थात् चित्त से वैर आदि के भावों का त्याग कर । सूर्य की किरणों से जिस प्रकार वायु पवित्र हो कर प्राण के लिये शरीर में जाता है इसी प्रकार सुखों के वर्षक राजा के प्रताप से पवित्र होकर, बाह्य और आभ्यन्तर शक्तियों से पवित्र होकर, तथा दिव्य भावनाओं वाला होकर, जिनका कि तू स्वयं एक अंश है, उन विद्वानों के लिये काम कर । शत० ४।१।१।८—१२॥

मधुमतीर्न इषस्कृधि यत्ते सोमादाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ २॥

सोमो देवता । निचृदार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! हमारे लिये मधुर रस से युक्त अन्नों को उत्पन्न कर । हे सर्वप्रेरक राजन् ! तेरा दमन करने का सामर्थ्य कभी विनाश नहीं किया जा सकता । वह सदा शरीर में प्राण के समान जागता

है। इस कारण से हे सर्वप्रेरक राजन्! तेरे निमित्त हमारा यह आत्म-त्याग है। राजा अपने अधीन पुरुषों और प्रजाओं को अपने प्रति ऐसा वचन सुनकर स्वयं भी कहे कि यह मेरी भी तुम्हारे लिये आत्मोत्सर्ग रूप आहुति है, विशाल अन्तरिक्ष का मैं अनुसरण करता हूँ। अर्थात् जिस प्रकार अन्तरिक्ष समस्त पृथिवी पर आच्छादित है इसी प्रकार मैं समस्त प्रजा पर शासक बनता हूँ। शत० ४।१।१।१-५॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा॥ ३॥

विद्वांसो देवताः। विराड् ब्राह्मी जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! इन्द्रियों के हित के लिये जिस प्रकार आत्मा, तथा प्रकाशमान लोकों के लिये जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से प्रकाशमान है, उसी प्रकार पृथिवी के निवासी राजागण या प्रजा लोगों के हित के लिये तू अपने सामर्थ्य से राजा बनाया गया है। तुझे शुद्ध-विज्ञान प्राप्त हो। हे उत्तम पद पर विराजमान! हे सुजात! मैं विद्वान् पुरुष तुझको सूर्य समान पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तथा अपने मरीचि अर्थात् मृत्युदायक, त्रासकारी साधनों से प्रजा के अन्न धनों को चूसने वाले विजिगीषु राजाओं के लिये उन पर वश करने के लिये तुझे नियुक्त करता हूँ। हे देव! जिस कारण से मैं तेरी इतनी प्रतिष्ठा करता हूँ वह तेरा न्यायस्थापन रूप व्रताचरण ही है। और नियमोल्लंघन से ताड़ित होकर असत्य मार्गगामी विपरीत राजा विध्वंस होने योग्य है, उसे मार दिया जाय। हे राजन्! तुझको शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में समस्त कार्यों के सञ्चालन के लिये और तुझको शरीर में विभक्त होकर नाना कर्मेन्द्रियों के चालक व्यान के समान राष्ट्र में

विविध कार्यों के चलाने के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ४ । १ । १ । २२-२८ ॥

उपयामगृहीतोऽस्यन्तर्यंच्छ मघवन् पाहि सोमम् ।

ऊरुष्य राय एषो यजस्व ॥ ४ ॥

इन्द्रो मघवा देवता । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू पृथिवी के नियमन चक्र द्वारा गृहीत है । तू राष्ट्र का भीतर से नियन्त्रण कर और सोम राजा की रक्षा कर । समस्त पशु आदि ऐश्वर्यों की रक्षा कर । अन्नों को प्राप्त कर । शत० ४ । १ । २ । १५ ॥

अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।

सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

मघवा ईश्वरो देवता । आर्षी पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे मघवन् राजन् ! तेरे शासन के भीतर द्यौ और पृथिवी दोनों को स्थापित करता हूँ ! तेरे ही शासन के भीतर विशाल अन्तरिक्ष को भी स्थापित करता हूँ। अपने से नीचे के कर देने वाले माण्डलिक राजाओं के साथ प्रेमयुक्त व्यवहार करता हुआ और अपने से दूसरे शत्रु राजाओं के साथ मित्रभाव करके अपने राष्ट्र के भीतर प्रबन्ध में समस्त प्रजाओं को सुखी कर । शत० ४ । १ । २ । १४ ॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य इन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्य उदानाय त्वा ॥ ६ ॥

मघवा इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप । धैवतः स्वरः ॥

भा०—(स्वाङ्कृतोऽसि ...) इस भाग की व्याख्या देखो [अ० ७ मन्त्र ३] हे राजन् ! तुझको शरीर में उदान के समान राष्ट्र में उच्च पद पर नियुक्त करता हूँ। शत० ४ । १ । २ । १७-२७ ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा उप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार। उपो॑ ते॒ अन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्व॒पेयं॑ वा॒यवे॑ त्वा॥ ७॥

वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता। निचृत् जगती। निषादः॥

भा०—हे शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में जीवन या अधिपति रूप से स्थित राजन्! हे शुद्धता, निष्कपटता, छल-छिद्र रहितता से पालन करने वाले राजन्! हे समस्त प्रजाओं से राजपद पर वरण किये गये! तू हमारे समीप सुशोभित हो। तेरे अधीन सहस्रों नियुक्त पुरुष हैं। तेरे तृप्ति करने वाले अन्न को मैं तुझ तक प्राप्त कराता हूँ। जिसका हे राजन्! तू सबसे प्रथम पान या ग्रहण करता है। तुझ शक्तिशाली पुरुष को वायु के समान सर्वाश्रय, सर्वरक्षक पद पर नियुक्त करता हूँ। शत० ४।१।३।१-१८॥

[१]इन्द्र॑वायू इ॒मे सु॒ता उप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम्। इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यवे॑ इन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वै॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा॥ ८॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रवायू देवते। (१) आर्षी गायत्री। (२) स्वराड् आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे इन्द्र और हे वायो अर्थात्! हे सेनापति! और हे न्यायकर्त्तः! वेग से चलने वाले अश्वों से तुम दोनों आओ। ये उत्तम रीति से प्रेरत, अपने पदों पर स्थापित ऐश्वर्यवान् और शीघ्रगामी पुरुष तुम दोनों को निश्चय से चाहते हैं। हे राजन्! तू पृथिवी के प्रजाजनों द्वारा स्वीकृत है। तुझे पूर्व कहे वायुपद या विवेचक-पद के लिये नियत करता हूँ। और तुझको इन्द्र अर्थात् सेनापति और वायु अर्थात् विवेचक पद के लिये भी नियत करता हूँ। तेरा यह आश्रयस्थान या पद है।

तुझे प्रेम सहित इन्द्र और वायु के पदों पर अर्थात् दोनों शासकों के पदों पर मुख्य शासक रूप में नियत करता हूँ। शत० ४। १। ३। १९॥

[1]अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा। ममेदिह श्रुतᳪं हवम्। उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा॥ ६॥

गृत्समद ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। (१) आर्षी गायत्री। (२) आसुरी गायत्री। षड्जः॥

भा०—मित्र और वरुण पदाधिकारियों का वर्णन करते हैं। हे सत्यव्यवस्था को बढ़ाने वाले या सत्यमर्म की व्यवस्था से स्वयं बढ़ने वाले मित्र अर्थात् सबसे स्नेह करने वाले ब्राह्मण गण! और वरुण अर्थात् सब दुष्टों का वारण करने वाले क्षत्रिय! यह प्रेरकरूप से राजा अभिषिक्त किया गया है। इस अवसर पर मेरी ही आज्ञा या अभ्यर्थना का आप दोनों श्रवण करो। हे राजन्! तुझे मित्र और वरुण पद के भी वश करने के लिये उन पर शासक रूप से नियुक्त करता हूँ। शत० ४। १। ४। १—७॥

राया वयᳪं ससवाᳪंसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यां त्वा॥ १०॥

त्रसदस्युर्ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। ब्राह्मी बृहती। मध्यमः।

भा०—हे मित्र! और हे वरुण! अर्थात् हे ब्राह्मणगण! और हे क्षत्रगण! हम लोग ऐश्वर्य का विभाग करते हुए ऐसे प्रसन्न हों जैसे कि विद्वान्गण अपने अभिलषित ज्ञान से और गौ आदि पशु दैनिक चारा पाकर प्रसन्न होते हैं। उस सर्वरस पिलाने वाली पृथिवी का आप दोनों सब दिन व्यथारहित रूप से धारण पोषण करो। हे राजन्! तेरा यही ब्राह्मणगण और क्षत्रियगण आश्रय स्थान हैं। ऋत अर्थात् सत्यज्ञान और

आयु अर्थात् निर्विघ्न दीर्घ आयु दोनों के प्राप्त करने के लिये तुझ योग्य पुरुष को नियुक्त करता हूँ। शत०—४।१।४।१०॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम्। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥११॥

मेधातिथिर्ऋषिः। अश्विनौ देवते। ब्राह्मी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे सूर्य और चन्द्र या सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर नित्य मिले हुए राजा और प्रजाजनो! जो तुम दोनों वर्गों की मधुर रस से युक्त, सत्यज्ञान से पूर्ण वाणी है उससे इस राष्ट्ररूप यज्ञ का सेचन करते रहो। हे राजन्! देश के शासन द्वारा तू बद्ध है। तुझको देश के स्त्री और पुरुष दोनों की उन्नति के लिये नियुक्त करता हूँ। तेरे लिये यही आश्रय है। तुझको उत्तम रस के प्रदान करने वाली नीति और शक्ति दोनों के लिये प्रतिष्ठित करता हूँ। शत० ४।१।५।१५॥

[1]तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम्। प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे। [2]उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥

काश्यपोवत्सार ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। (१) निचृदार्षी जगती। निषादः। (२) पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! तू अति पूर्वकाल के निकट पूर्वकाल के राजाओं के समस्त देशों के और इन प्रत्यक्ष वीर पुरुषों के समान, सबसे उत्तम गुणशाली, उच्च आसन पर विराजमान, तापकारी बल और तेज के धारण करने वाले, शत्रु के प्रति चढ़ाई करने वाले, शत्रुओं का वारण करने वाले, शत्रुओं को धुन डालने वाले, अति शीघ्रकारी उस प्रसिद्ध पुरुष को, जिन जिन दिशाओं में पूर्ण करता है, उनमें ही तू उसके अनुकूल होकर स्वयं वृद्धि को प्राप्त होता है। हे

राजन् ! तुझे उपयाम अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजातन्त्र ने स्वीकार किया है। बल के कारण कम्पन के निमित्त तुझको इस पद पर नियुक्त करते हैं। तेरे लिये यही योग्य पद है। तू अपने वीरस्वभाव की रक्षा कर। बल के मद में मत्त पुरुष भी प्रजा से पृथक् कर दिया जाय। और वीर्य के पालन करने वाले बलवान्, युद्ध विजयी पुरुष तुझसे स्नेह करें। हे राजशक्ते ! इस प्रकार तू कभी शत्रुओं द्वारा दबाई या पीड़ित नहीं की जा सकती। शत० ४। १। ९॥

[1]सुवीरो॑ वी॒रान् प्र॑ज॒नय॒न् परी॑ह्य॒भि रा॒यस्पोषे॑ण॒ यज॑मानम्। स॒ञ्ज॒ग्मा॒नो दि॒वा पृ॑थि॒व्या शु॒क्रः शु॒क्रशो॑चिषा॒ निर॑स्तः॒ शण्डः॑ [2]शु॒क्रस्या॑धि॒ष्ठान॑मसि ॥ १३ ॥

विश्वेदेवा देवताः। (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) प्राजापत्या गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू उत्तम वीर होकर अन्य वीर पुरुषों को उत्पन्न करता हुआ सम्पूर्ण राष्ट्र में जा। और धन-ऐश्वर्य की समृद्धि सहित अपने दानशील वृत्तिदाता राजा को प्राप्त हो। सूर्य और पृथिवी के समान गुणवान् तेजस्वी होकर विराजमान हो। राज्य के भीतर शान्ति भंगकारी पुरुष देश से बाहर कर दिया जाय। हे राजन् ! तू स्वयं तेजस्वी सूर्य का अधिष्ठान, परम पद है॥ शत०४।२।१। १६ ॥

अच्छि॑न्नस्य ते देव सोम सु॒वीर्य॑स्य रा॒यस्पोष॑स्य दद्वि॒तारः॑ स्याम। सा प्र॑थ॒मा संस्कृ॑तिर्वि॒श्ववा॑रा॒ स प्र॑थ॒मो वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निः ॥ १४ ॥

विश्वेदेवा देवताः। स्वराड जगती। निषादः॥

भा०—हे प्रेरक राजन् ! उत्तम वीर्यवान् जो तू है उसके अक्षय धनैश्वर्य की समृद्धि के हम प्रजाजन देने वाले हों। वह राजशक्ति समस्त राष्ट्र की रक्षा करने वाली सबसे उत्कृष्ट रचना है। वह राजा सबसे

उत्तम, प्रजा का स्नेही, और सर्वोत्तम अग्रणी है। शत० ४ । २ । १ । २१ ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत स्वाहा । तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहा याडग्नीत् ॥ १५ ॥

विश्वेदेवा देवताः । निचृद् ब्राह्म्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—वह सर्वश्रेष्ठ, विद्वान्, वेदवाणी का पालक है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग उस ऐश्वर्यवान् राज्य-पद के लिये इस राष्ट्र के राजत्व-पद को प्रदान करो। और राजा के मुख्य अधिकारी मधुर अन्न आदि भोग्य से तृप्त हों। क्योंकि वे उत्तम रीति से अपना भाग प्राप्त करके, तथा सुप्रसन्न होकर और उत्तम रीति से आदर-मान पाकर राष्ट्र का उत्तम रीति से वहन करते हैं। इस प्रकार अग्रणी नेता को प्रज्वलित करने हारा राष्ट्रयज्ञ का प्रमुख पुरुष उस कार्य का सम्पादन करे। शत० ४ । २ । १ । २७, २८ ॥

[1]अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬ सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । [2]उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥

वेनो देवता (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) गायत्री । षड्जः ॥

भा०—यह कान्तिमान् राजा उत्पन्न होने वाले बालक के समान है। गर्भस्थ जल के विशेष रूप से बने स्थान में स्वयं बच्चा जिस प्रकार जेर में लिपटा रहता है उसी प्रकार वह राजा भी समस्त लोकों के बने विशेष संगठन के भीतर ज्योति, प्रकाश, तेज रूप जेर से लिपटा रहता है। बच्चा जिस प्रकार माता के पेट के जलों को बाहर फेंकता है उसी प्रकार यह राजा भी ज्योति धारण करने वाले तेजस्वी पुरुषों को प्रेरित करता है। जलों के एकत्र हो जाने पर जिस प्रकार बच्चे को अंगु-

लियों के दबाव से बाहर कर लिया जाता है उसी प्रकार मेधावी विद्वान् पुरुष बालक के समान ही सूर्य के समान प्रचण्ड ताप के कारण प्रशंसनीय या उसके समान दानशील राजा को प्रजाओं के एकत्र होने के अवसर पर अपनी ज्ञानमय स्तुतियों से अर्चना करते हैं। हे योग्य पुरुष! तू राज्य के नाना अंगों, या राष्ट्र के समस्त भागों से स्वयं राजा रूप में स्वीकृत है। शरीर में जिस प्रकार समस्त अंगों में प्राण वायु चेष्टा करता उसी प्रकार समस्त राष्ट्र में विशेष प्रेरणा देने वाले उत्तेजक पुरुष के पद पर तुझे नियुक्त करता हूँ। शत० ४।२।१।८—१०॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्युपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि॥ १७॥

विश्वेदेवाः देवताः। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

भा०—हे राजन्! और हे प्रजाजन! तुम दोनों युद्ध के जिन अवसरों पर मन के समान तीव्रगति वाले कार्यकुशल पुरुष को, अपनी सेना के साथ गमन करते हुए प्राप्त करते हैं, और जो बहुत ऐश्वर्यवान् होकर इस राजा के आदेश को ग्रहण करके शर प्रहार करने वाली सेनाओं के साथ सब प्रकार राजा का आश्रय करता है। ऐसे हे वीर! यह प्रजा भी तेरा आश्रय ही है। तू प्रजाओं का पालन कर। प्रजा पर मृत्यु का दुःख डालने वाले को दूर किया जाय। हे राजन्! तुझको शत्रुओं का मथन करने वाले विजिगीषु लोग आगे विजय मार्ग पर ले चलें। हे प्रजे! इस प्रकार तू शत्रुओं द्वारा कभी पीड़ित नहीं हो सकती। शत० ४।२।१।११॥

सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्।

संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को
२ मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

प्रजापतिर्देवता । (१) निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) प्राजापत्या गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे विद्वन् ! तू उत्तम प्रजावान् होकर प्रजाओं को उत्तम बनाता हुआ सर्वत्र गमन कर । तू भृति वेतन एवं समस्त ऐश्वर्य देने वाले राजा के समीप ऐश्वर्य की समृद्धि सहित प्राप्त हो । सूर्य के समान तेजस्वी राजा और सर्वाश्रय प्रजा इन दोनों के साथ सत्संग करता हुआ शत्रुओं असत्य और अविद्या का मथन या विनाश करने वाला होकर विद्यमान रह । ऐसे मथनकारी के तेज से प्रजा के मृत्यु के कारण रूप अन्यायी पुरुष एवं शत्रु दुष्ट हिंसक पुरुष वा रोग आदि को दूर कर दिया जाय । हे राजन् ! तू उक्त प्रकार के शत्रु या दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले पुरुष का भी अधिष्ठाता, आश्रयदाता है । शत० ४ । २ । १ । १५-२१ ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥१९॥

परुच्छेप ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । धैवतः ॥

भा०—हे देवपुरुषो ! आप लोग जो राजा के अधीन ११ सभासद हो जो कि अन्तरिक्षीय विभाग के संचालक हो और आप लोग जो पृथिवी पर ११ अधिकारीगण हो और अपने महान् सामर्थ्य से जो अन्य लोग सामुद्रिक शक्ति व ११ अधिकारी हो, वे सब मिल कर इस राष्ट्र यज्ञ का सेवन करें, उसमें अपना २ भाग लें ।

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २० ॥

यज्ञो देवता निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे सभापते ! तू राष्ट्र के नियम व्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। तू 'आग्रयण' अग्र अर्थात् मुख्य २ पद प्राप्त करने योग्य है। और तू उत्तम पूजा योग्य, अग्रपद प्राप्त, सर्वोत्तम पदाधिकारी है। तू इस व्यवस्थित राष्ट्र का पालन कर और यज्ञ या राष्ट्र के पालक स्वामी की भी रक्षा कर। हे राष्ट्र ! सब शक्तियों और राष्ट्र के विभागों में समानरूप से व्यापक राजा अपने ऐश्वर्यभाजन राजबल से तेरा पालन करे। तू हे प्रजाजन ! उस व्यापक शक्तिमान् राजा का पालन कर। और तू समस्त ऐश्वर्य के द्योतक अधिकार-पदों की भी रक्षा कर। शत० ४। २। २। ९–१०॥

[1]सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इषऽऊर्जे पवतेऽद्भ्य ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः। [2]एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥ २१॥

सोमो देवता। (१) स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) जगती। निषादः॥

भा०—सर्वप्रेरक राजा राष्ट्र के सब कार्यों में प्रवृत्त होता है। राजा चन्द्र के समान व्यवहार करता है। महान् परमेश्वर के बनाये नियम वेद और ब्रह्मचर्य के पालन कराने के लिये तथा ब्राह्मण प्रजा के लिये इस वीर्यवान् क्षत्रिय प्रजा के लिये और इस ऐश्वर्योत्पादक तथा दान यज्ञ करने वाली वैश्य प्रजा की रक्षा और वृद्धि के लिये राज्य में उद्योग करता है। वह राजा अपने राष्ट्र में उत्पन्न करने और उससे बल प्राप्त करने के लिये उद्योग करता है। वह उत्तम जल और उत्तम ओषधियों के संग्रह के लिये उद्योग करता है। सूर्य के प्रकाश, एवं उत्तम वृष्टि और पृथिवी के उत्तम २ पदार्थों की उन्नति के लिये चेष्टा करता है वह उत्तम है। वह उत्तम विभूति की प्राप्ति के लिए उद्योग करता है। हे राजन् ! तुझको हम समस्त राजाओं, विद्वानों, शासकों के लिये स्थापित करते

हैं। तेरा यह आश्रय स्थान, पद या आसन है। समस्त देवों उत्तम विद्वान्, सत्पुरुषों के लिये तुझे नियुक्त करते हैं। शत० ४। २। २। ११-१६॥

उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वत उक्थाव्यं गृह्णामि। यत्त इन्द्र बृहद्वयस्तस्मै त्वा विष्णवे त्वैष ते योनिरुक्थेभ्यस्त्वा देवेभ्यस्त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि॥ २२॥

विश्वेदेवा देवताः। ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे वीर पुरुष! तू राज्य के नियमों द्वारा 'गृहीत' अर्थात् बंधा हुआ है। उत्तम ज्ञानों की रक्षा करने वाले तुझको मैं परम ऐश्वर्य युक्त, बड़े भारी राष्ट्र के कार्यों से युक्त, दीर्घ जीवन वाले पद या राजा के लिये नियुक्त करता हूँ। हे परमैश्वर्यवन् राजन्! जो तेरा महान् राज्य और जो तेरा यह दीर्घजीवनसाध्य कार्य है, उसके लिए तुझको नियुक्त करता हूँ। तुझे व्यापक राष्ट्र के पालन कार्य के लिये नियुक्त करता हूँ। यह तेरा आश्रय स्थान या पद है। विद्वानों, शासकों और पदाधिकारियों और अधीन राजाओं के रक्षक तुझको उन विद्वानों पदाधिकारियों अधीन राजाओं की रक्षा के लिये नियुक्त करता हूँ। मैं तुझे इस राज्य व्यवस्था के तथा दीर्घजीवन के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ४। २। २। १-१०॥

[1]मित्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामीन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामी[2]न्द्राग्निभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामी[3]न्द्रावरुणाभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामी[4]न्द्राबृहस्पतिभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामी[5]न्द्राविष्णुभ्यां त्वा देवाव्यं यज्ञस्यायुषे गृह्णामि॥ २३॥

विश्वेदेवा देवताः। (१) अनुष्टुप। (२) प्रजापत्यानुष्टुप्। (३) स्वराट्

साम्न्यनुष्टुप् । गांधारः स्वरः । (४) भुरिगार्ची गायत्री । षड्जः ।
(५) भुरिक साम्न्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वानों और अधीन राजाओं के रक्षक ! तुझको मित्र और वरुण इन पदों पर राष्ट्रव्यवस्था के दीर्घ जीवन के लिये नियुक्त करता हूँ । हे राजन् ! विद्वानों और राजा आदि जनों के रक्षक तुझको इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् सेनापति पद पर राष्ट्रयज्ञ के दीर्घ जीवन के लिये नियुक्त करता हूँ । विद्वान् पुरुषों के रक्षक तुझको इन्द्र और अग्नि अर्थात् राजा और दुष्टों के संतापक अग्रणी पद पर राज्य की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हूँ । देवों के रक्षक तुझको इन्द्र और वरुण पद पर राष्ट्रयज्ञ की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हूँ । देवों के रक्षक तुझे इन्द्र और बृहस्पति पद पर राज्य के दीर्घ जीवन के लिये नियुक्त करता हूँ । देवों के रक्षक तुझको इन्द्र और विष्णु पद पर राज्य की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हूँ । ४ । २ । १—१८ ॥

मित्र, वरुण, इन्द्र-वरुण इन्द्र-बृहस्पति, इन्द्र-विष्णु ये सब राज्य के विशेष अंग हैं । जिनके पदाधिकारी इन नामों से कहे जाते हैं । उन सबके लिये योग्य पुरुषों को नियुक्त करने और उन सबकी रक्षा के लिये उन सबके ऊपर सबकी रक्षा करने में समर्थ एक पुरुष को नियुक्त करने का उपदेश वेद ने किया है । शत० ४ । २ । २ । १—१८ ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । वैश्वानरो देवता । आर्षी त्रिष्टुप । धैवतः ।

भा०—राजगण मिलकर आकाश के शिरोभाग पर जिस प्रकार सूर्य विराजमान है उसी प्रकार समस्त ज्ञान और विद्वान् पुरुषों के मूर्धन्य शिरोमणि, पृथिवी में जिस प्रकार भीतरी अग्नि व्यापक है उसी प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा में प्रेम और आदर पूर्वक सबके भीतर

प्रतिष्ठित, समस्त राष्ट्र के नेता रूप, सत्य व्यवहार और राज्य नियम में अति विद्वान्, सबके अग्रणी, क्रान्तदर्शी, सर्वोपरि सम्राट्, अतिथि के समान पूजनीय, समस्त जनों के पालन करने में समर्थ योग्य पुरुष को मुख अर्थात् सबसे मुख्य पद पर स्थापित करें। शत० ४।२।३।२४ ॥

[१]उपयामगृहीतोऽसि ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तम एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा। ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि। अथा न इन्द्र इद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥

वैश्वानरो देवता। (१) याजुषी अनुष्टुप्। गांधारः। (२,३) विराड् आर्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे सम्राट्! तू राज्यव्यवस्था के नियमों में बद्ध है। तू स्थिर है। तेरे अधीन यह भूमि सदा स्थिर रूप से रहे। तू अचलरूप से रहने वालों में सबसे अधिक स्थिर है तू शत्रुओं के आक्रमण से भी अपने आसन से च्युत न होने वाले, न विनष्ट होने वाले राजाओं में से भी सबसे अधिक दृढ है। यह तेरा पद या प्रतिष्ठा स्थान है। हे सम्राट् तुझको मैं समस्त प्रजाओं के नेतृपद पर नियुक्त करता हूँ। मैं स्थिर चित्त से और ध्रुव वाणी से सबके प्रेरक तुझको सम्राट् रूप में अभिषिक्त करता हूँ। इसके पश्चात् तू हमारा ऐश्वर्यवान् सम्राट् होकर समस्त प्रजाओं को शत्रुरहित और समान चित्त वाला बना। शत० ४। २। ३। २४ ॥

यस्ते द्रप्स स्कन्दति यस्ते अंशुर्ग्रावच्युतो धिषणयोरुपस्थात्। अध्वर्य्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतं स्वाहा देवानामुत्क्रमणमसि ॥ २६ ॥

देवश्रवा ऋषिः। यज्ञो देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे राजन्! तेरा जो सूर्य के समान तेजस्वी वीर्य और

जो तेरा व्यापक सामर्थ्य द्यौ और पृथिवी इन दोनों के समीप से विद्वान् प्रजाओं द्वारा या वीर सैनिक द्वारा ज्ञात या प्रकट होता है, और जो अखण्डित, अहिंसित सेनापति या महामन्त्री या राज्य से, अथवा जो सत्यासत्य के निर्णय करने वाले तेरे व्यवहार से ज्ञात होता है, उस तेरे मन द्वारा संकल्प किये गये या निश्चित् किये गये अधिकार को उत्तम वेदवाणी द्वारा तुझे प्रदान करता हूँ। हे राजपद ! तू समस्त राजाओं और विद्वानों में से सबसे अधिक ऊंचा जाने वाला है। शत० ४। २। ४। १, ५॥

[१]प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व [२]व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वो[३]दानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व [४]वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व [५]क्रतदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व [६]श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व [७]चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२७॥
[१]आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौ[२]जसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वा[३]युषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व[४] विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

२७—यज्ञपतिर्देवता। (१, २, ६) आसुर्यनुष्टुप्। गान्धारः। (३, ७) आसुर्युष्णिक्। ऋषभः। (४) साम्नी गायत्री। (५) आसुरी गायत्री। षड्जः

२८—यज्ञपतिर्देवता। समूहेन ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—अब राजा अपने अधीन नियुक्त पुरुषों को अपने राष्ट्र रूप शरीर के अंग मान कर इस प्रकार कहता है। जिस प्रकार शरीर में मुख्य प्राण है, वह आत्मा से उतर कर उसी प्रकार आत्मा के समान राजा के समीप का पद 'उपांशु' कहा है। हे उपांशु! उपराज तू तेज का देने वाला है, तू मेरे शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में मुख्य कार्य के लिये उद्योग कर। हे मुझे बल देने वाले ! शरीर में व्यान के

समान मेरे राष्ट्र-व्यापक प्रबन्ध के तेज की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे बल और अन्तर्नियन्त्रण के अधिकारी पुरुष! शरीर में उदान वायु के समान आक्रमणकारी बल की वृद्धि के लिये तू उद्योग कर। हे ज्ञान रूप तेज के प्रदान करने हारे! तू शरीर में वाणी के समान वेदज्ञान रूप मेरे तेज की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे तेज और बलप्रद अधिकारी पुरुष! तू ज्ञानवृद्धि और तेज की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे बलप्रद 'आश्विय' पद के अधिकारी पुरुष! तू मेरे शरीर में श्रोत्र के समान राष्ट्र में परस्पर एक दूसरे के दुःख सुख श्रवण करने रूप तेज की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे तेज के देने हारे शुक्र और मन्थी पद के अधिकारी पुरुषो! तुम दोनों शरीर में आंखों के समान कार्य करने वाले अधिकारियों के बल वृद्धि करने के लिये उद्योग करो॥ २७॥

हे तेज देने हारे 'आग्रयण' पद के अधिकारी पुरुष! तू मेरे आत्मा या देह के समान राष्ट्र या राजा के बल की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे तेज देने वाले उक्थ्य पद के अधिकारी पुरुष! मेरे शरीर में ओजस् के समान राष्ट्र के ओजस्, पराक्रम, वीर्य के बढ़ाने के लिये तू उद्योग कर। हे तेज के बढ़ाने वाले ध्रुव पद के अधिकारी पुरुष! तू मेरे शरीर में आयु के समान राष्ट्र के दीर्घजीवन की वृद्धि के लिये उद्योग कर। हे तेज के बढ़ाने वाले पूतभृत् और आहवनीय पद के अधिकारी पुरुषो! आप दोनों मेरी समस्त प्रजाओं के तेज बल बढ़ाने का उद्योग करो।

शरीर में जितने प्राण कार्य करते हैं तदनुरूप राष्ट्र में अधिकारियों को स्थापित करने का वर्णन मन्त्र ३ से २६ तक किया गया है। जिसका तुलनात्मक सार नीचे देते हैं।

शरीरगत प्राण	राष्ट्रगत पद नाम	मन्त्र संख्या
१ प्राण....	उपांशु सवन	देखो मन्त्र ३, ४, ५,
२ व्यान....	,,	....
३ उदान	अन्तर्याम	६, ७,
४ वाक्	इन्द्र वायु	८,
५ क्रतु-दक्ष	मित्रावरुण	९, १०,
६ श्रोत्र	आश्विन	११,
७ चक्षुः	शुक्रामन्थिन्	१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,
८ आत्मा	आग्रयण	१९, २०, २१,
९ ओजस्	उक्थ्य	२२, २३,
१० आयुष्	ध्रुव	२४, २५,
११ प्रजा	पूतभृत् आहवनीय	२६,

[1]कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम। [2]भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९ ॥

प्रजापतिर्देवता। (१) आर्ची (२) भुरिक् साम्नी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—राजा नियुक्त अधिकारी का और अधिकारी लोग राजा का परस्पर परिचय प्राप्त करें। हे राजन् ! तू कौन है ? अपने वर्ग में से कौन सा है ? किस पिता का पुत्र है, तेरा शुभ नाम क्या है ? जिस तेरा शुभ नाम हम जानें, तुझको सर्वप्रेरक राजपद करके हम तुझे तृप्त करें। इस प्रकार राजा भी प्रत्येक अधिकारी का परिचय करे, तथा उसे राज की ओर से दिये जाने वाले धन वा अन्न द्वारा तृप्त करे। मैं राजा भूमि, अन्तरिक्ष, सूर्य तीनों के ऐश्वर्य से युक्त होकर इन प्रजाओं द्वारा उत्तम प्रजा से सम्पन्न होऊं। इन वीर पुरुषों द्वारा मैं उत्तम वीर होऊं। इन पोषक ऐश्वर्यवान् पुरुषों से मिलकर मैं राष्ट्र का पोषक होऊं।

[1]उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वो[2]पयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वो[3]पयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वो[4]पयामगृहीतोऽसि शुचये त्वो-[5]पयामगृहीतोऽसि नभसे त्वो[6]पयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वो[7]पयामगृहीतोऽसीषे त्वो[8]पयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वो[9]पयामगृही-तोऽसि सहसे त्वो[10]पयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वो[11]पयाम गृहीतोऽसि तपसे त्वो[12]पयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वो[13]पया-मगृहीतोऽस्यꣳहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । १, ३–५, ६, ११ । साम्न्यो गायत्र्यः । षड्जः (२,६,१०,१२)
आसुर्योऽनुष्टुभः । गांधारः । ७,८, याजुष्यौ पंक्ती । पंचमः ।
१३ आसुर्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—प्रजा और राजा के राज्यतन्त्र का संवत्सर रूप से वर्णन करते हैं तदनुसार राज्य के कार्यकर्त्ताओं की नियुक्त कहते हैं। हे योग्य पुरुष ! तू राज्यव्यवस्था के नियमों द्वारा नियुक्त किया जाता है। तुझे 'मधु' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझको 'माधव' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझको 'शुक्र' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझको 'शुचि' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे 'ऊर्ज' पद के लिये नियुक्त

करता हूँ। तुझे 'इष' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे 'सहस्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे 'सहस्य' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे 'तपस्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझे 'तपस्य' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। और तुझे 'अंहेसस्पति' पद के लिये लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ४।३।१।१—२॥

जैसे संवत्सर या वर्ष से ६ ऋतुएं और प्रत्येक ऋतु में दो २ मास हैं और १३ वां मलमास है उसी प्रकार प्रजापति राजा के अधीन ६ सदस्य और प्रत्येक के अधीन दो २ अधिकारी नियुक्त हैं। जिसमें एक सेनानी, दूसरा ग्रामणी अर्थात् एक सेनापति दूसरा नगराध्यक्ष हो।

(१) 'मधु, माधव'—तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथोजाश्च सेनानीग्रामण्यौ इति वासन्तिकौ तावृतू। शत० ८।६।१।१६॥ एतौ एवं तेनोहैतौ वासन्तिकौ मासौ। स यद् वसन्ते ओषधयो जायन्ते वनस्पतयः पच्यन्ते माधवश्च। शत० ४।३।१।१४॥

(२) 'शुक्रः,' 'शुचिः'—एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एवं ग्रैष्मौ मासौ। स यदेतयोर्बलिष्ठं तपति तेनोहैतौ शुक्रश्च शुचिश्च। श० ४।३।१।५॥ तस्य वायोः रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। इति ग्रैष्मौ तावृतू। श० ८।६।१।१७॥

(३) 'नभः' 'नभस्यः'—तस्यादित्यस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रामण्यौ इति वार्षिकौ तावृतू श० ८।६।१।१८॥ एतौ (नभश्च नभस्यश्च) एव वार्षिकौ मासौ अमुतो वै दिवा वर्षति तेनोहैतौ नभश्च नभस्यश्च। श० ४।३।१।१६॥

(४) 'इष' 'उर्जः'—एतावेव शारदौ स यच्छरद्यूर्जं स ओषधयः पच्यन्ते तेनोहैताविषश्चोर्जश्च। श० ४।३।१।६॥ तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रमण्यौ इति शारदौ तावृतू श० ८।६।१।१८॥

(५) 'सहः', 'सहस्यः'।—तस्य सेनाजिश्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ हेमन्तिकौ तावृतू। श० ८।६।१।७॥ एतौ एव हेमन्तिकौ

स यद् हेमन्त इमाः प्रजा सहसैव स्वं वशमुपनयते तेनोहैतौ सहश्च सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

(६) 'तपः', 'तपस्यः'—एतौ एव शैशिरौ स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति तेनोहैतौ तपश्च तपस्यश्च श० ४ । ३ । १ । १९ ॥

संवत्सर के अंशों और प्रजापालक राजा के नियत पदाधिकारी पुरुषों की तुलना को साथ दिये मानचित्र से देखें ।

ऋतु नाम	मास नाम	विशेष नाम	पदनाम सेनानी, ग्रामणी	
१ वसन्त	चैत्र वैशाख	मधु माधव	रथगृत्स रथोजा	सेनानी ग्रामणी
२ ग्रीष्म	ज्येष्ठ आषाढ़	शुक्र शुचि	रथस्वन रथेचित्र	सेनानी ग्रामणी
३ वर्षा	श्रावण भाद्र	नभस् नभस्य	रथप्रोत असमरथ	सेनानी ग्रामणी
४ शरद्	आश्विन, कुमार कार्तिक	इष ऊर्ज	तार्क्ष्य अरिष्टनेमि	सेनानी ग्रामणी
५ हेमन्त	मार्गशीर्ष पौष	सहस् सहस्य	सेनजित् सुषेण	सेनानी ग्रामणी
६ शिशिर	माघ फाल्गुन	तप तपस्य	....	......
७...	मलमास	अहंसस्पति	... ...	... ...

अप्सरा नाम संकेत		हेति, प्रहेति,		दिशा	नेतारौ
पुञ्जिकस्थला,	सेना	दंक्षण-पशु	हेति	पूर्वा	अग्नि
क्रतुस्थला,	समिति	पौरुषेय-वध	प्रहेति		हरिकेश
मेनका	द्यौ	यातुधान	हेति	दक्षिणा	विश्वकर्मा
सहजन्या	पृथिवी	रक्षांसि	प्रहेति		वायु
प्रम्लोचन्ती	अहः	व्याघ्र	हेति	पश्चिमा	विश्वव्यचस्
अनुम्लोचन्ती	रात्रि	सर्प	प्रहेति		आदित्य
विश्वाची	वेदि	आपः	हेति	उत्तरा	संयद्वसु
घृताची	स्रुक्	वात	प्रहेति		यज्ञ
उर्वशी	आहुति	अवस्स्फूर्जन्	....	उपरि	अर्वाग्वसु
पूर्वचित्ती	दक्षिणा	विद्युत्	....		पर्जन्य
... ...	....	....	... ...	अधः	....
....	....	....	....	मध्य	....

इन्द्राग्नी आ गतꣳसुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम्। अस्य पातं धियेषिता। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ ३१ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे सेनापते! और हे अग्रणी नेतः! आप दोनों अभिषिक्त हुए २, प्रजा या सभासदों की सम्मतियों द्वारा वरण करने योग्य, सबको एक सूत्र में बांधने वाले, इस राजा को प्राप्त होओ, और उसके अधीन रहकर अपनी प्रज्ञा या कर्म, कर्त्तव्य द्वारा प्रेरित होकर इसकी आज्ञा का पालन करो। हे पुरुष! तू राज्य की व्यवस्था द्वारा बद्ध है। तुझ को इन्द्र और अग्नि दोनों पदों पर शासन करने के लिये नियुक्त करता हूँ। यह तेरा आश्रय स्थान या पद है। तुझको मैं इन्द्र और अग्नि दोनों अधिकार पदों के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ४। ३। १। २३–२४॥

[1]आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक्। येषामिन्द्रो युवा सखा। [2]उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥

त्रिशोक ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः (१) आर्षी गायत्री। षड्जः।
(२) उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष नित्य अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को प्रदीप्त करते, अधिक बलवान् करते हैं, और जो पदों के क्रम से आसनों को योग्य पुरुषों के लिये बिछाते हैं, जिनका ऐश्वर्यवान् राजा सदा उत्साही मित्र है, वे राजा के अधीन रहकर क्रम से उत्तरोत्तर योग्य पदों को योग्य आसन देते हैं। (उपयाम-गृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत्॥

[1]ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वेदेवास आ गत। दाश्वाꣳसो दाशुषः

सुतम् । उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः एष ते योनि-
र्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३३ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः ।
(२) आर्ची बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे समस्त अधिकारी राजगण ! आप लोग राष्ट्र के रक्षक और मनुष्यों को नियम या व्यवस्था में रखने वाले हो । आप लोग अपने को अन्न, धन आदि देने वाले राजा के प्रति उसको बल, ऐश्वर्य देने वाले हो । आप लोग अभिषिक्त राजा के अधीन आओ । हे पुरुष ! तू राज्यव्यवस्था द्वारा बद्ध है । तुझको समस्त विद्वानों तथा अधिकारी राजाओं के लिये सर्वोपरि नियुक्त करता हूँ । तेरा यह उच्च पद है । समस्त विद्वानों की रक्षा के लिये तुझे नियुक्त करता हूँ । शत० ४ । ३ । १ । २७ ॥

[१]विश्वे देवास आगत शृणुता म इमꣳ हवम् । एदं बर्हिर्निषीदत ।
[२]उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वे-
भ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥

गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः ।
(२) निचृदार्घ्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे समस्त विद्वान् देवगण ! प्रजाजनो ! आप लोग आओ । मेरी इस अभ्यर्थना को सुनो । (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत् ।

[१]इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः । [२]उप-
यामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा
मरुत्वते ॥ ३५ ॥

प्रजापतिरिन्द्रो देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) आर्घ्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे प्रजागण या सैन्य के स्वामी सेनापते ! इस अवसर पर सर्वप्रेरक राजा की तू रक्षा कर। जिस प्रकार कि बाणों द्वारा शत्रु पर आक्रमण करने के अवसर पर तूने अभिषिक्त राजा की रक्षा की थी। हे शूरवीर पुरुष ! तेरी शरण में उत्तम यज्ञशील और क्रान्तदर्शी ऋषि महर्षि तेरी उत्तम नीति द्वारा निवास करते हैं। हे शूरवीर पुरुष ! राज्यव्यवस्था द्वारा तुझे नियुक्त किया जाता है। प्रजाओं के या वायु के समान तीव्र सैनिकों के स्वामी पद के लिये तुझे नियुक्त करता हूँ। यह तेरा आश्रयस्थान और पद है प्रजाओं और वीर सुभटों के स्वामी पद के लिये तुझे स्थापित करता हूँ। शत० ४। ३। ३। १–१३ ॥

[1]मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यꣳशासमिन्द्रम्। विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रꣳसहोदामिह तꣳहुवेम। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते। [3]उपयामगृहीतोऽसि मरुतान्त्वौजसे ॥ ३६ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। (१) विराड आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) आर्षी उष्णिक्। (३) साम्नी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—मरुद्गण अर्थात् प्रजाओं और सुभटों के स्वामी, सब सुखों के वर्षक, सबको बढ़ाने वाले, "अकव" अर्थात् अधर्मात्मा के शत्रु अथवा अक+वारि दुखों के वारण करने वाले, दिव्य गुणवान्, समस्त शत्रुओं के विजयी, सेना के दमन में समर्थ, शासनकारी उस पुरुष को हम इस अवसर पर सेनापति या इन्द्र नाम से बुलाते हैं। शेष पूर्ववत्। तू राज्य की व्यवस्था द्वारा बद्ध है। तुझको वायु के समान तीव्र गतिशील सुभटों और प्रजाओं के पराक्रम के कार्य के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ४। ३। ३। १४ ॥

[1]सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रूँꣳ२॥ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः।

[२] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्रः प्रजापतिर्देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सबको समान भाव से प्रेम करने वाले, तथा वायुओं के समान तीव्र गतिमान् सैनिकों के गुणों से युक्त होकर हे ऐश्वर्यवन् सेनापते ! शूरवीर ! आप नगरों को घेरनेवाले शत्रुवों का नाश करके, राज्य-ऐश्वर्य के उत्तम पद को स्वीकार कर, और तू शत्रुओं का नाश कर। संग्रामकारी शत्रुओं को मार भगा। और हमें सब तरफ से भयरहित कर। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

मरुत्वाँ२॥ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय। आसिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम्। [२] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्रः प्रजापतिर्देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । (२) प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सेनापते ! तू उत्तम प्रजा और सेनाओं का स्वामी, शत्रुओं पर शरवर्षा करने वाला, अपनी धारणशक्ति के अनुसार सबको सन्तुष्ट या हर्षित करने के लिये, संग्राम के लिये, 'सोम' रस के समान बलकारी राजा के अधिकार को स्वीकार कर। पेट में जिस प्रकार अन्न के खा लेने पर बल उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू अपने वश में अन्न और शत्रु के दमन सामर्थ्य के उद्योग को प्रवाहित कर। तू राज्य के समस्त अंगों के प्रत्येक पद पर राजा रूप से विद्यमान है। (उपायामगृहीतः ० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

[1]महाँ२॥ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत्। [2]उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

भरद्वाज ऋषिः महेन्द्रः प्रजासेनापतिर्देवता । (१) भुरिक् पंक्तिः, पंचमः । (२) साम्नी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—महान् ऐश्वर्यवान् राजा नेता पुरुषों का स्वामी, अथवा नेता के समान समस्त लोकों और प्रजाजनों को पूर्ण करने वाला, प्रजा और शासकजन दोनों को बढ़ाने वाला, अपने सामर्थ्यों और बलों में अमित पराक्रमी हमारे प्रति कृपालु होकर वृद्धि को प्राप्त हो। वह वीरता के अधिक हो जाने से विशाल तथा विस्तृत राज्य वाला, और उत्तम कार्य कर्त्ताओं की सहायता से उत्तम राज्य-कार्यकर्त्ता हो। हे राजन्! तू राज्य के नियमों द्वारा बद्ध है। तुझको महेन्द्र पद के लिये नियत करता हूँ। यह तेरा आसन है। तुझे महेन्द्र पद के लिये स्थापित करता हूँ। शत० ४।३।३।१८॥

[1]महाँ२ऽ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ२ऽ इव। स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे। [2]उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ४० ॥

वत्स ऋषिः। इन्द्रः प्रजापतिर्देवता। (१) आर्षी गायत्री। (२) विराड् आर्षी गायत्री। षड्जः ॥

भा०—जो ऐश्वर्यवान् राजा बल से महान् है, और मेघ के समान प्रजा पर अत्यन्त सुख सम्पत्तियों की वर्षा करने वाला है, वह अपने राज्य में बसने वाली तथा पुत्र के समान प्रजा के किये गुणानुवादों, अथवा संघों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होता है। (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यं स्वाहा ॥ ४१ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—उस ऐश्वर्यवान् राजा को ज्ञानवान् पुरुष अपने ऊपर आदर से धारण करते, उसको स्वामी स्वीकार करते हैं । उस समस्त कार्यों और प्रजाओं के दर्शन करने या कराने वाले साक्षीरूप, सूर्य के समान सर्वप्रेरक राजा को सर्वोत्तम कहा जाता है । शत० ४ । ३ । ९ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
स्वाहा ॥ ४२ ॥

कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—विद्वानों और राज्य के पदाधिकारियों में से यह राजा अति पूजनीय, सर्वशिरोमणि होकर उदय को प्राप्त होता है । वह मित्र, वरुण और अग्नि इन पदाधिकारियों का भी आंख के समान मार्ग दिखाने वाला या उनपर निरीक्षक रूप से नियुक्त है । वह द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष सबको पूर्ण करता है । वह सूर्य के समान तेजस्वी जंगम प्रजाओं और स्थावर जंगल, पर्वत, नगर आदि समस्त धनों का स्वामी कहा जाता है । शत० ४ । ३ । ४ । १० ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

आंगिरस ऋषिः । अग्निरन्तर्यामी जगदीश्वरो वा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हे अग्रणी ! हे दिव्य राजन् ! हमें ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये उत्तम मार्ग से ले चल । तू समस्त मार्गों और उत्कृष्ट ज्ञानों को जानता है । और कुटिलता कराने वा करने वाले पाप और पापी पुरुष को हम

से दूर कर। तेरे लिए हम बहुत २ आदर युक्त वचन प्रयोग करते हैं, जिससे तेरा उत्तम यश हो। शत० ४। ३। ४। १२॥

अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन्।
अयं वाजाञ्जयतु वाजसाताव्यᳬ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥४४॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५। ३७॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथ प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥४५॥

प्रजापतिर्देवता। निचृज्जगती निषादः॥

भा०—हे प्रजाओ और सेना के पुरुषो! रूप अर्थात् चांदी आदि मूल्यवान् पदार्थ से तुम्हारे शिल्प को प्राप्त करता हूँ। समस्त धन ऐश्वर्य का स्वामी या ज्ञानवृद्ध ब्राह्मण तुमको नाना प्रकार से धन और ज्ञान का वितरण करे। तुम सब सुव्यवस्था के मार्ग से आगे बढ़ो। सुवर्ण और चांदी आदि की दक्षिणा अर्थात् अपने कर्म के बदले वेतन प्राप्त करो। हे राजन्! तू आकाश में विद्यमान तेजस्वी सूर्य को विशेष रूप से देख अर्थात् उसके समान तेजस्वी, शत्रुतापक होकर राजपद को जान और उस का पालन कर। और अन्तरिक्ष को भी विशेष रूप से जान। अर्थात् अन्तरिक्ष जिस प्रकार समस्त पृथिवी पर आच्छादित रहता और वायु वृष्टि द्वारा सब को पालता है उसी प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा का पालन कर और सभा के सदस्यों द्वारा राज्य को उन्नत करने का उद्योग कर। शत० ४। ३। १४-१८॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयᳬ सुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

विद्वांसो देवताः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं राजा इस राज्यकार्य में, उत्तम पिता माता गुरुजनों से युक्त, उत्तम पितामह वाले, वेदमन्त्रों के द्रष्टा, ऋषियों के विज्ञान को

जानने वाले, उत्तम सुवर्ण आदि धातु की दक्षिणा प्राप्त करने योग्य, ब्रह्म के ज्ञानी, विद्वान् पुरुष को प्राप्त करूं। हे सेना और प्रजा के पुरुषो! आप लोग हमसे वेतन प्राप्त करके विद्वान् पुरुषों को या विद्वान् पुरुषों के पदों को प्राप्त करो। और उत्कृष्ट दानशील अधिकारी के अधीन होकर रहो। शत० ४।३।४।१९-२०॥

[1]अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र एधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे [2]रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्र एधि वयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे [3]बृहस्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्र एधि मयो मह्यं प्रतिग्रहीत्रे [4]यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्र एधि वयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

वरुणो देवता (१) भुरिक् प्रजापत्या। (२) स्वराट् प्राजापत्या।
(३) निचृदार्ची। (४) विराड् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—राजा अपने अधीन पुरुषों को स्वर्ण आदि धन, गौ आदि पशु, और वस्त्र और अश्व का प्रदान करता है। हमारी इच्छा द्वारा वृत राजा, सुवर्ण आदि धन मुझ अग्रणी नेता को प्रदान करे। वह मैं पूर्ण आयु को प्राप्त करूं। दाता की दीर्घ आयु हो। और मुझ ग्रहण करने वाले को सुख हो। पशु और अन्न आदि भोग्य पदार्थ, राजा मुझ शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुष को प्रदान करे। वह मैं अमृत अर्थात् पूर्ण आयु का भोग करूं। दान करने वाले को प्राण, उत्तम जीवन बल प्राप्त हो। मुझ ग्रहण करने वाले को सुख प्राप्त हो। राजा वरुण वस्त्र आदि वेद-वाणी के पालक मुझ विद्वान् को दे। जिससे मैं पूर्ण आयु का भोग करूं। दानशील दाता को आवरणकारी वस्त्र आदि समस्त पदार्थ प्राप्त हों। मुझ स्वीकार करने वाले को सुख प्राप्त हो। सर्वश्रेष्ठ राजा मुझ राष्ट्रनियन्ता को हे अश्व! तुझे प्रदान करे। मैं जीवन के सुख को प्राप्त करूं।

दानशील पुरुष को घोड़े प्राप्त हों। और स्वीकार करने वाले मुझको दीर्घायु प्राप्त हो। शत० ४। ३। ४। २८-३१॥

कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते॥ ४८॥

काम आत्मा देवता। आर्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—कौन देता है? और किसको देता है? समना करने वाला अर्थात् अपने मनोरथ पूर्ण करने का इच्छुक स्वामी अपने अधीन पुरुषों द्रव्य, अन्न आदि प्रदान करता है। और उन नियत द्रव्य को लेने के अभिलाषी पुरुष को ही वह प्रदान करता है। वस्तुतः मनोरथ या आवश्यकता वाला पुरुष ही प्रदान करता है। इच्छुक या आवश्यकता वाला ही उस दिये धन को लेता है। यह सब लेन देन का कार्य हे अभिलाषी पुरुष! हे संकल्प! हे इच्छा! तेरा ही है। शत० ४।३।४।३२-३३॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः॥

[तत्र अष्टाचत्वारिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तमोऽध्यायः॥

अष्टमोऽध्यायः।

॥ ओ३म्॥ उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा
विष्ण उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्॥ १॥

बृहस्पतिः सोमो देवता। आर्ची पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे पुरुष! तू स्वयं वर विवाह द्वारा मुझ कन्या द्वारा स्वीकृत है। तुझे आदित्य के समान तेजस्वी पुत्रों के लिये वरण करती

हूँ। हे विद्यादि गुणों में प्रविष्ट! यह पुत्र गर्भ आदि में स्थित तेरा ही है, इसकी रक्षा कर। तुझे काम आदि व्यसन न सतावें।

कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यत आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

गृहपतिर्मघवा इन्द्रो देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः।

भा०—हे ऐश्वर्यवन् पते! आप कभी अपने भावों को नहीं छिपाते आत्मसमर्पण करने वाले को प्राप्त होते हैं। आप का दिया दान ही सदा मुझे प्राप्त हो। आपको मैं वरता हूँ॥

कदा चन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी। तुरीयादित्य सवनन्त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

आदित्यो गृहपतिर्देवता। निचृदार्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—स्त्री कहती है—हे पते! तू भी कभी प्रमाद न करे तो भूत और भविष्यत् दोनों जीवनों को बचा सकेगा। यदि तेरा उत्पादक इन्द्रिय,प्रजननाङ्ग वश में रहा तो आदित्य के समान पुत्रों या १२ मासों अर्थात् सदा के लिये तुझे वरती हूँ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः। आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद्ꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

कुत्स ऋषिः। आदित्या गृहपतिर्देवता। निचृत् जगती। निषादः।

भा०—विद्वान् स्त्री पुरुषों का गृहस्थयज्ञ सुख प्राप्त कराता है। आदित्य ब्रह्मचारियों! आप लोग सबको सदा सुख देने हारे बने रहो। आप लोगों की वह शुभ मति हमारे प्रति अनुकूल बनी रहे, जो पापी पुरुष को भी अधिक ऐश्वर्य या सुखलाभ कराने वाली होती है। हे वीर्यवान् पति! तुझे मैं ऐसे आदित्य ब्रह्मचारी बनने योग्य पुत्रों की रक्षा के लिये स्वीकार करती हूँ। शत० ४।३।५।१५॥

[1]विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व । [2]श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः । पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे ॥ ५ ॥

गृहपतयो देवताः । (१) प्राजापत्याऽनुष्टुप् । गान्धारः । (२) निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे विविध स्थानों पर निवास करने हारे या विविध ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे आदित्य के समान तेजस्विन् पते ! यह तेरा सोमपान करने का कर्त्तव्य है । तू उसमें ही आनन्द प्रसन्न रह । हे नेता आदित्य ब्रह्मचारियो ! इस वचन में सत्य और श्रद्धा को धारण करो । जिसके आश्रय पर आशीर्वाद देने वाले पति पत्नी सुन्दर पुत्र को प्राप्त करते हैं, और वह वीर पुत्र उत्पन्न होता है, वह ऐश्वर्य प्राप्त करता है । और सदा पाप रहित हो कर गृह में वृद्धि को प्राप्त होता है । शत० ४ । ५ । १७–२४ ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवे दिवे वाममस्मभ्यꣳ सावीः । वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६ ॥

भरद्वाजऋषिः गृहपतयः सविता वा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे उत्पादक पति ! आज सुन्दर पुत्र उत्पन्न कर । और आगामी काल में भी उत्तम पुत्र को उत्पन्न कर । और हमारे लिये सदा उत्तम पुत्र उत्पन्न कर । जिससे सुन्दर और विस्तृत गृह के बीच हे पति देव ! हम इस उत्तम बुद्धि से उत्तम पुत्रों को प्राप्त करने वाले हों । शत० ४ । ४ । १–२६ ॥

उपयामगृहीतोऽसि सावित्रोऽसि चनोधाश्चनोधा असि चनो मयि धेहि । जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७ ॥

भरद्वाज ऋषिः । सविता गृहपतिर्देवता । विराड् ब्राह्मी अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे पति! तुझे मैं स्त्री उपयाम = विवाह द्वारा स्वीकार करती हूँ। तू सावित्र अर्थात् प्रजा का उत्पादक, या परमेश्वर का उपासक, या स्वयं सविता-सूर्य के समान तेजस्वी है। तू अन्न समृद्धि का धारक है। तू गृहस्थमज्ञ को तुष्ट कर। सविता-रूप तुझे अर्थात् सन्तानोत्पादक पति पद के लिये वरती हूँ।

[1]उपयामगृहीतोऽसि [2]सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः। विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। (१) प्राजापत्या गायत्री। षड्जः।
(२) निचृदार्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—पति विवाह द्वारा बद्ध हो। वह उत्तम गृह वाला और प्रतिष्ठावान् हो वीर्यसेचन में समर्थ उसको आदर एवं अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों। समस्त विद्वानों के लिये मैं स्त्री तुझे वरती हूँ।

[1]उपयामगृहीतोऽसि[2] बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त इन्दोरिन्द्रियावतः। पत्नीवतो ग्रहाँ २ऽऋध्यासम् [3]अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत्। अहꣳसूर्यमुभयतो ददर्शाहं देवानां परमं गुहा यत् ॥ ९ ॥

विश्वेदेवा देवताः। (१) प्राजापत्या गायत्री। षड्जः (२) आर्षी उष्णिक्।
ऋषभः। स्वराड् आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—हे वीर्यवान् तू वर! तू बड़े विद्वान् का पुत्र है। आह्लादक ऐश्वर्यवान् वीर्यवान्, तथा पत्नी सहित है। तेरे स्वीकार किये समस्त गृहस्थ कर्त्तव्यों को आगे पीछे मैं पत्नी बढ़ाऊंगी। हमें अन्तःकरण का विज्ञान प्राप्त हो। दोनों तरफ अर्थात् इस लोक तथा परलोक दोनों में उस सबके प्रेरक परमेश्वर को अपना पालक मैं देखती हूँ। जो प्रेरक कि विद्वानों के हृदयों में परम तत्त्व रूप से गुप्त रहता है। शत० ४। ४। २। १५—२८ ॥

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा। प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय ॥ १० ॥

गृहपतयो देवताः। विराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे पत्नी वाले अग्रणी ! वीर्य को पुत्र रूप से परिणत करने वाले दिव्य सामर्थ्य से युक्त हो कर तू वेदोपदिष्ट उत्तम रीति से सोम शक्ति अर्थात् उत्पादक शक्ति का पान किया कर। हे पते ! तू प्रजा का पालक, वीर्य सेचन में समर्थ, तथा वीर्य धारण कराने वाला है। तू मुझ पत्नी में वीर्य धारण कर। तुझ प्रजापति के वीर्यवान् पुत्र का मैं प्राप्त करूं।

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यान्त्वा।
हर्योर्धानाः स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

गृहपतयो देवताः। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—गृहस्थ—तन्त्र में, हे पति ! तू स्त्री से विवाह द्वारा स्वीकृत है। अश्व के समान गृहस्थ का वहन करने वाले और सारथि के समान उसको सत् मार्ग पर ले चलने वाला तू है। तुझको ऋक् साम के समान स्त्री-पुरुष दोनों के हित के लिये गृहपति रूप में मैं वरती हूँ। हे विद्वान् पुरुषो ! आप सब सोम रूप पति सहित हम स्त्री पुरुषों को सन्मार्ग में धारण करने हारे रहो। शत० ४। ४। ३। ६॥

यस्ते अश्वसनिर्भक्षो यो गोसनिस्तस्य त इष्टयजुष स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

गृहपतयो देवताः। आर्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे पते ! तू अश्वों और गौ आदि ऐश्वर्यों से युक्त अथवा कर्मेन्द्रियों से युक्त है। तू अग्न्यादि विद्या और भूमि का भोक्ता और दाता है। तीनों वेदों के ज्ञाता तुझ विद्वान् को आदर पूर्वक निमन्त्रित

कर शेष का मैं उपयोग करूं। इसी प्रकार पति अपनी विदुषी उदारपत्नी एवं अन्य बन्धुओं को आदरपूर्वक बुलाकर भोजनादि करावे।

[1]देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि [2]मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि [3]पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्या [4]त्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्ये[5]नस एनसोऽवयजनमसि। [6]यच्चाहमेनो विद्वांश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। (१ ३ ४) निचृत्साम्नी। (२) साम्नी, (५) प्राजापत्या, (६) निचृदार्षी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे परमेश्वर! तू दानशीलों या उपदेशकों या विद्वानों के किये पाप अपराध को दूर करने वाला है। तू मनुष्यों द्वारा किये पाप को भी दूर करने हारा है। इसी प्रकार माता पिता के लिये पाप और अपराध की दूर करने वाला है। अपने आप किये गये पाप और अपराध को दूर करने में समर्थ है। प्रत्येक प्रकार के अपराध या पाप को दूर करने हारा है। और जो अपराध या पाप मैं जान बूझ कर करूं, और जो अपराध मैं विना जाने करूं, उस सब प्रकार के अपराध को तू दूर करने में समर्थ है।

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳशिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥

भरद्वाज ऋषिः। गृहपतयो विश्वेदेवा देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हम गृहस्थ लोग तेज, ब्रह्मवर्चस, अन्न, और जल, दुग्ध आदि पुष्टिकर पदार्थों, तथा उत्तम शरीरों और कल्याणकारी शुभ चित्त से सदा संयुक्त हों। उत्तम दानशील परमेश्वर समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे। जो हमारे शरीरों में कमी रह जाय उसको परमेश्वर पूर्ण करे शत० ४। ४। ४। ८॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या । सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳसुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥ १५ ॥

अत्रिर्ऋषिः । गृहपतिर्देवता भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! हे परम श्रेष्ठ परमेश्वर ! हमें मन, इन्द्रियों, वेदवाणी गौ आदि पशुओं, और विद्वान् पुरुषों के साथ संगत कर । और ब्रह्म अर्थात् वेद से, और विद्वानों द्वारा जो उत्तम कार्य किया जाता है उससे भी हमें संगत कर । और सत्संग करने योग्य श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषों की शुभ मति के अधीन हमें उत्तम ज्ञानवाणी द्वारा सुखपूर्वक सब कुछ प्राप्त करा । यह तेरा उत्तम यशोजनक कर्त्तव्य है । शत० ४ । ४ । ४ । ७ ।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरमन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो [अ० २ । २४ और अ० ५ । १४] ।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳ रराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥ १७ ॥

विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—धाता, राति, सविता, प्रजापति, अग्नि, त्वष्टा और विष्णु ये सब अधिकारी वर्ग इस परस्पर के सहयोग से बने राष्ट्र को प्रेम से स्वीकार करें, ओर अपनी संतान के समान प्रजा के साथ अच्छी प्रकार आनन्द प्रसन्न रहते और जीवन को सुखी करते हुए, अपने को धारण पोषण देने वाले राजा को धनैश्वर्य उत्तम धर्मयुक्त रीति से प्रदान करें, उसे पुष्ट करें । शत० ४ । ४ । ९ ॥

सुगा वो देवाः सदना अकर्म य आजग्मेदᳬ सवनं जुषाणाः ।
भरमाणा वहमाना हवीᳬष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥

विश्वेदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वानो और दानशील वैश्य पुरुषो ! या राजपदाधिकारियो ! जो आप लोग इस राष्ट्रयज्ञ की सेवा करते हुए, और नाना अन्न आदि उपादेय पदार्थों का भोग करते हुए, और उनको प्राप्त करते हुए आते हैं, उन आप लोगों के लिये, सुखपूर्वक चलने योग्य मार्ग, और उत्तम आश्रय स्थान, व्यापार के निमित्त मार्ग और दुकान, मण्डियां मार्केट या बाज़ार आदि हम बनावें । हे यहाँ के निवासी प्रजाजनो ! आप लोग हमारे राष्ट्र के लिये उत्तम रूप से धर्मानुकूल करो, कराओ । शत० ४ । ४ । ४ । १० ॥

याँ२ऽ आवह उशतो देव देवाँस्तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवाᳬसः पपिवाᳬसश्च विश्वेऽसुं घर्मᳬस्वरातिष्ठतानु
स्वाहा ॥ १९ ॥

गृहपतयो देवताः । भुरिगार्षी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! जिन नाना कामनाओं और इच्छाओं से युक्त पुरुषों को तू स्वयं अपने सहयोग के पद पर स्थापित करता है उनको प्रेरित कर । हे राज्यपदाधिकारी पुरुषो ! आप लोग भोजन करते हुए, जल आदि पान करते हुए, उत्तम रीति से प्रज्ञा और प्राण को प्राप्त करो, और अतितेजोयुक्त सुखमय पदों पर विराजो । शत० ४ । ४ । ४ । ११ ॥

वयᳬहि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह । ऋधगया ऋधगुताशमिष्ठाः प्रजानन्यज्ञमुपयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥

गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे तेजस्विन् ! हम लोग इस यज्ञ के प्रारम्भ में ही इस

यज्ञ में होता के समान आदान-प्रतिदान करने में निपुण नेता का वरण करते हैं। हे विद्वान् समर्थ पुरुष ! तू समृद्धि-सम्पत्ति की वृद्धि करता हुआ इस महान् यज्ञ का सम्पादन कर। और समृद्धि करता हुआ ही इस कार्य में आने वाले विघ्नों का शमन कर। तू राष्ट्र की व्यवस्था के समस्त कार्य को जानता हुआ ही उत्तम विज्ञान सहित प्राप्त हो। शत० ४।४।४।१२॥

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित।
मनसस्पत ऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥ २१॥

गृहपतयो देवताः। स्वराडार्ष्युष्णिक्। ऋषभः।

भा०—इसकी व्याख्या देखो [अ० २। मं० २१।]। शत० ४। ४।४।१३॥

[1]यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा। [2]एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा॥२२॥

गृहपतयो देवताः। (१) भुरिक् साम्नी बृहती। (२) विराडार्ची बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राष्ट्रयज्ञ ! तू परस्पर की संगति को प्राप्त कर। उसको पालन करने वाले समर्थ पुरुष को प्राप्त कर। तू अपने आश्रय को प्राप्त कर। तभी उत्तम रीति से सम्पादन हो सकता है। हे यज्ञ के पालक राष्ट्रपते ! तेरा ही यह यज्ञ है। यह उत्तम वेद के सूक्तों का अध्ययन करने वाले विद्वान् पुरुषों से युक्त, और सब प्रकार के वीर पुरुषों से युक्त है। उसको तू उत्तम रीति से वेदानुकूल स्वीकार कर। शत० ४।४।४।१४॥

[1]माहिर्भूर्मा पृदाकुः। [2]उरुꣳ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ। अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्। [3]नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः॥ २३॥

गृहपतयो देवताः । (१) याजुषी उष्णिक् । ऋषभः । (२) ऋग्वेदे शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । (३) आसुरी गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू सांप के समान कुटिल, क्रोधी मत बन । अजगर के समान सब प्राणियों को निगलने वाला, एवं उनको अपने बंधन में बाँधकर मारने वाला, क्रूर भी तू मत बन । सर्वश्रेष्ठ राजा ने सूर्य के प्रकाश के समान उज्वल सत्य तक पहुंचने के लिये विशाल मार्ग बना दिया है । वह जहां पैर भी नहीं रखा जा सके ऐसे स्थानों में भी पैर रखने के लिये मार्ग बना देता है । वह श्रेष्ठ राजा हृदय को कटुवाक्यों और अपने क्रूर कृत्यों से दूसरों के छेदने वाले मर्मभेदी दुष्ट पुरुष का भी अपवाद करने वाला, उसके प्रति अभियोग चला कर निग्रह करने वाला है । ऐसे सर्वश्रेष्ठ पापों के वारण करने हारे राजा को नमस्कार है । ऐसे सर्वश्रेष्ठ राजा का राज्यनियमों का दमनकारी पाश सर्वत्र स्थिर रहे ॥ शत० ४ । ४ । ५ । १-११ ॥

अ॒ग्नेरनी॑कम॒प आवि॑वेशा॒पांनपा॑त् प्र॒ति रक्ष॑न्नसु॒र्य॑म् । दमे॑ दमे॒ स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्य॒त् स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

अग्निर्गृहपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—अग्रणी राजा का मुख्यबल या सेनासमूह प्रजाओं को गिराने वाला न होकर, प्रजाओं के पुत्र समान ही हो कर, उनके प्राण धारणोपयोगी जान माल की रक्षा करता हुआ, प्रजाओं में प्रविष्ट या व्याप्त होकर रहे । हे राजन् ! तू घर २ में या प्रत्येक दमन के कार्य में प्रकाशयुक्त तेजस्वी पुरुष को नियुक्त कर । हे राजन् ! तेरी आज्ञा उग्रता को भली प्रकार प्राप्त करे । शत० ४ । ४ । ५ । १२ ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सं त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒तापः॑ । य॒ज्ञस्य॑ त्वा यज्ञपते सू॒क्तोक्तौ॑ नमोवा॒के वि॑धेम॒ यत् स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

सोमो गृहपतिर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तेरा हृदय प्रजाओं के भीतर नाना प्रकार के उन्नतिकारक व्यवहार में लगे । और तुझ में दुष्टों को दण्ड द्वारा पीड़ित करने वाले अधिकारी और आप्त प्रजाजन सब आश्रय पावें । हे राष्ट्र-यज्ञ के पालक ! जिसमें वेद सूक्त प्रमाणरूप से कहे जायँ ऐसे उत्तम कार्य में और आदर योग्य वचनों के कार्य में, जो भी उत्तम त्याग योग्य और ग्रहण योग्य पदार्थ हैं वह तुझे प्रदान करें । शत० ४ । ४ । ५ । २० ॥

देवीराप एष वो गर्भस्तᳫं सुप्रीतᳫं सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

आपः सोमा गृहपतयो देवताः । स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे दानशील आप्त प्रजाओ ! यह राजा आप लोगों का माताओं या गृह-देवियों द्वारा उत्तम रीति से गर्भ के समान रक्षा करने एवं धारण करने योग्य है । उसको अति उत्तम रीति से तृप्त, संतुष्ट और उत्तम रीति से परिपुष्ट रूप में धारण करो । हे राजन् सर्वप्रेरक ! तेरा यह प्रजाजन ही निवास करने योग्य आश्रय है । तू उसमें विद्यमान रहकर शान्ति प्राप्त कर, और उसको अन्य नाना पदार्थ प्राप्त करा । शत० ४ । ४ । ५ । २१ ॥

[1]अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । [2]अव देवैर्देवकृत-
मेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ।
देवानाᳫं समिदसि ॥ २७ ॥

दम्पती देवते । (१) भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् । गांधारः ।
(२) स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे अपने अधीन समस्त अधिकारी और प्रजावर्ग को भरण पोषण करने हारे राजन् ! और हे अलक्षितरूप से गतिशील ! तू नित्य चलता रहता है, सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक है, पर तो भी तेरी अत्यन्त

मन्दगति है, तेरी गति का पता नहीं लगता । हे देव ! मैं पूज्य विद्वानों के प्रति किये गये अपराध को विद्वान् पुरुषों द्वारा दूर कर त्याग दूं । और साधारण लोगों के प्रति किये अपराध को साधारण जनों से मिलकर दूर करूं । हे देव ! तू नाना विध दारुण कष्टों के देने वाले हिंसक पुरुष से हमें बचा कर । तू विद्वानों और समस्त राष्ट्र के पदाधिकारियों के बीच में प्रज्वलित काष्ठ वा सूर्य के समान तेजस्वी है । शत० ४ । ४ । ५ ।२२॥

[1]एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । [2]यथायं वायुरेजति यथा समुद्र एजति । [3]एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणा सह ॥ २८ ॥

दम्पती देवते । (३) आसुर्युष्णिक् । ऋषभः ।

(२) प्राजापत्याऽनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—मंत्र २६ में राजा को गर्भ से उपमा दी है । उसी का पुनः निर्वाह करते हैं । दश मास का गर्भ जिस प्रकार जेर के साथ शनैः २ बाहर आता है उसी प्रकार परिपक्व होकर और राष्ट्र को पूर्ण प्रकार से ग्रहण करने में समर्थ होकर राजा अपने चारों ओर से घेरने वाले सपक्ष दल के साथ चले । और जिस प्रकार यह वायु बड़े वेग से समस्त वृक्ष आदि को कंपाता हुवा चलता है, और जिस प्रकार समुद्र गर्जता हुआ तरङ्गों द्वारा कांपता है, उसी प्रकार यह दशों दिशाओं में 'मास्' अर्थात् चन्द्रमा के समान आह्लादक और प्रजाओं को प्रसन्न करने हारा राजा स्पष्टरूप में प्रकट होता है । शत० ४ । ५ । २ । ४, ५ ॥

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमथं स्वाहा ॥ २९ ॥

दम्पती देवते । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जिस पृथिवी के हित के लिये राष्ट्रयज्ञ के योग्य ही उसको वश करने में समर्थ पुरुष है, और जिसका आश्रय सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से युक्त कोश है, उस माता के समान पृथिवी के साथ उस राजा को,

जिसके अंग अर्थात् देह वा राज्य के समस्त अंग कुटिलता से रहित, निर्दोष हों, जो सत्यवादी, सौम्य, और धर्मात्मा हो, उसको, मैं पुरोहित संयुक्त करता हूँ।

पुरुदस्मो विषुरूप इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः। एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳪं स्वाहा ॥३०॥

दम्पती देवते। गर्भव्यवस्था। आर्षी जगती। मध्यमः॥

भा०—बहुत से प्रजाजनों के बीच दर्शनीय, अथवा बहुत से दुःखों का नाशक, बहुत से रूपों में प्रकट होने वाला, ऐश्वर्यवान्, तथा धीर राजा प्रजाओं के बीच अपने महान् सामर्थ्य को प्रकट करता है। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग राजा रूप से एक चरण वाली, राजा और राज्याङ्गरूप से दो चरणवाली, राजा, राज्याङ्ग और राजसभा इन तीन अंगों से तीन चरणोंवाली, चारों वर्णों से चार चरणोंवाली, अथवा सेना के चार अगों द्वारा चतुष्पदी, और चार वर्ण और चार आश्रम द्वारा अष्टापदी अथवा राज्य के सात अंग और पुरोहित इनसे अष्टापदी, 'वशी' अर्थात् राज्य की वशकारिणी शक्ति को समस्त भुवनों में उत्तम रीति से विस्तृत करो। शत० ४।५।२।१२॥

मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः।
स सुगोपातमो जनः॥ ३१॥

गोतमऋषिः। दम्पती गृहपतयो वा मरुतो देवताः। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे विशेष रीति से आदर-सत्कार करने योग्य वैश्यजनो! और विद्वान् पुरुषो! एवं वायु के समान तीव्रगामी सैनिक पुरुषो! आप लोग जिसके अधीन राष्ट्र में रहकर दिव्यगुणों को प्राप्त होते हो वह ही पुरुष सबसे उत्तम पृथ्वी का रक्षक है। शत० ४।५।२।१७॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥ ३२॥

मेधातिथिर्ऋषिः द्यावापृथिव्यौ दम्पती देवते । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—पूजनीय और आकाश के समान सेचन समर्थ राजा और उसके आश्रय पर प्राण धारण करने वाली प्रजा, दोनों इस राष्ट्रमय यज्ञ का सेचन करें । और दोनों हमें भरण पोषणकारी पदार्थों और साधनों से पूर्ण करें । शत० ४ । ५ । २ । २ । १८ ॥

[१]आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । [२]उपयामगृहीतोसीन्द्राय त्वा षोडशिने एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३ ॥

गोतम ऋषिः । षोडशी इन्द्रो गृहपतिर्देवता । (१) आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—शोडषी इन्द्र का वर्णन—हे विघ्नकारी पुरुष के नाशकारिन् राजन् ! तू रमणीय राज्यासन रूप रथ पर विराजमान हो । तेरे धारण और आकर्षण गुण ब्रह्मवेत्ताओं के बल से युक्त हों । ज्ञानोपदेशक विद्वान् अभिमुख तेरे चित्त को उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करे । हे पुरुष ! तू राज्य की नियमव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है । तुझको सोलहों कलाओं से सम्पन्न परमैश्वर्यवान् राजा के लिये नियुक्त करता हूँ । तेरा यह पद है । तुझ योग्य पुरुष को षोडश कला वाले राज्य के प्रधान १६ पदाधिकारी शक्तियों से युक्त अथवा १६ महामात्यों से युक्त इन्द्र के लिये नियुक्त करता हूँ । शत० ४ । ५ । ३ । ९ ॥

[१]युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा । अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर । उपयामगृहीतो ऽसीन्द्राय त्वा षोडशिने एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । षोडशी इन्द्रो गृहपतिर्वा देवता । (१) विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः । (२) आर्ष्युष्णिक् ऋषभः ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू अपने रमणीय राष्ट्र में, एक दूसरे के कक्ष्य अर्थात् दायें बाये पार्श्वों को पूर्ण करने वाले, वीर्य सेचन में में समर्थ, परस्पर के चित्तहारी उत्तम प्रसाधित केशवान् स्त्री पुरुष रूप जोड़ों को गृहस्थ कार्य में नियुक्त कर। तू राष्ट्र का पालक होकर हमारी स्पष्ट सुनी जाने वाली वाणी को जान। (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत्। शत० ४।५।३।१०॥

[1]इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम्। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥

गोतम ऋषिः। षोडशीन्द्रो गृहपतिर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः।
(२) आर्ष्युष्णिक् ऋषभः॥

भा०—जिसके बल को शत्रु कभी सहन करने में समर्थ नहीं हैं ऐसे परमैश्वर्यवान् राजा को तीव्र गतिमान् अश्व वहन करते हैं। हे वीर पुरुष राजन् ! तू वेद-मन्त्रार्थ-द्रष्टा ऋषियों की स्तुतियों और मनुष्यों के आदर-सत्कार को प्राप्त हो।

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा। प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥ ३६ ॥

विवस्वान् ऋषिः। इन्द्रः षोडशी प्रजापतिः परब्रह्म परमेश्वरो वा देवता।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—'षोडषी' सम्राट् वह कहाने योग्य है, जिस से उत्कृष्ट दूसरा न हो। वह अपने राज्य के समस्त स्थानों और पदों पर शासक हो। वह अपनी प्रजा सहित रमण करता हुआ तीनों ज्योतियों अर्थात् सूर्य विद्युत् अग्नि के समान तेजस्वी हो। वह 'षोडशी' अर्थात् सोलह कला-

वान् अथवा १६ राजसभा के सदस्यों से युक्त पुरुष पुरुषोत्तम पद का भागी होता है।

[1]इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्। [2]तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

विवस्वान् ऋषिः। इन्द्रावरुणौ सम्राट् माण्डलिकराजानौ देवते। (१) साम्नी त्रिष्टुप् (२) आर्ची त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—इन्द्र और वरुण दोनों क्रम से सम्राट् और राजा हैं। अर्थात् महाराजा चक्रवर्ती राजा को सम्राट् या इन्द्र कहा जाता है और माण्डलिक राजा को राजा या वरुण कहना उचित है। हे प्रजाजन! वे दोनों सबसे प्रथम तेरे इस उपभोग करने योग्य पदार्थ को सेवन करते हैं और उन दोनों के बाद मैं प्रजाजन राष्ट्र के भोग्य पदार्थ का भोग करता हूँ। वाणी जिस प्रकार प्राण के साथ मिलकर ज्ञान का सेवन करती हुई तृप्त होती है उसी प्रकार यह पृथिवी या महारानी सब के शासन करने हारे राजा के साथ प्रेम करती हुई उत्तम कीर्ति से तृप्त हो ॥

[1]अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद्रयिं मयि पोषम्। [2]उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चस एष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे। [3]अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वन्देवेष्वासि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥

वैखानस ऋषिः। राजादयो गृहपतयो वा अग्निर्देवता। भुरिक् त्रिपाद् गायत्री। षड्जः। (२) स्वराडार्च्यनुष्टुप्। (२) भुरिगार्च्यनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे अग्रणी! तू शुभ कर्म और ज्ञान से युक्त हो, और हमें उत्तम वीर्य से युक्त तेज प्रदान कर। मुझ में पुष्टिकारक वीर्य और ऐश्वर्य धारण करा। हे पुरुष! तू उत्तम राज्यव्यवस्था के वश है। अग्नि पदके

तेज के लिये तुझको नियत करता हूँ। तेरा यह पद है। अग्नि के तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करता हूँ। हे तेजस्विन् अग्रणी विद्वानों और राजाओं के बीच में तू तेजस्वी है। मैं मनुष्यों में वर्चस्वी होऊं। शत० ४।५।४।२॥

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोममिन्द्र चमूसुतम्। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजस एष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे। [3]इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम्॥ ३९॥

कुरुसुतिः वैखानसो वा ऋषिः। इन्द्रो राजादयो गृहस्था वा देवताः। (१, २) आर्षी गायत्री। षड्जः। (३) आर्च्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन्! तू अपने पराक्रम के साथ ऊपर उठता हुआ, अपनी सेनाओं द्वारा सम्पादित ऐश्वर्ययुक्त राज्यपद को प्राप्त करके, अपने हनु और नासिका दोनों को कंपा। अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य स्वादु पदार्थ पीकर तृप्त होजाने पर नाक मुख हिलाता है इसी प्रकार तू भी राज्यैश्वर्य प्राप्त करके अपना सन्तोष प्रकट कर। हे योग्य वीर पुरुष! तू राज्यव्यवस्था के द्वारा स्वीकृत है। तुझको पराक्रमशील इन्द्र पद के लिये मैं नियत करता हूँ। यह तेरा सिंहासन है। इस पराक्रमशील इन्द्र पद के लिये तुझे इस पद पर स्थिर करता हूँ। हे सबसे अधिक ओज, तेज, पराक्रम से युक्त राजन्! तू समस्त राजाओं में से सबसे अधिक पराक्रमी है। मैं तेरे द्वारा मनुष्यों में सबसे अधिक ओजस्वी हो जाऊं। शत० ४।५।४।१०॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽ अनु। भ्राजन्तो अग्नयो यथा [2]उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम्॥ ४०॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्योऽग्नयो गृहपतयो राजादयो देवताः ॥ (१) आर्षी गायत्री । (२) स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—इस राजा के सूर्यकिरणों के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् अधिकारी लोग, जिस प्रकार देदीप्यमान अग्नियां हों उसी प्रकार तेजस्वी अग्रणी पुरुष हैं, उनको प्रजाजनों के उपकार के लिये नियुक्त देखता हूँ । हे तेजस्वी पुरुष ! तू राज्य के व्यवस्था-नियमों से बद्ध है । तेजस्वी 'सूर्य' पद के क्रिये तुझे वरता हूँ । तेरा यह आश्रय है । सूर्य पद के लिये तुझे स्थापित करता हूँ । हे प्रदीप्त सूर्य के समान पदाधिकारिन् ! तू सब विद्वानों और राजाओं में सबसे दीप्ति से युक्त है । तेरे तेज से मनुष्यों में मैं सबसे दीप्तिमान् होऊं । शत० ४ । ५ । ४ । ११ ॥

[१]उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् । उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । (१) निचृदार्षी, (२) स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—उस पदार्थों के ज्ञाता सूर्य के समान तेजस्वी राजा को, किरणों के समान प्रकाशमान् ज्ञानी विद्वान् लोग निरीक्षक साक्षीरूप से सबसे ऊपर स्थापित करते हैं । हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! तू राज्य-नियमव्यवस्था द्वारा सुबद्ध है । तुझको तेजोयुक्त सूर्य पद के लिये नियुक्त करते हैं । यह तेरा पद है । सूर्य के समान तेजस्वी पदाधिकार के लिये तुझको स्थापित करता हूँ ।

आजिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्त्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ॥४२॥

कुसुरुबिन्दुर्ऋषिः । पत्नी गौर्वा देवता । स्वराड् ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे पूजा करने योग्य पृथिवि ! तू कलाओं, राज्य के अंगों को सुचारु रूप से धारण करने वाले राष्ट्र और राष्ट्रपति को स्वीकार कर ।

तुझमें ऐश्वर्यवान् राजा, प्रजाजन और ऐश्वर्य के पदार्थ प्रविष्ट हों। तू बार २ अन्न आदि पुष्टिकारक पद पदार्थों सहित भरी पूरी हो, और हमें प्राप्त हो। वह तू हमें बहुत से धारण पोषण के सामर्थ्यवाली और अन्न, घी, दूध आदि से युक्त होकर हजारों ऐश्वर्य प्रदान कर। और ऐश्वर्यरूप तू मुझको बार२ प्राप्त हो। शत० ४।५।८।७-९॥

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ ४३॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे अन्नदात्री! हे रमण करने योग्य रमणीय! हे स्वीकार करने योग्य! हे कामना योग्य! हे ज्योतिष्मति चन्द्र के समान आल्हादकारिणी! हे अखण्ड रूप वाली! हे महति! हे विविध गुणों से प्रसिद्ध, मुझे राजा को विजयी पुरुषों के समक्ष उत्तम कर्म करने वाला प्रसिद्ध कर। हे खण्ड २ न करने योग्य! ये सब तेरे ही नाम, तेरे ही रूप हैं। शत० ४।५।८।१०॥

[1]वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। यो अस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृध एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे॥ ४४॥

शासो भारद्वाज ऋषिः। इन्द्रो देवता। (१) निचृद् अनुष्टुप्। गान्धारः। (२) स्वराडार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे सेनापति या राजन्! तू हमारे शत्रुओं का विनाश कर। युद्ध के लिये सेना-संग्रह करने वाले या सेना से चढ़ाई करने वाले नीच शत्रुओं को बांध कर रख। जो हमको दास बनाना चाहता है, उसको गहरे अन्धकार के स्थान में पहुंचा। हे योग्य पुरुष! तू राज्यव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। तुझको विशेषरूप से शत्रुओं को मर्दन करने वाले सेनापति के पद पर नियुक्त करता हूँ। तेरा यह पद है। 'विमृध् इन्द्र'

अर्थात् विशेष सांग्रामिक सेनापति नामक पद पर तुझे स्थापित करता हूँ। शत० ४। ६। ४। ४॥

¹वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम। स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा। ²उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥ ४५॥

शासो भारद्वाज ऋषिः। ईश्वरः सभेशो वाचस्पतिर्विश्वकर्मा इन्द्रो देवता।
(१) भुरिगार्षी त्रिष्टुप् धैवतः। (२) विराडार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—सब आज्ञाओं के स्वामी, समस्त कर्मों के व्यवस्थापक, मनके समान वेगवान् पुरुष को हम आज अन्न संग्रह, ज्ञान तथा शक्ति के कार्य में बुलाते हैं। वह श्रेष्ठ कर्म करने हारा अथवा सब कामों के करने में कुशल, सबका कल्याणकारी होकर हमारी समस्त अभिलाषाओं को स्वीकार करे और पूर्ण करे। हे योग्य पुरुष! तू राष्ट्रव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। तुझको 'विश्वकर्मा इन्द्र' के पद पर नियुक्त करता हूँ। यह तेरा पद और स्थान है। तुझको 'इन्द्र विश्वकर्मा' पद पर स्थापित करता हूँ। शत० ४। ६। ४। ५॥

¹विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्। तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत्। ²उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मण एष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे॥ ४६॥

शासो भारद्वाज ऋषिः। विश्वकर्मा इन्द्रो देवता। निचृदार्षी। त्रिष्टुप्। धैवतः
(२) विराडार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे समस्त कला कौशल के कार्यों को भली प्रकार से सम्पादन करने में समर्थ! तू वृद्धि करने वाली उचित साधन-सामग्री से राष्ट्र

के रक्षक राजा को अवध्य बना देता है। अर्थात् तेरे कौशलों से सुरक्षित राजा को कोई भी युद्ध में मारने में समर्थ नहीं होता है। उस रक्षक राजा के आगे शिक्षा में पूर्ण समस्त प्रजाएं भली प्रकार झुकती हैं। तेरे ही कारण यह राजा विशेष साधनों से सम्पन्न जिस प्रकार हो तू ऐसा प्रयत्न कर। हे योग्य पुरुष! (उपयाम गृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत् शत० ४।५।४।६॥

उपयामगृहीतोस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसं गृह्णामीन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसं गृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

देवा ऋषयः। अदाभ्यो विश्वकर्मा इन्द्रो देवता। विराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः।

भा०—हे योग्य पुरुष! तू राज्यव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। अग्नि-पद के लिये गायत्री छन्द से युक्त तुझको स्वीकार करता हूँ। और हे पुरुष! त्रिष्टुप्-छन्द से युक्त तुझको इन्द्र पद के लिये स्वीकार करता हूँ। जगत छन्द से युक्त तुझको समस्त विद्वानों के हित के लिये स्वीकार करता हूँ। हे राजन्! तेरा उपदेष्टा यह वेदवाणी है शत० ॥

(१) गायत्रोऽयं भूलोकः ॥ कौ० ८।९॥ ब्रह्म गायत्री। भूलोक और वेद या ब्राह्मणों के 'छन्दस्, अर्थात् आच्छादक रक्षक को 'अग्नि' पद के लिये नियुक्त करे।

(२) क्षत्रस्यैवैतच्छन्दो यत् त्रिष्टुप्। कौ० १० ।५॥ बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप्। कौ० ७।२॥ बल की रक्षा करने वाले को इन्द्र पद के लिये नियुक्त करे।

(३) पशवो वै जगती। कौ० १६।२॥ जगती। वै छन्दसां परमं पोषं पुष्टा। समस्त अन्य देवों के पदों पर पशु, प्रजा, समृद्धि के पालक पुरुषों को नियुक्त करे।

(४) 'अनुष्टुप्'—वाग् वा अनुष्टुप्। शत० ३।१।४।२॥

प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । ता० ४ । ८ । ९ ॥ आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । ८ । २ ॥ और प्रजापालक शक्ति, राष्ट्र का, 'आंभगर' आज्ञापक था उपदेष्टा हो ।

[1]व्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि [2]कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [3]भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [4]मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [5]मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [6]शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोम्यन्हो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । (१) याजुषी पंक्तिः । पंचमः (२,४,५) याजुषी जगती । निषादः । (६) साम्नी बृहती । मध्यमः ॥ (३) याजुषी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! हे पतनशील ! आवृतस्थान पर शयन करने वाली प्रजाओं के बीच धर्माचरण से गिरते हुए तुझको मैं पुरोहित निरन्तर विद्याभ्यास करने वाली विनयशील प्रजाओं के बीच न्यायाचरण से गिरने पर तुझको मैं कम्पित करूं । कल्याणकारिणी प्रजाओं के बीच तेरे अधःपतन होने पर मैं तुझको कम्पित करूं । अत्यन्त सन्तुष्ट रहने वाली प्रजाओं के बीच नीच आचरण से गिरने पर तुझको मैं दण्ड से कम्पित करूं । मधुर स्वभाव वाली प्रजाओं के बीच अन्याय से से गिरने पर तुझको मैं कम्पित करूं । हे शुद्धाचरण राजन् ! दिन के प्रदीप्त स्वरूप में, और सूर्य की किरणों के स्वरूप में, दीप्तिमान् तुझको मैं नीचाचार होने पर कम्पित करता हूँ ।

[1]ककुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । [2]यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४६ ॥

देवा ऋषयः । विश्वेदेवाः प्रजापतयो देवताः । (१) विराट् प्राजापत्या जगती । निषादः । (२) निचृद् उष्णिक् । धैवतः ॥

भा०—सुखों के वर्षक राजा का दिशा के समान शुद्ध और आदित्य के समान कान्तिमान् रूप प्रकाशित होता है। महान् तेजस्वी राजा ही तेजस्वी धर्मानुकूल राष्ट्र का नेता होता है, हे राजन्! तू सबका प्रेरक होकर ऐश्वर्यपूर्ण राष्ट्र का नेता हो। हे राजन्! क्योंकि तेरा कभी नाश न होने वाला सदा सावधान स्वरूप है उस कर्त्तव्य के लिये तुझे मैं ग्रहण करता हूँ। हे राजन्! उस तेरे लिये उत्तम यश प्राप्त हो।

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

देवा ऋषयः। प्रजापतिः सोमो देवता। भुरिगार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे दानशील प्रेरक राजन्! तू इच्छावान् होकर अग्रणी पुरुष के प्रिय लगने वाले कर्त्तव्य को प्राप्त हो। हे राजन्! तू ऐश्वर्यवान् सेनापति के प्रिय पालन व्यवहार को प्राप्त हो। हे राजन्! तू हमारा मित्र होकर समस्त विद्वानों, राज्याधिकारियों और प्रजाजनों के पालन-कर्त्तव्य या पदाधिकार को प्राप्त हो।

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा। उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन्। रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

देवा ऋषयः। प्रजापतयो गृहस्था देवताः। भुरिग् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे राजा के अधीन पुरुषो! इस राष्ट्र में आनन्द प्रमोद रहे। यहां आप लोग आनन्द से जीवन व्यतीत करो। यहां सब पदार्थ और व्यवहार स्थिर हैं, आप लोगों की अपनी स्थिति और आपके पदार्थों की स्थिति सत्यवाणी, और क्रिया भी यहां ही रहे। हे प्रजापालको! आप लोग धारण करने योग्य जिस सन्तान को उसकी माता के

अधीन करते हो वह बालक उस माता का स्तन्य पान करता हुआ हम में उत्तम विद्या और सदाचरण लाभ करके धनैश्वर्य की वृद्धि करे। शत० ४ । ६ । ७ । ९ ॥

स॒त्रस्य॒ ऋद्धि॑र॒स्यग॑न्म॒ ज्योति॑र॒मृता॑ अभूम ।
दिवं॑ पृथि॒व्या अध्यारु॑हा॒मावि॑दाम दे॒वान्त्स्व॒र्ज्योतिः॑ ॥ ५२ ॥

देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! परस्पर एकत्र हुए राजा प्रजाजनों का तू समृद्धि रूप या शोभा है । हम सब प्रजाजन विज्ञान के प्रकाश और ऐश्वर्य को प्राप्त हों । हम लोग अमृत, १०० वर्ष तक के दीर्घ जीवन वाले हों। इस पृथिवी से प्रकाशमय लोक को प्राप्त हों । विद्वान् पुरुषों का नित्य संग लाभ करें। और सब पदार्थों के प्रकाशक आनन्दमय परम मोक्ष को भी प्राप्त करें । शत० ४ । ६ । ९ । १२ ॥

[1]यु॒वं तमि॑न्द्रापर्वता पुरो॒यु॒धा॒ यो नः॑ पृत॒न्यादप॒ तं त॒मिद्ध॑तं॒ वज्रे॑ण॒ तन्त॒मिद्ध॑तम् । [2]दू॒रे च॒त्ताय॑ छन्त्सद् गह॑नं॒ यदिन॑क्षत् ! [3]अ॒स्माक॒ꣳ शत्रू॒न् परि॑ शूर वि॒श्वतो॑ द॒र्मा द॑र्षीष्ट वि॒श्वतः॑ [4]भूर्भुव॒ः स्व॒ः सुप्र॒जाः प्र॒जाभि॑ः स्याम सु॒वीरा॑ वी॒रैः सु॒पोषाः॑ पोषैः॑ ॥ ५३ ॥

परुच्छेप ऋषिः । (१) इन्द्रापर्वतौ (२,४) गृहपतयो वा देवताः (१) आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः (२) आसुर्युष्णिक् । ऋषभः । (३) प्राजापत्या बृहती । मध्यमः (४) साम्नी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सूर्य के समान तेजस्वी और पर्वत के समान अभेद्य दो सेनापतियो ! आप दोनों आगे बढ़कर युद्ध करने वाले होकर, जो भी हम पर सेना से चढ़ाई करे उस २ को मार भगाओ । उस २ को खाँडा आदि अस्त्र-शस्त्रों से मारो। यदि वह शत्रुदल हमारे सैन्य तक पहुंच जाय तो उसको दूर भगा देने के लिये पराक्रम करो । हे शूरवीर सेनापते!

तू शत्रुदल के फाड़ देने में समर्थ होकर हमारे चारों तरफ आये हुए शत्रुओं को सब ओर से एकदम काट फाट डाल। भूमि अन्तरिक्ष और आकाश तीनों लोकों में हम अपनी उत्तम सन्तानों से उत्तम प्रजावान् बनें। वीरों से उत्तम समृद्धिशाली हों। शत० ४। ६। ९। १४-२५॥

परमेष्ठ्यभिधीतः प्रजापतिर्वाचि व्याहृतायामन्धो अच्छेतः।
सविता सन्यां विश्वकर्मा दीक्षायां पूषा सोमक्रयण्याम् ॥ ५४ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। परमेष्ठी प्रजापतिर्देवता। निचृद् ब्राह्मयुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—राजा के कर्त्तव्यों के भिन्न २ रूप। साक्षात् संकल्प किया जाय तो वह राजा सर्वोच्च स्थान पर विराजने वाला है। आज्ञा की वाणी करने में वह 'प्रजा' का स्वामी है। साक्षात् प्राप्त करने पर 'अन्धः' अन्न के समान प्राणप्रद है। प्रजाओं को ऐश्वर्य बांटने के कार्य में राजा सूर्य के समान सबको समान रूप से प्रदान करने वाला है। व्रत धारण करने में समस्त कर्मों को कराने वाला विश्वकर्मा राजा को शासन कार्य के लिये समस्त पृथिवी को समक्ष रखकर प्राप्त करने के अवसर पर वह साक्षात् 'पूषा' सबका पोषक है।

इन्द्रश्च मरुतश्च क्रयायोपोत्थितोऽसुरः पण्यमानो मित्रः क्रीतो विष्णुः शिपिविष्ट ऊरावासन्नो विष्णुर्नरन्धिषः ॥ ५५ ॥

भा० —"क्रय" अर्थात् द्रव्य लेकर उसके बदले में शत्रु के विरुद्ध उठकर चढ़ते समय राजशक्ति का स्वरूप सेनापति और प्राणघातक सेना के वीरजन हैं। नाना भोग्य पदार्थों के एवज में खरीद कर उसको राजपद देते समय वह राजा महान् व्यापारी है। जब स्वीकार कर लिया जा चुकता है तब वह प्रजा का 'मित्र' अर्थात् स्नेही है। विशाल राज्य के आसन पर स्थित साक्षात् व्यापक तेज से युक्त सूर्य के समान है। समस्त मनुष्यों को आज्ञा देने हारा और सबको हिंसा से बचाने वाला होकर वह 'विष्णु' है।

प्रोह्यमा॑णः सोम॒ आग॑तो॒ वरु॑ण आस॒न्द्यामास॑न्नो॒ऽग्निराग्नी॑ध्र॒
इन्द्रो॑ हवि॒र्धानेऽथर्वो॑पावह्रि॒यमा॑णः ॥ ५६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवाः गृहस्थाः देवताः । बृहती मध्यमः ॥

भा०—अति आदर से सवारी आदि द्वारा लाया जाकर जब राजा प्राप्त होता है तब वह 'सोम' सर्वोपरि शासक और सबका आज्ञापक है। राज्यसिंहासन पर स्थिर हुआ वह राजा सबसे वरण करने योग्य है। अग्नि के समान सन्तापकारी पद पर विराजमान वह अन्तरिक्ष में विद्युत् के समान, वा कुण्ड में अग्निवत् होने से 'अग्नि' है। अन्न द्वारा राष्ट्र के पालक पद पर विराजता हुआ राजा 'इन्द्र' है। प्रजा की रक्षा के लिये संनिकट स्थापित हुआ वह अहिंसक, प्रजापालक 'अथर्वा' है।

विश्वे॑ दे॒वा अ॒ꣳशुषु॒ न्यु॑प्तो॒ विष्णु॑राप्रीत॒पा आ॑प्या॒य्यमा॑नो य॒मः
सू॒यमा॑नो॒ विष्णुः॑ सम्भ्रि॒यमा॑णो वा॒युः पू॒यमा॑नः शु॒क्रः पू॒तः शु॒क्रः
क्षी॑र॒श्रीर्म॒न्थी स॑क्तु॒श्रीः ॥ ५७ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । निचृद् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—राज्यशासन के विभागों में वही राजपद पृथक् २ बांट किया जाकर 'विश्वदेव' अर्थात् समस्त राजपदाधिकारी रूप हो जाता है। सब प्रकार से सन्तुष्ट प्रजाजनों का पालन करने हारा और स्वयं भी प्रजाओं द्वारा शक्ति में अति हृष्ट-पुष्ट होकर राजा 'विष्णु' सर्व राष्ट्र में व्यापक शक्तिवाला होता है। राजसूय द्वारा राज्याभिषेक किया जाकर राजा 'यम' अर्थात् सर्वनियन्ता होता है। प्रजा द्वारा पालित-पोषित राजा व्यापक शक्ति से युक्त 'विष्णु' हो जाता है। पवित्र आचरणों से युक्त राजा वायु के समान प्रजा को भी पवित्राचारी बनाने में समर्थ होता है। पवित्र आचारवान् होकर वह 'शुक्र' अर्थात् कान्तिमान् होता है। कान्तिमान् राजा दुग्ध के समान कान्तिवाला होता है। और प्राप्त हुए

अन्नादि पदार्थों से मित्रवर्ग का आश्रय लेकर राजा 'मन्थी' शत्रुओं का का मथन करने हारा होता है।

विश्वे॑ दे॒वाश्च॑म॒सेषून्नी॑तोऽसु॒र्होमा॒याोद्य॑तो रु॒द्रो हू॒यमा॑नो वातो॒ऽभ्यावृ॑त्तो नृ॒चक्षाः प्रति॑ख्यातो भ॒क्षो भ॒क्ष्यमा॑णः पि॒तरो॑ नाराश॒ꣳसाः ॥ ५८ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—भिन्न २ पात्रों में अर्थात् राज्य के भिन्न २ अंगों में बंटा हुआ राजपद 'विश्वे देव' अर्थात् समस्त विद्वान् राज्यपदाधिकारियों के रूप से रहता है। आहुति करने अर्थात् युद्ध करने के लिये उद्यत राजा 'असु' देहधारी प्राण वा शस्त्र प्रक्षेप्ता धनुर्धर के रूप में होता है। जब वह युद्ध में आहुत होजाता है तब वह दुष्टों को रुलाने में समर्थ 'रुद्र' रूप हो जाता है। जब साक्षात् सामने वेग से आक्रमण कर रहा होता है वह 'वात' अर्थात् साक्षात् 'आँधी' होता है। प्रत्येक पुरुष को देखने वाला होने से वह मनुष्यों का निरीक्षक कहाता है। जब समस्त प्रजाजन उसके राजत्व का सुख भोगते हैं तब वह 'भक्ष' अर्थात् भोग्य योग्य कहाता है। जब प्रजा के लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और वह जब नाना प्रकार से प्रजा का पालन करता है, तब राजा पितृगणों या या प्रजापालकों के रूप में प्रकट होता है।

[1]स॒न्नः सिन्धु॑रवभृ॒थायो॒द्य॑तः समु॒द्रोऽभ्यवह्रि॒यमा॑णः सलि॒लः प्रप्लु॑तो [2]य॒योरोज॑सा स्कभि॒ता रजा॑ꣳसि वी॒र्ये॒भिर्वी॒रत॑मा शवि॑ष्ठा । या पत्ये॑ते॒ अप्र॑तीता॒ सहो॑भि॒र्विष्णू॑ अग॒न्वरु॑णा पूर्वहू॑तौ ॥ ५६ ॥

ऋषिदेवते च पूर्वोक्ते । विष्णुर्वरुणश्च देवते । (१) विराट् प्राजापत्या (२) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । अथवा (१) विराडार्षी । (२) भुरिग् बाह्म्युष्णिग् । ऋषभः ॥

भा०—राष्ट्र के पालन करने के लिये उत्कृष्ट नियमकारी राजा अपने राज्यासन पर अभिषिक्त होकर विराजा हुआ साक्षात् महान् समुद्र के समान अति गम्भीर और अगाध गुणरत्नों से युक्त होने से 'सिन्धु' रूप है। जब प्रजाजनों द्वारा राजपद पर बैठा दिया जाता है। और प्रजा उसका उपभोग करती है तब वह समस्त पदार्थों का उत्तम रीति से प्रदान करने वाला, अनन्त रत्नों का आकर होने से 'समुद्र' तुल्य होता है। वह राजा प्रजाओं में समान भाव से व्यापक होके पानी के समान फैल जाता है। अतः 'सलिलः' अर्थात् मानो दयाभाव से पानी २ हो जाता है। जिन दोनों के पराक्रम से लोक स्थिर हैं और जो दोनों अपने २ सामर्थ्यों से सबसे अधिक वीर और सबसे अधिक बलशाली हैं, जो दोनों सर्व साधारण द्वारा न पहचाने गये हैं कि उन में कितना सामर्थ्य है. ऐसे अपने बलों, सेनाओं सहित जो दोनों शत्रु पर जा टूटते हैं, वे दोनों की व्यापक सामर्थ्यवान् और सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य एवं शत्रुओं के वारण में समर्थ, मुख्यरूप से विद्वानों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं। उनको समस्त प्रजाजन प्राप्त होते हैं।

देवान्दिवमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु मनुष्यानन्तरिक्षमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु पितॄन् पृथिवीमगन्यज्ञस्ततो मा द्रविणमष्टु यं कं च लोकमगन्यज्ञस्ततो मे भद्रमभूत् ॥ ६० ॥

विश्वेदेवा देवताः। स्वराड ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो राष्ट्रयज्ञ विद्वानों को और विद्या आदि के प्रकाश को प्राप्त होता है उससे मुझको ऐश्वर्य प्राप्त हो। जो राष्ट्रयज्ञ मनुष्यों को और अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है उससे मुझे ऐश्वर्य प्राप्त हो। और जो राष्ट्रयज्ञ राष्ट्र के पालकों और पृथिवी को प्राप्त है उससे मुझे ऐश्वर्य प्राप्त हो। जो राष्ट्रयज्ञ जिस किसी को भी प्राप्त हो उससे मुझे कल्याण और सुख हो।

चतुस्त्रिᳬंशत्तन्तवो ये वितत्निरे य इमं यज्ञᳬं स्वधया ददन्ते ।
तेषां छिन्नᳬं सम्वेतद्दधामि स्वाहा घर्मो अप्येतु देवान् ॥ ६१ ॥

यज्ञो देवता । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः । स्वराट् पंक्तिः । पंचमो, विराड् त्रिष्टुब् धैवतो वा ।

भा०—जो इस राष्ट्रयज्ञ को विस्तृत करते हैं वे ३४ चौंतीस हैं। यज्ञ का विस्तार करने से वे तन्तु हैं। वस्त्र को बनाने वाले जैसे तन्तु होते हैं उसी प्रकार राज्य आदि के घटक अवयव भी 'तन्तु' ही कहाते हैं। जो वे इस राष्ट्रयज्ञ को अपने धारणसामर्थ्य और अन्न आदि पोषण सामर्थ्य से धारण करते हैं उनका जो पृथक् २ कर्त्तव्य कर्म और अंश है उसको मैं इस प्रकार एक संगठित रूप से सत्यवाणी द्वारा एकत्र जोड़ता हूँ। वह प्रदीप्त राष्ट्र विद्वान् शासकों को प्राप्त हो। ५४ से ५९ मन्त्रों में कहे सोम राजा के अधीन ३४ पदाधिकारी, जो कि सोमराजा के ही अंश हैं वे ३४ हैं।

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान । स यज्ञ धुक्ष्व महि मे प्रजायाᳬं रायस्पोषं विश्वमायुरशीय स्वाहा ॥६२॥

यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्रयज्ञ का उत्तम फल नाना प्रकार से विस्तृत है। वह आठों दिशा में आठ प्रकार का होकर सूर्य के प्रकाश के समान फैल जाता है। हे राष्ट्रयज्ञ! तू मेरी प्रजा में बड़े भारी धनैश्वर्य की समृद्धि को प्रदान कर। और मैं राजा उत्तम आचरण और उत्तम व्यवस्था द्वारा सम्पूर्ण आयु का भोग करूं।

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥ ६३ ॥

नैध्रुविः कश्यप ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे प्रेरक राजन्! तू वीर पुरुषों से युक्त, अश्व और अश्वारोहियों से युक्त सुवर्ण रत्नादि से समृद्ध धनैश्वर्य को प्राप्त करा। हमें

गौ आदि पशु सम्पत्ति से समृद्ध ऐश्वर्य को उत्तम यश कीर्ति और उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा प्राप्त करा।

इत्यष्टमोध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्येऽष्टमोऽध्यायः॥

नवमोऽध्यायः।

१–३४ इन्द्रो बृहस्पतिश्च ऋषी।

॥ ओ३म् ॥ देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑न्नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु॒ स्वाहा॑॥ १॥

सविता देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे सबके प्रेरक तथा दानशील चक्रवर्तिन्! तू प्रजापालन आदि राज्य यज्ञ को अच्छी प्रकार चला और सुसंगत राज्य के पालन करने वाले अधिकारी और प्रजावर्ग को भी उत्तम रीति से चला। क्षात्र आदि गुणों से सम्पन्न, भूमिपति, सबकी मतियों को पवित्र रखने वाला, राजा और वेदवाणी का पालक विद्वान् आचार्य, हमारे विचार को सदा शुद्ध बनावे और वह उत्तम रीति से वेदानुकूल हमारे अन्न आदि उपभोग योग्य ऐश्वर्य का उपभोग करे। शत० ५।१।१।१६॥

[1]ध्रु॒व॒सदं॑ त्वा नृ॒षदं॑ मनः॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम्। [2]अ॒प्सु॒षदं॑ त्वा॒ घृत॒सदं॑ व्योम॒सद॑मुपया॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्टं॑ गृह्णाम्ये॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा॒ जुष्ट॑तमम्। पृथि॒वी॒सदं॑ त्वाऽन्तरिक्ष॒सदं॑ दिवि॒-

सदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवता । (१) आर्षी पांक्तिः । पंचमः । (२) विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे इन्द्र पद वाले राजन्! तू राज्यव्यवस्था में नियुक्त राज पुरुषों, प्रजा के उत्तम पुरुषों और राज्य के साधनों और उपसाधनों से स्वीकृत है । तुझको इन्द्रपद के योग्य जानकर इस पद के लिये नियुक्त करता हूँ । यह तेरा आश्रय स्थान और पद है । सबसे योग्यतम, स्थिर रूप से विराजने वाले, समस्त नेता पुरुषों में प्रतिष्ठित, सब प्रजाओं के मन में और मनन योग्य विज्ञान में प्रतिष्ठित तुझको स्थापित करता हूँ । इसी प्रकार समुद्रों में और्वानल या विद्युत् के समान तेजस्वी घृत व जल में अग्नि के समान तेजस्वीरूप से विराजमान, आकाश में सूर्य के समान प्रतापी होकर विराजमान तुझको स्थापित करता हूँ । इसी प्रकार पृथिवी पर पर्वत के समान स्थिररूप से विराजने हारे, अन्तरिक्ष में वायु के समान व्यापक, द्यौलोक या नक्षत्रगणों में सूर्य या चन्द्र के समान विराजमान, विद्वानों में प्रतिष्ठित, दुःखरहित धर्म या परमेश्वर में दत्त-चित्त, तुझको मैं राज्यपद पर प्रतिष्ठित करता हूँ । उपयामगृहीतः असि० इत्यादि पूर्ववत् । शत० ५ । १ । २ । १ । ६ ॥

अपाथं रसमुद्वयसथं सूर्ये सन्तथं समाहितम् । अपाथं रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवता । निचृद् अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—हे आप्त प्रजाजनो! आप्त प्रजारूप आप लोगों के मध्य में उत्पन्न जीवन वाले, सर्व प्रेरक राजा के आश्रय पर विद्यमान, एवं उसके प्रति एकाग्र चित्त होकर रहने वाले वीर्यवान् राजबल को और प्रजाओं के बलवान् भाग में से भी जो उत्तम बल है, आप लोगों के उस सर्वो-

त्कृष्ट रस या बल को मैं राष्ट्र का पुरोहित प्राप्त करता हूँ। और उसे राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता हूँ। (उपयाम-गृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत् शत० ५।१।२।७॥

ग्रहा ऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम्। तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जᳪं समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥

लिंगोक्ता राजधर्मराजादयो देवताः। भुरिकृकृतिः। निषादः॥

भा०—हे अन्न और बल को ग्रहण करने और प्रदान करने वाले, तथा राज्य के भिन्न २ विभागों और अंगों को अपने अधीन पदाधिकारीरूप में स्वीकार करने वाले पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र को विविध प्रकार से देते रहते हो। प्रजाजनों के प्रिय उन आप लोगों के लिये मैं इच्छानुकूल अन्न और बलकारी रस का संग्रह करता हूँ। (उपाय-गृहीत० इत्यादि पूर्ववत्। हे राष्ट्र के स्त्री पुरुषो ! तुम भद्र कर्मों से सम्बद्ध हो मुझ राष्ट्रपति को भद्र कर्मों से युक्त करो। तुम पापकर्म से पृथक् हो मुझको पाप से दूर रखने में समर्थ हो। शत० ५।१।२८-१८॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि वाजसास्त्वयाऽयं वाजᳪं सेत्। वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत् ॥५॥

सविता देवता। भुरिग् अष्टिः। मध्यमः॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू ऐश्वर्यवान् राजा का शत्रु निवारक वज्र के समान है। तू संग्रामों का पूर्ण अनुभवी है। तेरे द्वारा यह राजा संग्राम को विजय करे। शीघ्र ही युद्ध के ऐश्वर्यजनक कार्य में बड़ी तथा अखण्डित भूमि माता को हम अपनी आज्ञा से अपने अधीन वश करें। जिसमें यह समस्त संसार स्थिर है, उसमें सब अधिकारियों का प्रेरक

या राजा हमारे लिये धर्म या धारण योग्य राष्ट्र-व्यवस्था को चलावे । शत० ५ । १ । ४ । ३ । ४ ॥

अप्स्वुन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः । देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥

अश्वो देवता । भुरिग्जगती । निषादः ॥

भा०—आप्त प्रजाओं के बीच में राष्ट्र के मृत्युरूप शत्रु के आक्रमण आदि को निवारण करने का बल है, और उन प्रजाओं में सब कष्टों के दूर करने का सामर्थ्य है । हे वीर्य वाले योद्धा लोगो ! आप लोग प्रजाओं के भीतर विद्यमान, प्रशंसनीय, उत्तम गुणवान् पुरुषों के आधार पर बलवान् क्षत्रिय होओ । हे दिव्य आप्त पुरुषो ! जो तुम्हारा उच्च सामर्थ्य और उत्तम क्रियाशक्ति है उससे यह राजा सर्वश्रेष्ठ पद और सामर्थ्य को धारण करने और युद्ध में जाने को समर्थ हो । उस पराक्रम से यह युद्ध का विजय करे ।

वातो वा मनो वा गन्धर्वाः सप्तविꣳशतिः ।
ते अग्रेऽश्वमयुञ्जँस्ते अस्मिन् जवमादधुः ॥ ७ ॥

सेनापतिर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ।

भा०—वायु जिस प्रकार वेग को धारण करता है, और जिस प्रकार सत्ताईस गन्धर्व = प्राण, इन्द्रियें और स्थूल सूक्ष्म भूत, सभी वेग धारण करते हैं उसी प्रकार वे विद्वान् पुरुष भी अपनी गाड़ियों और रथों के आगे वेगवान् अश्व, गतिसाधन यन्त्र या अश्व के समान कार्य निर्वाहक अग्रणी पुरुष को जोड़ते हैं, और वे विद्वान् पुरुष उसमें वेग और बल का आधान करते हैं । शत० ५ । १ । ४ । ८ ॥

वातरꣳहा भव वाजिन् युज्यमानऽइन्द्रस्येव दक्षिणः श्रियैधि । युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसऽआ ते त्वष्टा पत्सु जवं दधातु ॥ ८ ॥

प्रजापतिरश्वो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे ज्ञान और बल से युक्त पुरुष ! तू राष्ट्र के कार्य में नियुक्त होकर वायु के समान तीव्र वेगवान् हो । और तू बल के कार्यों में कुशल होकर राजा या सेनापति की शोभा से युक्त हो । समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी विद्वान् लोग और वैश्यगण तुझको उचित कार्य में नियुक्त में नियुक्त करें । और शिल्पी जिस प्रकार वेगयुक्त यन्त्र को रथ में लगाता है और उसके गमन करने वाले अंगों, चक्रों में वेग उत्पन्न करता है उसी प्रकार राजा तेरे चरणों में गमन करने के साधनों में वेग स्थापित करे । शत० ५ । १ । ४ । ९ ॥

जुवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तो अचरच्च वाते । तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ १० ॥

वीरो देवता । धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—हे विद्या, शास्त्र-ज्ञान और संग्राम-साधनों से युक्त सेनापते ! गूढ़ स्थान में जिस प्रकार वेगजनक यन्त्र रक्खा जाता है उसी प्रकार तेरा जो वेग तेरी बुद्धि में स्थित है, और जो वेग बाज पक्षी में और उसके समान आक्रमण करने वाले तुझ में विद्यमान है, और जो वेग प्रचण्ड वायु में व्याप्त है, हे वेग और बल से युक्त सेनापते ! उस वेग से और उस बल से तू संग्राम विजयी हो, और संग्राम में हम सबको संकट से तारने वाला हो । हे अश्वरोही पुरुषो ! आप लोग संग्राम का विजय करने हारे हैं । आप लोग जब संग्राम में तीव्र वेग से शत्रु पर धावा करने को हों, सब लोग बड़ी भारी सेना के सेनापति के सेवन योग्य आज्ञा-वचन को सदा सूंघते रहो, सदा प्राणवत् ग्रहण करते रहो, उसकी सदा खोज लगाते रहो । शत० ५ । १ । ४ । १० ।—१५ ॥

देवस्याहᳬं सवितुः सवे सत्यसंवसो बृहस्पतेरुत्तमं नाकᳬं रुहयेम्। देवस्याहᳬं सवितुः सवे सत्यसंवसऽइन्द्रस्योत्तमं नाकᳬं रुहेयम्। देवस्याहᳬं सवितुः सवे सत्यप्रसंवसो बृहस्पते-रुत्तमं नाकमरुहम्। देवस्याहᳬं सवितुः सवे सत्यप्रसवसऽइन्द्र-स्योत्तमं नाकमरुहम् ॥ १० ॥

इन्द्राबृहस्पती देवते। विराड उत्कृतिः। षड्जः ॥

भा०—मैं सर्वप्रेरक, सत्य मार्ग पर चलने की आज्ञा देने वाले, बड़ी भारी सेना के पालन के अनुशासन में रह कर सुखमय लोक को प्राप्त होऊं और यथार्थ में भी हुआ हूँ। और उसी प्रकार सर्वप्रेरक, सत्यमार्ग या उचित मार्ग में आज्ञा करने वाले ऐश्वर्यवान् राजा के शासन में रह कर सुखमय लोक को प्राप्त होऊं और यथार्थ में हुआ भी हूँ। शत० ५। १। ५। १-५ ॥

बृहस्पते वाजं जय बृहस्पतये वाचं वदत बृहस्पतिं वाजं जापयत। इन्द्र वाजं जयेन्द्राय वाचं वदतेन्द्रं वाजं जापयत ॥ ११ ॥

इन्द्राबृहस्पती देवते। जगती। निषादः ॥

भा०—हे महती सेना के स्वामिन्! तू संग्राम को विजय कर। उक्त बृहस्पति के लिये हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग उत्तम विज्ञानयुक्त वाणी का उपदेश करो। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग महान् राष्ट्र के पालक राजा के संग्राम को विजय कराने में सहायता दो। हे राजन्! तू संग्राम का विजय कर। हे विद्वान् पुरुषो! इन्द्रपद के योग्य ज्ञानवाणी का उपदेश करो। और राजा की युद्ध विजय में सहायता करो। शत० ५। १। ५। ८-९ ॥

एषा वः सा सत्या संवागभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपता-जीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुञ्चध्वम्। एषा वः सा

स॒त्या सं॑वाग॑भूय्येन्द्रं वाज॑मजीजपताजीजप॒तेन्द्रं॒ वाज॑ं वन॑स्प॒तयो॒ विमु॑च्यध्वम् ॥ १२ ॥

इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराड् अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों की वह सत्य तथा एक दूसरे से संगत वाणी होनी चाहिये जिससे आप लोग बड़ी भारी सेना के स्वामी को संग्राम पर विजय कराने में समर्थ होते हैं । आप लोग उस एक सम्मिलित सत्यवाणी से ही इस बृहस्पति को संग्राम पर विजय कराने में समर्थ हुए हैं । अतः हे प्रजा-समूहों एवं सैनिक समूह के पालक पुरुषो ! आप लोग अपने सैनिकों, अश्वों और दस्तों को बन्धन से छोड़ दो । यह तुम लोगों की सच्ची, परस्पर सम्मिलित सहमति है जिससे आप लोग ऐश्वर्यवान् राजा को संग्राम विजय कराते हो । आप लोग ही इन्द्र को संग्राम विजय कराते हो । हे सैनिक समूहों के अध्यक्ष लोगो ! आप विजय के अनन्तर अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को छोड़ दो, उनके बन्धन खोल दो, उनको आराम दो । शत० ५ । १ । ५ । १२ ॥

दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑र्वाज॒जितो॒ वाज॑ं जेषम् । वा॒जिनो॑ वाजजि॒तोऽध्व॑न स्कभ्नु॒वन्तो॒ योज॑ना॒ मिमा॑नाः काष्ठा॑ं गच्छत ॥ १३ ॥

सविता देवता । अतिजगती । निषादः ॥

भा०—मैं सेनानायक सर्वप्रेरक, आज्ञा के प्रदाता, सर्वप्रद, तथा संग्रामविजयी के संग्राम को विजय करूं । हे संग्राम का विजय करने हारे वीर सवार लोगो ! आप लोग शत्रु के बढ़ने के मार्गों को रोकते हुए, वेग से कोसों लांघते हुए परली सीमा तक पहुंच जाओ । शत० ५ । १ । ४ । १५-१७ ॥

ए॒ष स्य वा॒जी क्षि॑प॒णिं तु॑रण्यति ग्री॒वाया॑ं ब॒द्धो अ॑पिक॒क्ष

ऽश्रास्त्रनि । क्रतुं दधिक्रा अनु सछंसनिष्यदत्पथामङ्कछंस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

दधिक्रावा वामदेव्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—यह वह वीर सेनापति वेगवान् होकर शत्रुनाशक सेना को बड़े वेग से चलाता या बढ़ाता है। घुड़सवार को अपनी पीठ पर लेकर वेग से दौड़ने वाला अश्व गर्दन बगलों और मुख में भी बंधा हुआ सवार होकर अभिप्राय के अनुकूल निरन्तर दौड़ता हुआ, अपने उत्तम वेग से मार्गों के बीच में लगे समस्त मार्गद्योतक चिह्नों को या ऊंचे नीचे टेढ़े मेढ़े समस्त रास्तों को सुख से पार कर जाया करता है। शत० ५। १। ४। १८-१९ ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतो अंकसं परि दधिक्राव्णः सुहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

दधिक्रावा वामदेव्य ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—और भागते हुए और वेग से जाते हुए प्रबल वेग से अगले मार्ग को पहुंचने की अभिलाषा करते हुए पराक्रम के साथ बड़े वेग से भागते हुए, मार्ग की समस्त बाधाओं को लांघते हुए इस अश्व के ध्वज चामर आदि चिह्न उसके पीछे २ वेग से जाते हैं, जैसे कि वेग से जाते हुए तीर के पंख और वेग से झपटते हुए बाज पंख उसके पीछे ही वेग से जाते हैं। शत० ५। १। ५। २० ॥

शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः । जम्भयन्तोऽहिं वृकछं रक्षांसि सनेम्यस्मद् युयवन्नमीवाः ॥ १६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः बृहस्पतिर्देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—संग्रामों में वेगवान् घोड़े और घुड़सवार हमें कल्याणकारी हों। और वे युद्ध के विजय करने वाले विजेता लोगों के कामों में परि-

मित गति से जाने वाले, खूब सजे सजाये हों। ये सर्प के समान कुटिलता से भागने वाले शत्रु को और चोर या भेड़िये के समान पीछे से आक्रमण करने वाले, और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को और रोग के समान दुःखदायी शत्रुओं को सदा या शीघ्र ही हम से दूर करें। शत० ५। १। ५। २२॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः। सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनंꣳ समिथेषु जभ्रिरे॥ १७॥

नाभानेदिष्ट ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। जगती। निषादः॥

भा०—अश्वों के ऊपर चढ़ने हारे वीर लोग आज्ञाओं का श्रवण करने वाले हों वे सब ज्ञान और बल से युक्त, गये कदमों से चलने वाले होकर, मुझ राजा की आज्ञा को सुनें। वे सहस्रों को सुख देने वाले प्राप्त होने योग्य अन्नों को प्राप्त करना चाहते हैं। जो संग्रामों में बड़े अवसरों पर देश की आगे लिखे प्रकार से रक्षा करें। शत० ५। २। ५। २३।

वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः॥ १८॥

वसिष्ठ ऋषिः बृहस्पतिर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—हे बल वीर्य और अन्नादि वाले, एवं अश्व के समान वेगवान्, एवं अश्वों पर चढ़ने वाले वीर पुरुषो! आप लोग संग्राम २ में हमारी रक्षा किया करो। और हे कभी नष्ट न होने वाले लोगो! हे सत्य व्यवस्था के जानने वालो! इस मधुर अन्न का पान करो, और तृप्त होओ। और तृप्त होकर विद्वानों के चलने योग्य धार्मिक मार्गों से गमनागमन करो। शत० ५। १। ५। २४॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे। आ मा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात्।

वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सस्वाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजानाः ॥ १९ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद् धृतिः । निषादः ॥

भा०—मुझको ज्ञान बल और अन्न का ऐश्वर्य प्राप्त हो । नाना रूपों वाले ये दोनों आकाश और पृथिवी मुझे प्राप्त हों । मुझे पिता और माता दोनों प्राप्त हों । मुझे औषधियों का परम रस और वीर्य रोग निवारक दीर्घजीवन रूप से प्राप्त हो । हे संग्रामों का विजय करने हारे बलवान् अश्वारोही वीर पुरुषो ! आप लोग संग्राम को जाने हारे हैं । आप लोग सर्वथा शुद्ध पवित्र होकर बृहती सेना ले सेनाध्यक्ष के सेवन करने योग्य वचन को आदरपूर्वक सावधान होकर ग्रहण करो । शत० ५ । १ । ५ । २६, २७ ॥

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनꣳशिनाय स्वाहा विनꣳशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—बन्धु के समान राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं । उत्तम बन्धु के समान वर्तमान राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं । निज देश में उत्पन्न हुए राजा के लिए हम आत्मत्याग करते हैं । क्रियाशील राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं । समस्त प्रजाओं को बसाने हारे राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं । सूर्य जिस प्रकार दिन का स्वामी है उसी प्रकार काल-गणना द्वारा समस्त दिवस का पालक राजा भी 'अहःपति' है । उसके लिये हम आत्मत्याग करते हैं । अपनी परम्परा से प्राप्त संस्कृति पर मुग्ध होने वाले राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं । संस्कृति पर मुग्ध तथा शत्रुओं को विनष्ट करने वाले राजा के प्रति हम आत्मत्याग करते हैं । शत्रु विनाशी तथा अन्त्यजों

को भी प्राप्त होने वाले राजा के प्रति हम आत्मत्याग करते हैं। सबके अन्त में होने वाले, सबसे परम, सर्वोच्च, सब भुवनों, पदों में व्यापक उनके अधिपति के लिये हम आत्मत्याग करते हैं। राष्ट्र के पालक राजा सब अध्यक्षों के ऊपर स्वामी रूप से विद्यमान राजा के लिये हम आत्मत्याग करते हैं। शत० ५।२।१।२॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। प्रजापतेः प्रजा अभूम स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम ॥ २१ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। यज्ञः प्रजापतिर्देवता। अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—यज्ञ और राज्य की सुव्यवस्था से सब प्रजाओं का दीर्घ-जीवन स्वस्थ बना रहे, प्राण पुष्ट हों, चक्षु बलवान् हो, श्रवण शक्ति समर्थ बनी रहे, ईश्वरोपासना और धर्मकार्य बने रहें। हम सब प्रजा के पालक राजा और परमेश्वर की प्रजाएं बनी रहें। हम लोग विजयी, ज्ञानवान् होकर परम सुखमय मोक्ष और सुखप्रद राज्य को प्राप्त हों। हम परमेश्वर के राज्य में मुक्त हो जायं और उत्तम प्रजापालक राजा के राज्य में पूर्ण सौ वर्ष और उससे भी अधिक आयु वाले हों। शत० ५।२।१ ३।१४॥

एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति। शत० ९।५।१।१०॥ या एव शत वर्षाणि, यो वा भूयांसि जीवति स हैवैतदमृतमाप्नोति। शत० २०।२।६।८॥

अस्मे वो अस्त्विन्द्रियमस्मे नृम्णमुत क्रतुरस्मे वर्चाᳬसि सन्तु वः। नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या इयं ते राडयन्तासि यमनो ध्रुवो सि धरुणः। कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

दिशो देवताः। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे दिशाओं के निवासी प्रजाजनो तथा रक्षक पुरुषो! तुम्हारा समस्त ऐश्वर्य और बल हम राज्यकर्त्ताओं के लिये उपयोगी हो। आप लोगों का धन, बल और ज्ञान हमारी रक्षा और वृद्धि के लिये हो। आप लोगों के तेज हमारे लिये उपयोगी हों। माता पृथिवी जो उत्पन्न करती और अन्न देती और राजा को भी उत्पन्न करती और पोषती है, उसका हम आदर करते हैं। हे राजन्! यह पृथिवी ही तेरी राजशक्ति है। तू नियन्ता है। तू सब प्रकार से नियमन करने वाला, नक्षत्र के समान स्थिर, राष्ट्र को धारण करने हारा है। हे राजन्! तुझको खेती करने के लिये, तुझको जगत् के कल्याण के लिये, तुझको राष्ट्र की ऐश्वर्य वृद्धि के लिये तुझको राष्ट्र की पशु-समृद्धि के लिये नियुक्त किया जाता है। शत० ५। २। १। १५–२५॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु। ता अस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥ २३॥

प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—संग्राम और वीर्य का ऐश्वर्य ही, सबसे प्रथम, ओषधियों में जिस प्रकार सोम अधिक वीर्यवान् है उसी प्रकार प्रजाओं में सर्वोपरि राजमान सम्राट् को उत्पन्न करता है। वे ओषधियां हमारे लिये अन्न आदि मधुर पदार्थों से सम्पन्न हों और वे प्रजाएं भी अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त हों। हम अमात्य आदि राष्ट्र के पालक पुरुष राष्ट्र के सब कार्यों में अग्रसर होकर उत्तम शासन सहित सदा जागते रहें, सदा सावधान होकर शासन करें। शत० ५। २। २। २। ५।

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिं सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा॥ २४॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—अन्न, वीर्य और सांग्रामिक बल का उत्पादक यह सम्राट् इस और प्रकाशमयी राजसभा को, और समस्त भुवनों, देशों, लोकों को, धारण करता है। वह सब कुछ जानने हारा कर या किसी की देन को न देना चाहने वाले से भी दिलवाता है। वह हमें सब वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को उत्तम धर्मानुकूल व्यवस्था से प्रदान करे।

वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒व आ ब॑भूवे॒मा च॒ विश्वा॒ भुव॑नानि स॒र्वतः॑। सनेमि॒ राजा॒ परि॑याति वि॒द्वान् प्र॒जां पुष्टि॑ व॒र्धय॑मानो अ॒स्मे स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप। धैवतः ॥

भा०—जो पुरुष ज्ञान, बल और ऐश्वर्य को बहुत शीघ्र प्राप्त करने और साधने में समर्थ होता, और इन समस्त लोकों, उनमें उत्पन्न प्राणियों और अधीन शासकपदों के भी सब प्रकार से उनके ऊपर शासक रूप से विद्यमान है, वह विद्वान् राजा हमारे कल्याण के लिये उत्तम व्यवस्था, नीति और कीर्ति से प्रजा और धन, अन्न और पशुओं की समृद्धि को बढ़ाता हुआ, अपनी सदातन स्थिर नीति से सबसे ऊपर के पद को प्राप्त हो जाता है। शत० ५। २। २। ७॥

सोम॒ꣳ राजा॑न॒मव॑से॒ऽग्निम॒न्वार॑भामहे। आ॒दि॒त्यान्विष्णु॒ꣳ सूर्य्यं॑ ब्र॒ह्माणं॑ च॒ बृह॒स्पति॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ २६ ॥

तापस ऋषिः। सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यब्रह्मबृहस्पतयो विश्वेदेवाश्च देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हम लोग रक्षा के लिये सौम्य स्वभाव और अग्नि के समान प्रकाशवान् विद्वान् पुरुष को राजा बड़े सोच-विचार के पश्चात् बनावें। और उत्तम विद्या और आचार के अनुसार ही ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी सर्व विद्याओं और राज्यव्यवस्थाओं में विज्ञ, सूर्य के समान सबको समान-रूप से प्रकाश देने वाले, और वेदों के विद्वान्, और वेदवाणी के पालक

पुरुष को भी हम अपनी रक्षा के लिये नियुक्त करें। शत० ५। २। २। ८॥

अर्य॒मणं॒ बृह॒स्पति॒मिन्द्रं॒ दाना॑य चोदय। वाचं॒ विष्णु॑ꣳ सर॑स्वती॑ꣳ सवि॒तारं॑ च वा॒जिन॒ꣳ स्वाहा॑॥ २७॥

तापस ऋषिः। अर्यमबृहस्पतीन्द्र-वायु-विष्णु-सरस्वतया मन्त्रोक्ता देवताः। स्वराड् अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे राजन्! तू पक्षपातरहित न्यायकारी, वेदादि समस्त विद्याओं के विद्वान्, तथा परम ऐश्वर्यवान् इन पुरुषों को दान करने के लिये प्रेरणा कर। और वेदवाणी को, व्यापक शक्ति वाले या सकल विद्यापारंगत पुरुष को, और बहुत से विद्याज्ञानों को धारण करने वाली स्त्रियों को सबके प्रेरक आचार्य को, और ज्ञानी, बलशाली, ऐश्वर्यवान् पुरुष को भी उत्तम सदाचारी नीति से चला। शत० ५। २। २। ९॥

अग्ने॒ अच्छा॑ वदे॒ह न॒ः प्रति॑ नः सु॒मना॑ भव। प्र नो॑ यच्छ सहस्र॒जित्व॑ꣳ हि धन॒दा असि॒ स्वाहा॑॥ २८॥

तापस ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे अग्रणी राजन्! तू इस राष्ट्र में हमें उत्तम उपदेश कर। हमारे प्रति उत्तम चित्त वाला होकर रह। तू हजारों युद्धों का विजय करने हारा है। तू हमें ऐश्वर्य प्रदान कर। तू निश्चय से उत्तम नीति, रीति और कीर्ति से ही हमें धनैश्वर्य का प्रदाता है। शत० ५। २। २। १०॥

प्र नो॑ यच्छत्वर्य॒मा प्र पू॒षा प्र बृह॒स्पति॑ः।
प्र वाग्दे॒वी द॑दातु न॒ः स्वाहा॑॥ २९॥

तापस ऋषिः। अर्यमादयो मन्त्रोक्ताः। भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—न्यायाधीश, राष्ट्र का पोषक अर्थात् सबको वेतनादि देने हारा वेद का विद्वान्, ये सब हमें न्याय आदि प्रदान करें। विद्या से युक्त

माता हमें उत्तम रीति से ज्ञान और पुष्टि प्रदान करे। शत० ५। २। २। ११॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

तापस ऋषिः। सुन्वन् सम्राड् देवता। जगती। निषादः॥

भा०—सर्वोत्पादक परमेश्वर के उत्पन्न किये संसार में, अथवा सर्वप्रेरक पुरोहित विद्वान् के विशेष आज्ञा या नियन्त्रण में, मैं स्त्री पुरुषों की धारण और आकर्षणशील बाहुओं से और पोषक वर्ग के हाथों से, और परम विदुषी परिषद्, और महान् वेदवाणी के पालन में समर्थ वाणी का नियमन या अभ्यास करने वाले के उत्तम नियन्त्रण में, तुझको स्थापित करता हूँ। और हे अमुक नाम वाले पुरुष! इस महान् साम्राज्य के पदाधिकारी सहित तुझको अभिषिक्त करता हूँ। शत० ५। २। २। १२॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रीँल्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥ ३१ ॥

तापस ऋषिः। अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः देवताः। अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—[१] परमेश्वर एकमात्र वायु की अक्षय शक्ति से जिस प्रकार प्राण को अपने वश करता है, उसी प्रकार मैं राजा अग्नि के समान शत्रुओं का संतापकारी और अग्रणी होकर अपने न क्षीण होने वाले बल से प्रजा के जीवनाधार अन्न को अपने वश करूं।

[२] दिन और रात्रि दोनों अपने दो प्रकार के अक्षय बल दोपाये मनुष्यों को अपने वश करते हैं उसी प्रकार मैं राजा दिन रात्रि के समान होकर दो पाये मनुष्यों को अपने वश करूं।

[३] व्यापक प्रकाशवाला सूर्य जिस जिस प्रकार अपने आदित्य, विद्युत् और अग्नि इन तीन प्रकार के अक्षय बलों से तीनों लोकों को अपने वश कर रहा है उसी प्रकार मैं भी प्रज्ञा, उत्साह और बल इन तीन अक्षय सामर्थ्यों से उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों प्रकार के लोगों को वश करूं।

[४] परमेश्वर जिस प्रकार अ, उ, म् और अमात्र इन चार अक्षरों से चार चरणों वाले एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय इन चार स्वरूप वाले साक्षात् द्रष्टा जीवात्माओं को अपने वश करता है उसी प्रकार मैं सबका प्रेरक होकर अपनी चतुरङ्ग सेना या साम, दाम, भेद और दण्ड इन चार उपायों द्वारा उन पशुओं के समान प्राणोपजीवी प्रजा पुरुषों को विजय करूं। शत० ५ । २ । २ । १७ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषं मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषं बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

तापस ऋषिः । पूषादयो मन्त्रोक्ता देवताः । कृतिः । निषादः ।

[५] सर्वपोषक परमेश्वर अविनाशी पांच भूतरूप पांच सामर्थ्यों से विस्तृत दिशाओं को वश करता है, उसी प्रकार मैं राजा राष्ट्र की प्रजा का पोषक होकर अपने पांचों अक्षय भोग्य सामर्थ्यों से पांचों दिशाओं को वश करूं।

[६] सूर्य या सर्वोत्पादक परमेश्वर अपने ६ प्रकार के अक्षय बलों से छहों ऋतुओं को अपने वश करता है उसी प्रकार मैं सबका आज्ञापक होकर अपने छः प्रकार के सामर्थ्यों द्वारा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव छः गुणों पर विचार करने वाले महामात्यों या छहों गुणों पर वश करूं।

[७] प्राणगण जिस प्रकार सात अक्षय बलों द्वारा सातों ग्राम्य पशुओं को अपने वश करते हैं उसी प्रकार मैं भी सातों प्रकार के अन्नों द्वारा सातों ग्राम के पशु, गौ आदि को- एवं ग्राम अर्थात् जन-समूह में विद्यमान शीर्षण्य सातों प्राणों को वश करूं।

[८] महान् ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर अपने आठ अक्षय सामर्थ्यों से आठ अक्षरों वाली गायत्री के समान अष्टधा प्रकृति से से बनी सृष्टि को अपने वश करता है उसी प्रकार मैं राष्ट्रपति आठ अपने सामर्थ्यों से स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल और भूमि, अथवा आठ महामात्यों से सब राष्ट्र के प्राणों की पालिका पृथिवी को अपने वश करूं।

मित्रा नवाक्षरेण त्रिवृतꣳ स्तोममुदजयत् तमुज्जेषं वरुणो दशाक्षरेण विराजमुदजयत्तामुज्जेषमिन्द्र एकादशाक्षरेण त्रिष्टुभमुदजयत्तामुज्जेषं विश्वे देवा द्वादशाक्षरेण जगतीमुदजयँस्तामुज्जेषम् ॥ ३३ ॥

तापस ऋषिः । मित्रादयो मन्त्रोक्ताः । कृतिः । निषादः ॥

[९] स्नेहपात्र यह मुख्य प्राण अपने नव-द्वारों में स्थित अक्षय सामर्थ्यों से त्रिवृत् स्तोम अर्थात् नव द्वारों में विद्यमान नवों प्राणों को अपने वश करता है, उसी प्रकार मैं समस्त प्रजा का मित्र राजा अपने नवों प्रकार के अक्षय कोशों से मौल, भृत्य और मित्र तीनों बल को वश करूं॥

[१०] सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर जिस प्रकार विराट् प्रकृति को पांच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों द्वारा विभक्त करके उसे अपने वश में रखता है, उसी प्रकार मैं विजिगीषु, प्रजा द्वारा वरा जाकर, दशावरा परिषद् के सदस्यों द्वारा विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशमान् पृथिवी को वश करूं।

[११] ऐश्वर्यवान् परमेश्वर जिस प्रकार अपने ११ रुद्र रूप

सामर्थ्यों से त्रिलोक को वश करता है, उसी प्रकार मैं ऐश्वर्यवान् होकर, दश सदस्य और ११ वें सभापति द्वारा अपने मित्र, शत्रु, उदासीन इन तीन प्रकार के राजन्य-बलों को वश करूं।

[१२] जिस प्रकार किरणगण १२ मासों से पृथिवी को अपने वश करते हैं, उसी प्रकार मैं समस्त राजपुरुषों पर अधिकार स्वरूप होकर ११ प्रबल सहायकों द्वारा उस पृथिवी के ऊपर बसे वैश्यों की व्यवहार नीति को पृथिवी को वश करूं।

[1] वस॑वस्त्र॒योद॑शाक्षरेण त्रयोद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षम्। रु॒द्राश्च॒तुर्द॑शाक्षरेण चतुर्द॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑षम्। [2] आ॒दि॒त्या पञ्च॑दशाक्षरेण पञ्चद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जयँ॒स्तमुज्जे॑ष॒मदि॑ति॒ः षोड॑शाक्षरेण षोड॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त्तमुज्जे॑षम् प्र॒जाप॑तिः स॒प्तद॑शाक्षरेण स॒प्तद॒शꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

तापस ऋषिः। वस्वादयो मन्त्रोक्ता देवताः। (१) निचृज्जगती। निषादः। (२) निचृद् धृतिः। ऋषभः॥

भा०—[१३] गृह बसाने योग्य २४ वर्ष का ब्रह्मचारी, नव बाह्यद्वार और चार अन्तःकरणों में स्थित १३ अक्षय वीर्यों से जिस प्रकार इन १३ हों के समूह रूप काम पर वश करते हैं, उसी प्रकार मैं भी राजा, १३ प्रधान पुरुषों के बल से उन १३ विभागों से युक्त राष्ट्र को वश करूं।

[१४] प्राणों के अभ्यासी १६ वर्ष के नैष्ठिक ब्रह्मचारी जिस प्रकार दश बाह्येन्द्रिय और ४ भीतरी अन्तःकरणों को वश करके १४ हों के समूहित बलों को वश करते हैं, उसी प्रकार मैं शत्रुओं को रुलाने में समर्थ होकर १४ अध्यक्षों से युक्त राष्ट्र को वश करूं।

[१५] आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपालक विद्वान् पुरुष जिस प्रकार मेरुदण्ड के चौदह मोहरों और उनमें व्यापक

१५ वें वीर्य को सुरक्षित रखकर १५ के समूह इस मेरुदण्ड को वश करते, उसी प्रकार मैं आदित्य के समान तेजस्वी होकर १५ राष्ट्र के विभागाध्यक्षों के बल से १५ विभागों से युक्त राष्ट्र को वश करूं।

[१६] अखण्ड ब्रह्मचारिणी जिस प्रकार १६ वर्ष के अखण्ड तप से १६ वर्ष-समूह पर विजय प्राप्त करती है, और जिस प्रकार अखण्ड ब्रह्मशक्ति १६ कला-समूह पर वश करती है, उसी प्रकार मैं अखण्ड शासन से युक्त होकर १६ सदस्यों द्वारा उनसे चलाये गये राज्य-कार्य को वश करूं।

[१७] प्रजा का पालक परमेश्वर १६ कलाओं और १७ वीं ब्रह्म-कला के अक्षत बल में युक्त होकर १७ हों शक्तियों के समूह को वश करता है, उसी प्रकार मैं प्रजा का स्वामी राजा होकर १६ अमात्य एवं १७ वीं अपनी मति सहित सबके अखण्ड-बल से उस सब पर वश करूं।

एष ते॑ निर्ऋते भा॒गस्तं जु॑षस्व॒ स्वाहा॒ऽग्निने॑त्रेभ्यो दे॒वेभ्य॑ पुरः॒सद्भ्य॒ः स्वाहा॑ य॒मने॑त्रेभ्यो दे॒वेभ्यो॑ दक्षिणा॒सद्भ्य॒ः स्वाहा॑ वि॒श्वदे॑वनेत्रेभ्यो दे॒वेभ्य॑ः पश्चा॒त्सद्भ्य॒ः स्वाहा॑ मि॒त्रावरु॑णनेत्रेभ्यो वा म॒रुन्ने॑त्रेभ्यो वा दे॒वेभ्य॑ उत्तरा॒सद्भ्य॒ः स्वाहा॒ सोम॑नेत्रेभ्यो दे॒वेभ्य॑ उपरि॒सद्भ्यो॒ दुव॑स्वद्भ्य॒ः स्वाहा॑ ॥ ३५ ॥

वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । निचृदुत्कृतिः षड्जः ॥

भा०—हे पृथिवी ! यह तेरा विभाग है, उसको तू प्रेम से स्वीकार कर। और इस सत्य व्यवस्था का पालन कर। राजसभा में आगे विराजनेवाले, अग्नि के समान नायक पुरुष को अपना नेता स्वीकार करने वाले, युद्ध विजयी वीर पुरुषों के लिये धर्मानुकूल उत्तम अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त हो दक्षिण की ओर विराजने वाले, दुष्टों के नियन्ता यम को अपना नेता स्वीकार करने वाले, युद्ध-विजयी पुरुषों के लिये उत्तम

अन्न भाग प्राप्त हो। पीछे या पश्चिम की ओर विराजने वाले विद्वानों को अपना नेता मानने वाले विजयी पुरुषों को उत्तम अन्न ऐश्वर्य प्राप्त हो। शरीर में प्राण-अपान के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार करने वाले, और शत्रु-मारण में चतुर पुरुषों को नेता रखने वाले विजयी उत्तर दिशा में या बायीं ओर विराजने वाले पुरुषों को उत्तम अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त सौम्य स्वभाव वाले आचार्य, योगी पुरुष को अपना नेता बनाने वाले, सर्वोपरि विराजमान ईश्वरोपासना, यज्ञ, विद्याध्ययनादि कार्य आचरण करने वाले विद्वान् पुरुषों को उत्तम अन्न, धन और ज्ञानैश्वर्य प्राप्त हो। शत० ५। २। ३। ३॥

ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्रा पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

वरुण ऋषिः। विकृतिः। विश्वेदेवा देवताः। मध्यमः॥

भा०—जो राज्यकार्य में नियुक्त विद्वान् पुरुष 'अग्नि' अर्थात् ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष को प्रमुख रखने वाले, आगे या पूर्व भाग में विराजते हैं, उनको उत्तम आदर यश प्राप्त हो। जो विद्वान् दक्षिण दिशा में विराजमान, या बलशक्ति में विराजमान, अथवा अहिंसा आदि यम नियमों में हैं उनको उत्तम आदर, यश, अन्न ऐश्वर्य प्राप्त हो। जो विद्वान् प्रजा या प्रजापति को प्रमुख मानने वाले, पश्चिम भाग में विराजते हैं उनको उत्तम यश और आदर प्राप्त हो। जो विद्वान् न्यायाधीश और नगर की पुलिस के अध्यक्ष के अधीन, और वायु के समान तीव्र चढ़ाई करने वाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष, उत्तर दिशा में विराजते हैं उनको उमत्त यश, आदर और ऐश्वर्य प्राप्त हो। जो विद्वान्

शासक लोग आचार्य के अधीन ईश्वरपरिचर्या या ज्ञानाराधना, धर्म, यज्ञ यागादि करते हैं, और सबसे ऊपर विराजते हैं, उनको उचित आदर, यश अन्न, धन प्राप्त हो। शत० ५। २। ४ ५॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि ॥ ३७ ॥

देवश्रवो देववातश्च ऋषि भारतौ। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—अभिमान और गर्व से भरी हुई शत्रुसेनाओं को परास्त करके हे अग्रणी! समस्त संग्रामों और शत्रु-सेनाओं को तू बलपूर्वक विजय कर। तू स्वयं दूसरे शत्रुओं द्वारा दुस्तर, अजेय, अवध्य, अपार, दुःसाध्य होकर शत्रुओं को नाश करता हुआ परस्पर संगत राजधर्मों और व्यवस्थाओं को धारण करने वाले राष्ट्र और राष्ट्रपति में तेज और बल को प्रदान कर। शत० ५। १४ १६॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपांशोर्वीर्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा। रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः ॥ ३८ ॥

देववातो देवश्रवाश्च ऋषी। रक्षोघ्नो देवता। भुरिग् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे वीर पुरुष! सबके प्रेरक राजा के ऐश्वर्यमय राज्य में, अश्वारोहियों के बाधक सामर्थ्यों से, और परिपोषक मित्र राजा के सब हनन साधनों से, और प्राणरूप प्रजापति राजा के वीर्य से विघ्नकारी के विनाश करने के लिये तुझे युद्धयज्ञ में आहुति देता हूँ। उत्तम युद्ध की शैली से उत्तम कीर्ति और नामवरी सहित राज्य के विघ्नकारी लोगों को मार डाला जाय। हे दुष्ट पुरुष! युद्धस्थल में हम तेरा नाश करते हैं। इस प्रकार हम समस्त दुष्ट पुरुषों का विनास करें। और हम उस अमुक विशेष शत्रु का नाश करते हैं। इस प्रकार वह शत्रु छांट २ कर मारा जाय। शत० ५। २। ४। १७॥

सविता त्वा सवानाᳬं सुवतामग्निर्गृहपतीनाᳬं सोमो वनस्पतीनाम् । बृहस्पतिर्वाच इन्द्रो ज्यैष्ठ्याय रुद्रः पशुभ्यो मित्रः सत्यो वरुणो धर्मपतीनाम् ॥ ३९ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । अतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! तू समस्त ऐश्वर्यों का उत्पादक होने से 'सविता' है । गृहस्थों के बीच में अग्रणी नेता है । वनस्पतियों के बीच में सोम के समान सर्वश्रेष्ठ है । वेदवाणी का तू बृहस्पति, परम विद्वान् प्रवक्ता है । सबसे उत्कृष्ट परमैश्वर्यपद के प्राप्त करने के कारण तू 'इन्द्र' है । पशुओं के हित के लिये तू साक्षात् उनका रोधक, पालक पशुपति है । सत्यवादी तू सर्वस्नेही है । धर्मपालकों में से तू दुष्टों का वारक है । तुझको सब लोग राजपद पर अभिषिक्त करें । शत० ५ । ३ । ३ । ११ ॥

इमं देवा असपत्नᳬं सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाᳬं राजा ॥ ४० ॥

देवश्रवोदेववातौ ऋषी । यजमानो देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—बड़े भारी क्षात्रबल के लिये, बड़े भारी सर्वश्रेष्ठ राजपद के लिये, बड़े भारी जनों के ऊपर राजा हो जाने के लिये, और परम ऐश्वर्यवान् राजा की ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये, विजयी वीरगण और विद्वान् शासक पुरुष, शत्रुओं से रहित इस योग्य पुरुष को अभिषिक्त करें । इस अमुक पिता के पुत्र, अमुक माता के पुत्र को, इस प्रजा के हित के लिये राज्य पर अभिषिक्त किया जाता है । हे अमुक २ प्रजाओ ! आप लोगों का यह राजा चन्द्र के समान आह्लादक और सोमलता के समान आनन्द, तृप्ति, वीर्य और हर्ष का जनक

और प्रवर्त्तक है। वह हम वेद-ज्ञान के विद्वान् ब्राह्मणों का भी राजा है। शत० ५।३।३।१२॥

॥ इति नवमोध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये नवमोऽध्यायः ॥

दशमोऽध्यायः

अथ राज्याभिषेकः

॥ ओ३म् ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्वश्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ॥ १ ॥

वरुण ऋषिः । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—विद्वान् पुरुष मधुर गुणवाले जलों के समान मधुर व्यवहार-आप्त प्रजाजनों को ग्रहण करते हैं। जो कि अन्नादि समृद्धिवाले, विवेक से कार्य करने वाले हैं, और राजा को बनाने या उसके अभिषेक करने में समर्थ हैं। जिनके बल से विद्वान् पुरुष सर्वरक्षक और सर्वश्रेष्ठ दोनों का अभिषेक करते हैं। और जिनसे ऐश्वर्यवान् राजा को कर न देनेवाले समस्त शत्रुओं के ऊपर विजय प्राप्त करते हैं। शत० ५।३।४।३॥

वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृष्ण ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥
वृषसेनो सि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

वरुण ऋषिः । वृषो देवता । स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—राजा कहता है कि हे राष्ट्र के प्रतिनिधि ! तू बलवान् पुरुष को ऊंचे पद पर पहुंचाने में समर्थ है। तू राष्ट्र को देने में समर्थ है। तू उत्तम नीति-व्यवस्था से मुझे राज्यशक्ति प्रदान कर। तू सुखवर्षक राज्य का ज्ञाता है, तू राज्य देने में समर्थ होकर अमुक नाम के पुरुष को राष्ट्र, राजपद, या राज्याधिकार प्रदान कर।

हे वीर पुरुष ! तू बलवान्, हृष्टपुष्ट सेना से युक्त है। तू राज्यशक्ति प्रदान करने हारा होकर उत्तम रीति से मुझको राज्यपद प्रदान कर। इसी प्रकार बलवान् पुरुषों की बनी सेना से युक्त होकर राष्ट्र को देने में समर्थ है। अमुक पुरुष को राष्ट्र या राज्य-सम्पद् प्रदान कर।

[1]अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे[2] देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

अपां पतिर्देवता। (१) अभिकृतिः। ऋषभः।

(२) निचृत् जगती। निषादः ॥

भा०—हे आप्त पुरुषो ! आप लोग अर्थ विशेष अर्थात् इष्ट प्रयोजन से गमन करने में समर्थ हैं, अतएव आप राष्ट्र-सम्पद् को देने में समर्थ हैं। आप लोग उत्तम रीति से मुझे राज्यैश्वर्य प्रदान कीजिये। [अध्वर्यु] हे वीर पुरुषो ! आप अर्थ, धन, सम्पत् के बल पर या उसके निरस्त शत्रु पर चढ़ाई करने में समर्थ हैं। अत एव राष्ट्र दिलाने हारे हैं, आप लोग अमुक नाम के योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करो।

[राजा] आप लोग ओजस्वी और राष्ट्र देने में समर्थ हैं। मुझे राष्ट्र प्रदान करें। [अध्वर्यु] आप लोग ओजस्वी हैं, आप राज्य-सम्पद् देने में समर्थ हैं। अमुक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करें।

[राजा] हे वीर प्रजाजनो ! आप लोग सब प्रकार की उत्तम सेनाओं से युक्त हो, अतः राष्ट्र प्राप्त कराने में समर्थ हो। आप मुझे राष्ट्र प्रदान करें। हे वीर प्रजाजनो ! आप लोग सब प्रकार से सेनाओं से युक्त, राज्य प्रदान करने में समर्थ हो। आप अमुक नामक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करो।

[राजा] तू समस्त प्रजाजनों का पालक है। तू राष्ट्र प्राप्त कराने वाला है, तू मुझे राष्ट्र प्राप्त करा। [अध्वर्यु] तू समस्त प्रजाओं का पालक है। तू सबका नेता, राष्ट्र प्राप्त कराने में समर्थ है। तू अमुक योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान कर।

[राजा] तू प्रजाओं को अपने अधीन उनके बीच और उनको अपने साथ रखने में समर्थ है। तू मुझे राष्ट्र अच्छी प्रकार प्राप्त करा [अध्वर्यु] तू प्रजाओं को वश करने में समर्थ है। तू राष्ट्र प्राप्त कराने हारा है। तू अमुक योग्य पुरुरुष को राज्य प्रदान कर। शत० ५। ३। ४। ४।–११॥

[1]सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [2]सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [3]मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [4]व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [5]वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [6]शविष्ठा स्थ राष्टदा राष्ट्रं मे

दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ७ शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ८जनभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त ९ विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृतं स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्ता१० पः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । ११मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं क्षत्रियाय वन्वाना अनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

वरुण ऋषिः सूर्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । (१,२) अनुष्टुप् । गांधारः । (३,५,) विराड् उष्णिक् (६,७) उष्णिक् ऋषभः । (४,८,९) आर्चीपंक्तिः । पंचमः । (१०) साम्न्यनुष्टुप् । गान्धारः । (११) भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे उत्तम प्रजागण ! आप लोग सूर्य के दीप्तिमान् आवरण के समान उज्ज्वल आवरण वाले तेजस्वी हो । सूर्य के तेज के समान तेज के समान तेज धारण करने हारे हो । सबको आनन्दित, सुप्रसन्न करने हारे हो । आप लोग गौ आदि पशुओं के समूहों के बीच में निवास करने हारे हो । आप लोग कान्तिमान् और जनों को अपने वश करने हारे हो । आप लोग अति बलवान् हो । आप लोग शक्तिशाली हो । समस्त जनों का भरण-पोषण करने में समर्थ हो । आप लोग समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने में समर्थ हो । आप लोग स्वयं अपने बल से उत्तम पद पर विराजमान हो, आप लोग सभी अपने २ सामर्थ्यों से राष्ट्र के देने में समर्थ हो । मुझे आप सब लोग राष्ट्र या राज्य का कार्य अति उत्तम रीति से सुविचार कर प्रदान करो । [अध्वर्यु] हे उपरोक्त नानागुण वाले प्रजाजनो ? आप लोग राष्ट्र के देने में समर्थ हो, आप लोग अमुक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करते हो । आप सब प्रजाएँ उत्तम,

वाणी और ज्ञान से युक्त होकर उत्तम वाणी और ज्ञान वाले विद्वानों से परस्पर सम्पर्क करो। देश को क्षति से त्राण करने में समर्थ पुरुष को आप सब बड़ा भारी क्षात्रबल प्रदान करते हुए स्वयं भी बलवान् शूरवीर राष्ट्र को क्षति होने से त्राण करने या बचाने वाले राजा के लिये बड़ा भारी क्षात्रबल धारण करती हुईं, उसके समान एक साथ ही पराक्रमी होकर, शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाली होकर, इस राष्ट्र में विराजमान रहो। शत० ५। ३। ४। २२-२८॥

सिंहासनारोहण

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्। अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॒ सर॑स्वत्यै॒ स्वाहा॑ पू॒ष्णे स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ घोषा॑य॒ स्वाहा॒ श्लोका॑य॒ स्वाहा॒ अꣳशा॑य॒ स्वाहा॒ भगा॑य॒ स्वाहा॑र्य॒म्णे स्वाहा॑ ॥ ५ ॥

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। भुरिगतिधृतिः। ऋषभः॥

भा०—हे सिंहासन-पद! तू राजा की कान्ति, तेज या शोभा है। तेरे अनुरूप ही मुझ राजा की भी कान्ति, तेज, शोभा हो। हे राजन्! तू अग्नि के उत्तम तेज को धारण कर। हे राजन्! तुझे राष्ट्र का क्षात्रबल उत्तम रीति से प्राप्त हो। समस्त दिव्य तेजों के उत्पादक सूर्य का तेज तुझे भली प्रकार प्राप्त हो। वेदवाणी का उत्तम ज्ञान तुझे प्राप्त हो। पुष्टिकारक पशुओं की समृद्धि तुझे प्राप्त हो। वेद के पालक विद्वान् पुरुषों का ज्ञान-बल तुझे प्राप्त हो। परम वीर्यवान् राजा का वीर्य तुझे प्राप्त हो। घोषणा करने का उत्तम अधिकार तुझे प्राप्त हो। समस्त जनों द्वारा स्तुति और यश प्राप्त करने का पद तुझे प्राप्त हो। सबको उचित उनके अंश आदि के बांटने का अधिकार तुझे प्राप्त हो। समस्त ऐश्वर्यों का स्वामित्व तुझे प्राप्त हो। सब राष्ट्र पर स्वामी होकर उनको न्याय प्रदान करने का अधिकार तुझे प्राप्त हो। शत० ५। ३। ५। ६-९॥

तेजो वा अग्निः । तेजसा एवैनमभिषिञ्चति । क्षत्रं वै सोमः । क्षत्रेणै वैनमेतदभिषिञ्चति । सविता वै देवानां प्रसविता । सवितृप्रसूत एव एनमेतदभिषिञ्चति । वाग् वै सरस्वती । वाचैवैनमेतदभिषिञ्चति । पशवो वै पूषा । ब्रह्म वै बृहस्पतिः । वीर्यं वा इन्द्रः । वीर्यं वै घोषाः । वीर्यं श्लोकः वीर्यं वा अंशः । वीर्यं वै भगः । अर्यम्णे स्वाहा । तदेनमस्य सर्वस्य अर्यमणं करोति । शत० ५ । ३ । ५ । ८–९ ॥

प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒व उत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । अनि॑भृष्टमसि वा॒चो बन्धु॑स्तपो॒जाः सोम॑स्य दा॒त्रम॑सि॒ स्वाहा॑ राज॒स्वः॑ ॥ ६ ॥

वरुण ऋषिः । आपो देवताः । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे स्त्री पुरुष दोनों प्रकार की प्रजाओ ! तुम शुद्ध आचरण वाली होकर रहो । तुम दोनों समस्त विद्याओं में निष्णात होओ । तुम लोगों को सर्वप्रेरक राजा के राज्य में त्रुटिरहित पवित्र आचरण व्यवहार द्वारा पवित्र आचारवान् करके उन्नत करूं, जैसे कि सूर्य की किरणों से शुद्ध पवित्र होकर जल ऊर्ध्व आकाश में जाता है। हे राष्ट्रवासी प्रजाओ ! तुम शत्रु और दुष्ट पुरुषों से कभी सताए न जाओ । और तुम वाणी द्वारा परस्पर प्रिय भाषण करते हुए एक दूसरे के बन्धु समान प्रेम में बद्ध होकर रहो । आप लोग ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन आदि तपों द्वारा अपने को बढ़ाओ ।प्रेरक राजा के पद को प्रदान करने में समर्थ हो । इसी कारण अपने सत्याचरण और व्यवहार से आप राजा को उत्पन्न करने में समर्थ हो । शत० ५ । ३ । ५ । १४ ॥

स॒ध॒मादो॑ द्यु॒म्निनी॒राप॑ ए॒ता अना॑धृष्टा अप॒स्यो॒ वसा॑नाः । प॒स्त्या॒सु चक्रे॒ वरु॑णः स॒धस्थ॑म॒पां शिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः ॥७॥

वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—ये आप्त प्रजाएं परस्पर आनन्द अनुभव करने हारी और

धन, ऐश्वर्य और बल-वीर्य वाली हों। वे उत्तम कर्म करने में कुशल, शत्रुओं से धर्षित न होकर, एक ही राष्ट्र में रहती हैं। उन गृह बना कर रहने वाली प्रजाओं में उन द्वारा वरण करने योग्य सर्वोत्तम राजा, जलों के भीतर व्यापक अग्नि के समान और उत्तम माताओं के भीतर जिस प्रकार बालक निर्भय होकर और पालन पोषण पाता है, उसी प्रकार राजा माता के समान विद्यमान प्रजाओं के बीच रहकर उनमें ही अपना आश्रय स्थान बनाता है। शत० ५।६।३।१९॥

क्षत्रस्योल्वमसि क्षत्रस्य जराय्वसि क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसीन्द्रस्य वार्त्रघ्नमसि मित्रस्यासि वरुणस्यासि त्वयायं वृत्रं वधेत्। दृवासि रुजासि क्षुमासि। पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात॥ ८॥

यजमानो देवता। कृतिः। निषादः॥

भा०—हे राजन्! तू राष्ट्र के क्षात्रबल का गर्भ की रक्षा करनेवाले आवरण के समान रक्षक है। तू क्षात्रबल का जेर के समान आवरण है। तू क्षात्रबल का आश्रय है। तू क्षात्रबल का केन्द्र है। हे शस्त्र-धारिन्! तू राजा के शत्रु का नाशक बल-स्वरूप है। तू सर्वस्नेही और शत्रुओं के वारक राज्य पदाधिकारियों के योग्य शस्त्रधारी है। तुझ द्वारा यह राजा विघ्नकारी शत्रु का विनाश करे। तू शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारा है। तू शत्रुओं को कंपा देने वाली शक्ति है। सैनिक पुरुषो! आप लोग आगे बढ़ते हुए इस राजा की रक्षा करो। इसकी पीछे से रक्षा करो। इसकी बाजुओं की ओर से रक्षा करो। इस राजा की आप लोग समस्त दिशाओं से रक्षा करें। ५।३।५।२०-३०॥

आविर्मर्या आवित्तो अग्निर्गृहपतिरावित्त इन्द्रो वृद्धश्रवा आवित्तौ मित्रावरुणौ धृतव्रतावावित्तः पूषा विश्ववेदा आवित्ते द्यावापृथिवी विश्वशम्भुवावावित्तादितिरुरुशर्मा॥ ९॥

प्रजापतिर्देवता । भुरिगष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोगों ने यह अग्रणी, गृहरक्षक पति के समान साक्षात् प्राप्त किया है । आप लोगों को कीर्तिमान् तथा बहुज्ञ और ऐश्वर्यवान् राजा साक्षात् प्राप्त हो । सब राज्यव्यवस्थाओं को धारण करने वाले न्यायाधीश और बलाध्यक्ष दोनों आप लोगों को साक्षात् प्राप्त हों । समस्त धनैश्वर्यवान्, सबका पोषक वह राजा तुम्हें प्राप्त हो । तुम लोगों को समस्त संसार को शान्ति देनेवाले माता पिता प्राप्त हों । बहुतों को शरण देनेवाली अखण्ड पृथिवी तुम्हें प्राप्त हो । शत० ५ । ३ । ५ । ३१–३७ ॥

अवे॑ष्टा दन्द॒शूका॒ः प्राची॒मारो॑ह गाय॒त्री त्वा॑वतु रथन्त॒रꣳ साम॑ त्रि॒वृत् स्तोमो॑ वस॒न्त ऋ॒तुर्ब्रह्म॒ द्रवि॑णम् ॥ १० ॥

यजमानो देवता । विराडार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—मधुमक्खी, ततैये, बर्रं आदि के समान दुःखदायी प्राणी मार डाले जांय । हे राजन् ! तू प्राची दिशा अर्थात् आगे की ओर बढ़, गायत्री छन्द, रथन्तर साम, और त्रिवृत् स्तोम, वसन्त ऋतु और ब्राह्मण रूप धन तेरी रक्षा करें । शत० ५ । ४ । १ । १–९ ॥

दक्षि॒णामारो॑ह त्रि॒ष्टुप् त्वा॑वतु बृ॒हत्साम॑ पञ्चद॒शस्तोमो॑ ग्री॒ष्म ऋ॒तुः क्ष॒त्रं द्रवि॑णम् ॥ ११ ॥

प्र॒तीची॒मारो॑ह॒ जग॑ती त्वावतु वैरू॒पꣳ साम॑ सप्तद॒श स्तोमो॑ व॒र्षा ऋ॒तुर्वि॒ड् द्रवि॑णम् ॥ १२ ॥

उदी॑ची॒मारो॑हानु॒ष्टुप् त्वा॑वतु वैरा॒जꣳ सामैकवि॒ꣳश स्तोम॑ः श॒रदृ॒तुः फल॒ं द्रवि॑णम् ॥ १३ ॥

११–१२—यजमानो देवता । (११–१३) आर्ची पंक्तिः पंचमः ।
(११) निचृदार्ष्यनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—तू दक्षिण दिशा पर आक्रमण या वश कर। त्रिष्टुप्, बृहत् साम, पञ्चदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और क्षत्र बल रूप धन तेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥

तू पश्चिम दिशा की ओर बढ़। तुझको जगती छन्द, वैरूप साम, सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋतु, और वैश्यरूप धन रक्षा करे ॥ १२ ॥

उदीची दिशा पर चढ़। वहां अनुष्टुप् चन्द, वैराज साम, एकविंश स्तोम, शरद् ऋतु और फल अर्थात् श्रम द्वारा प्राप्त अन्न आदि तेरी रक्षा करे। १३। ५। ४। १। ४-६ ॥

ऊर्ध्वामारो॑ह प॒ङ्क्तिस्त्वा॑वतु शाक्वररैव॒ते साम॑नी त्रिणवत्रय॒स्त्रि॒ꣳशौ स्तोमौ॑ हेमन्तशिशि॒रावृ॒तू वर्चो॒ द्रवि॑णं॒ प्रत्य॑स्तं॒ नमु॑चे॒: शिर॑: ॥ १४ ॥

यजमानो देवता। भुरिग्जगती। निषादः

भा०—ऊर्ध्व दिशा की ओर आक्रमण कर। पंक्ति छन्द, शाक्वर और रैवत साम, त्रिनव और त्रयस्त्रिंश नामक दोनों स्तोम, हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतु, और तेज रूप धन ये तेरी रक्षा करे। पापाचार को न छोड़ने वाले का शिर काटकर फेंक दिया जाय। शत० ५।४।१।७-९॥

सोम॑स्य॒ त्विषि॑रसि॒ तवे॑व मे॒ त्विषि॑र्भूयात्।
मृ॒त्योः पा॒ह्योजो॑ऽसि॒ सहो॑ऽस्यमृत॑मसि ॥ १५ ॥

परमात्मा देवता। उष्णिग्। ऋषभः।

भा०—हे राज्यपद ! तू सर्वप्रेरक राजा की कान्ति या शोभा है। मेरी शोभा भी तेरी ही समान हो जाय। हे राजन् ! तू मृत्यु से रक्षा करने वाला है, तू मृत्यु से रक्षा कर। तू ओज है, सहस् है, बल है, अमृतस्वरूप है। शत० ५। ४। १। ११—१४ ॥

हिरण्यरूपा उषसो विरोक उभाविन्द्रा उदिथः सूर्यश्च।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च मित्रोऽसि
वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

मित्रावरुणौ देवते । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे मित्र और हे वरुण ! आप दोनों स्वर्ण के समान तेजस्वी राजा के समान ऐश्वर्यवान्, उषाओं के विशेष प्रकाश द्वारा सूर्य और चन्द्र के समान नाना कार्यों और विद्याओं को प्रकाशित करते हुए उदय होओ । आप दोनों हे वरुण ! हे मित्र ! रथ पर और राष्ट्रवासी प्रजाओं के ऊपर आरूढ़ होओ और उन पर शासन करो । और तब अखण्ड राज्यव्यवस्था या पृथिवी और खण्ड २ रूप से विद्यमान समस्त विभक्त व्यवस्था का भी उपदेश करो या उनका निरीक्षण करो । हे राजन् ! तू ही स्वयं मित्र अर्थात् सर्वस्नेही है, और तू ही वरुण सब शत्रुओं को वारण अर्थात् सब शत्रुओं को वारण करने में समर्थ है । शत० ५ । ४ । १ । १६-१७ ॥

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्र-
स्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥

क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! सर्वप्रेरक राजपद के योग्य यश और ऐश्वर्य से अग्रणी नेता के तेज से, और सूर्य के तेज से, और विद्युत् या वायु के बल से तेरा अभिषेक करता हूँ । हे अभिषिक्त राजन् ! तू क्षत्रियों का राजाधिराज होकर रह । प्रजा का नाश करने वाली सब विपत्तियों को पार करके प्रजाओं की रक्षा कर । शत० ५ । ४ । २ । २ ॥

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते
जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश
एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥

यजमानो देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ९ । ४० । शत० ५ । ४ । २ । ३ ॥

प्र पर्वतस्य वृष॒भस्य॑ पृ॒ष्ठान्नावश्चरन्ति स्व॒सिच॑ इया॒नाः । ता आव॑वृत्रन्नध॒रागुद॑क्ता॒ऽअहिं॒ बुध्न्यु॒मनु॒ रीय॑मा॒णाः । विष्णो॑र्वि॒क्रम॑णमसि॒ विष्णो॒र्विक्रा॑न्तमसि॒ विष्णोः॒ क्रान्तम॑सि ॥ १९ ॥

आपः विष्णुश्च देवताः । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार पर्वत या मेघ के पृष्ठ से निकलने हारी जल-धाराएं बहती हैं। उसी प्रकार नर-श्रेष्ठ राजा की पीठ पर से जाती हुईं शरीर का सेचन करने वाली जल-धाराएं अभिषेक काल में बहें। वे नीचे और ऊपर सर्वत्र, सबके आश्रय में स्थित तथा जिसको कोई न मार सके ऐसे वीर राजा को, पर्वत की जलधाराएं जिस प्रकार उसके मूल भाग को घेरती हैं उसी प्रकार उसको घेरें। हे पृथिवी ! तू व्यापक राज-शक्ति का विक्रम करने का स्थान है। हे अन्तरिक्ष ! तू वायु के समान बलशाली राजा का नाना प्रकार के पराक्रमों का स्थान है। हे स्वः लोक ! तू आदित्य के समान राजा के पराक्रम का स्थान है। शत० ५। ४ । २ । ५ । ६ ॥

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव । यत्का॑मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्त्व॒यम॒मुष्य॑ पि॒ताऽसावस्य॒ पि॒ता व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो र॒यी॒णाꣳ स्वाहा॑ । रुद्र॒ यत्ते॒ क्रिवि॒ परं॒ नाम॒ तस्मि॑न् हु॒तम॑स्यमे॒ष्टम॑सि॒ स्वाहा॑ ॥ २० ॥

प्रजापतिर्देवता । स्वराड् अतिधृतिः षड्जः ॥

भा०—हे प्रजा के पालक राजन् ! इस समस्त नाना रूप वाले पदार्थों के ऊपर तुझ से दूसरा कोई स्वामी नहीं है। हम लोग जिस पदार्थ की कामना या अभिलाषा करते हुए तुझे कर प्रदान करते और तुझे राजा स्वीकार करते हैं वह हमारा प्रयोजन पूर्ण हो। यह राजा

अमुक राष्ट्र का पिता है, और इस राजा का अमुक राष्ट्र पिता है। इस प्रकार ये दोनों परस्पर पालक हैं। हम उत्तम व्यवस्था और धर्मानुकूल आचरण द्वारा ऐश्वर्यों के पति बनें। हे शत्रुओं को रुलाने हारे! तेरा जो क्रिवि अर्थात् सब कार्य करने में समर्थ, एवं सबको मारने में समर्थ अधिकार है उस पर तू स्थापित किया गया है। तू घर घर में पूज्य और आदर के योग्य बनाया जाता है। यह सब तेरे उत्तम आचरण और सत्य व्यवस्था का ही परिणाम है। शत० २।४।२।९, १० ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषा युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वारिष्टो अर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

क्षत्रपतिर्देवता। भुरिग् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे राजन्! तू परम ऐश्वर्यवान् राजपद सम्बन्धी वज्ररूप है। तुझको सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष या न्यायाधीश और बलाध्यक्ष, इन दोनों उत्तम शासकों के उत्तम शासनाधिकार से युक्त करता हूँ। तुझको राष्ट्र के पालन पोषण और प्रजा को किसी प्रकार की व्यथा न हो इसलिये इसलिए नियुक्त करता हूँ। तू किसी से भी हिंसित न होकर और और अति सुशोभित होकर प्रजाओं, वैश्यों या शत्रुओं के मारने हारे वीरभटों के उत्कृष्ट बल से विजय प्राप्त कर। हम लोग मन से और शरीर और ऐश्वर्य बल से तेरे साथ मिले रहें, तेरी भली प्रकार रक्षा करें। शत० ५।४।३।५-१० ॥

मा त इन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासो अब्रह्मता विदसाम। तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

संवरण ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे दण्डविधान को हाथ में लिये हुए राजन्! तू शीघ्र ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर, रथ के समान जिस राज्यपद

पर अधिष्ठाता होकर विराजता है। और हे राजन्! जिसके उत्तम घोड़ों के समान राज्य-सञ्चालन को उनकी बागडोरों से अपने नियन्त्रण में अपने नियन्त्रण में रखता है तेरे उस राज्य में हम निवास करें। हम तेरे प्रजाजन अधर्माचरण करते हुए, वेद और ईश्वरनिष्ठा से रहित होकर कभी नष्ट न हों। शत० ५।४।३।१४॥

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा। मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मो अहं त्वाम् ॥ २३ ॥

मंत्रोक्ता अग्न्यादयो देवताः। जगती। निषादः॥

भा०—गृहों के पालक या गृह के समान राज्य के पति अग्रणी पुरुष का हम आदर करें। सेनासमूह के पालक प्रेरक राजा का हम आदर करें। शत्रु को मारने में समर्थ, वायु के समान तीव्रगामी भटों के बल के लिये हम अन्न धनादि को प्रदान करें। ऐश्वर्यवान् राजा के बल का हम आदर करें। राजा भी प्रजाजन से कहे—हे मातः पृथिवी वासी जन! मुझको तू विनष्ट मत कर, और मैं तुझको भी विनष्ट न करूं। शत० ५।३।३।१६-२०॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ २४ ॥

वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! तू शत्रुओं का नाशक है। तू शुद्ध आचरण और व्यवहार में वर्तमान है। तू प्रजाओं को बसाने हारा है। तू अन्तरिक्ष के समान प्रजा के ऊपर रहकर उसका पालन करता है। राष्ट्र से कर ग्रहण करने और अपने आपको उसके लिये युद्धयज्ञ में आहुति देनेवाला है। तू भूमिरूप वेदि में प्रतिष्ठित है। राष्ट्र में अतिथि के समान तू पूजनीय है॥

बड़े २ कष्ट सहन करके पालन योग्य राष्ट्ररूप गृह में विराजमान, समस्त नेता पुरुषों में प्रतिष्ठित, सत्य पर आश्रित, विशेष रक्षाकारी राजपद पर स्थित, प्रजाओं द्वारा प्रजाओं में विशेषरूप से प्रादुर्भूत, पृथ्वी पर विशेष सामर्थ्यवान्, सत्य और ज्ञान से विशेष सामर्थ्यवान् न विदीर्ण होने वाले बल से सम्पन्न, स्वयं बड़ा भारी सत्यरूप बल है। शत० ५। ४। ३। २२ ॥

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि। इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

सूर्यो देवता। आर्षी जगती। निषादः ॥

भा०—हे राजन्! तू इतना बड़ा है। तू राष्ट्र की आयु अर्थात् जीवन है। मुझ प्रजाजन में दीर्घ आयु प्रदान कर। तू शुभ कार्यों में जोड़ने वाला है। तू तेजस्वी है। मुझ प्रजाजन में तेज प्रदान कर। तू बलरूप है मुझ प्रजाजन में बल प्रदान कर। हे सभाध्यक्ष और सेनापते! तुम दोनो! सामर्थ्यवान् तथा ऐश्वर्यवान् राजा के दो बाहुओं के समान हो। मैं राजा तुम दोनों को राजा के समक्ष और उसके अधीन स्थापित करता हूँ। शत० ५। ४। ३। २५-२७ ॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

आसन्दी राजपत्नी देवता। भुरिगनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे आसन्दित अर्थात् राजगद्दी! तू सुखकारिणी है। तू सुख से बैठने योग्य है। तू राष्ट्र के रक्षाकारी बल-वीर्य का आश्रय और उत्पत्तिस्थान है। हे राजन्! तू सुखकारिणी राजगद्दी पर अधिकारी होकर विराज। सुख से बैठने योग्य इस गद्दी पर विराज और क्षात्रबल के परम आश्रयरूप इस गद्दी पर विराज। शत० ५। ४। ४। १-४ ॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ २७ ॥

शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । पिपीलिकामध्या विराड गायत्री । षड्जः ॥

भा०—प्रजा-पालन के शुभ व्रत और राज्यव्यवस्था को धारण करने वाला, उत्तम क्रियावान्, प्रज्ञावान् राजा, न्याय-गृहों में और प्रजाओं के बीच साम्राज्यों की स्थापना और उसके संचालन के लिये अधिष्ठाता रूप से विराजमान हो। शत० ५। ४। ४। ५॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजा इन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः । बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य ॥ २८ ॥

यजमानो देवता । विराड धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—हे राजन् ! तू शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ है। ये पांचों दिशाएं तेरे लिये सुखकारी और बल-पुष्टिकारी हों। हे महान् शक्तिवाले ! तू महान् शक्ति सम्पन्न तथा सबका वृद्धिकर है तू सत्य ऐश्वर्यवाला, सत्य व्यवहार का उत्पादक सविता है। तू सत्य पराक्रमशील वरुण है। तू प्रजाओं के द्वारा पराक्रम करने हारा 'इन्द्र' है। तू उत्तम सुखदायक और शत्रुओं को रुलाने हारा है। हे बहुत से कार्यों के निभाने में समर्थ ! हे प्रजा के कल्याण करने वाले ! हे अति अधिक समृद्धि के कर्त्ता ! तू विद्युत् के वज्र के समान है। इसलिये मुझे अपने वश कर। शत० ५। ४। ४। ६—२१॥

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणो अग्निः पृथुधर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—अग्रणी राजा बड़ा भारी धर्म का पालक है। वह सत्य व्यवहार और व्यवस्था से संग्राम योग्य पराक्रम को प्राप्त करे। हे उत्तम धन, पद आदि देकर बनाये गये अधिकारी पुरुषो! आप लोग सूर्य की किरणों द्वारा जिस प्रकार आंखें देखती हैं उसी प्रकार राजा के दिखाये उपायों द्वारा इसके समान शक्ति में समर्थ राजाओं के मध्य में रहकर सम्पादन करने योग्य कार्य करने के लिये यत्न करो। शत० ५। ४। ४। २२,२३ ॥

स॒वि॒त्रा प्र॑स॒वि॒त्रा सर॑स्वत्या वा॒चा त्वष्ट्रा॑ रू॒पैः पू॒ष्णा प॒शु॒भिरिन्द्रे॑णा॒स्मे बृह॒स्पति॑ना॒ ब्रह्म॑णा॒ वरु॑णे॒नौज॑सा॒ऽग्निना॒ तेज॑सा॒ सोमे॑न॒ राज्ञा॒ विष्णु॑ना द॒शम्या॑ दे॒वत॑या॒ प्रसू॑तः॒ प्रस॑र्पामि ॥२०॥

सविता मंत्रोक्ता देवताः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—सूर्य या वायु के समान प्रेरक और कार्यप्रवर्त्तक के दिव्यगुण से, विज्ञान युक्त वाणी से, विविध शिल्पों से उत्पन्न पदार्थों सहित शिल्पी से, पशुओं से युक्त सर्वपोषक पृथिवी से, वेद ज्ञान से युक्त वेदज्ञ स्वयं इन्द्र अर्थात् राजा रूप से, पराक्रम से युक्त वरुण से, तेज से युक्त अग्नि से, राजा स्वरूप सोम से, तथा दश संख्यापूर्ण करने वाले व्यापक राजशक्तिरूप इन दस दिव्य गुणों और सामर्थ्यों से प्रेरित होकर मैं उत्कृष्ट मार्ग पर गमन करूं शत० ५। ४। ५। २॥

अ॒श्विभ्या॑ पच्यस्व॒ सर॑स्वत्यै पच्य॒स्वेन्द्रा॑य सु॒त्राम्णे॑ पच्यस्व।
वा॒युः पू॒तः प॒वित्रे॑ण प्र॒त्यङ्क्सोमो॒ अति॑स्रुतः।
इन्द्र॑स्य॒ युज्यः॒ सखा॑॥ ३१॥

अश्विनावृषी। सोमः क्षत्रपतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! तू स्त्री पुरुषों के हित के लिये अपने को परिपक्व कर, तप कर। वेद की ज्ञानवाणी के प्राप्त करने और उसे उन्नत करने के लिये अपने को परिपक्व कर। राष्ट्र की उत्तम रीति से रक्षा करने हारे

परमैश्वर्यवान् राजपद के लिये बलवान् होने का यत्न कर। वायु के समान यत्नवान् तथा पवित्र आचार व्यवहार से पवित्र होकर, साक्षात् पूजनीय सौम्यगुणों से युक्त राजा रूप से सबको लांघ कर सबसे उच्च हो और परमैश्वर्यवान् परमात्मा का योग्य सखा बन कर शासन कर। शत० ५।५।४।२०–२३॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय। इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति। उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे॥ ३२॥

काक्षीवतः सुकीर्तिर्ऋषिः। सोमः क्षेत्रपतिर्देवता। निचृद् ब्राह्मी। त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—जिस प्रकार जौ के खेतों वाले किसान लोग जौ को काटते हैं, तब नियमपूर्वक उसको छाज आदि द्वारा फटक कर उस द्वारा समृद्ध गुरु, अतिथि, माता पिता आदि वृद्धजनों का अन्न आदि द्वारा आदर सत्कार करते हैं, उसी प्रकार हे राजन्! तू शत्रुनाशक सेनापति आदि वीर पुरुषों से सम्पन्न होकर, पृथक् करने योग्य शत्रु आदि को पृथक् करके, राष्ट्र के परिवर्धक लोगों का आदर वचनों और अन्न आदि द्वारा सत्कार कर और उनका भोजन आच्छादन आदि का प्रबन्ध कर। हे राजन्! तू राज्य के उत्तम नियमों द्वारा सुबद्ध है, तुझको राजा के उपकार के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझको ज्ञानमयी वेदवाणी के अर्जन के लिये नियुक्त करता हूँ। तुझको प्रजाओं की उत्तम रक्षा करने वाले ऐश्वर्यवान् राजपद के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ५।५।४।२४॥

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम्॥ ३३॥

अश्विनौ देवते निचृदनुष्टुप्। गांधारः।

भा०—हे प्रजा के स्त्री पुरुषो! तुम दोनों कर्त्तव्य कर्म न छोड़ने वाले, बलवान् पुरुष द्वारा किये जाने योग्य शत्रु पर किये गये शरवर्षण

आदि युद्धकार्य्य में, अति मनोहर राजा की विविध उपायों से रक्षा करते हुए, तथा शुभ गुणों के पालक होकर तुम दोनों सब कार्यों में ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करते रहो। शत० ५।५।४।२५॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दथ्ठंसनाभिः। यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक्॥ ३४॥

अश्विनौ देवते। भुरिक पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार माता और पिता पुत्र की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र में व्यापक नर और नारीगण, विद्वान् पुरुष द्वारा रचे गये उपायों और प्रयोगों द्वारा तेरी रक्षा करें। और जब तू अपनी शक्तियों के बल से अति रमणीय राज्यपद का भोग कर रहा हो तब हे ऐश्वर्यवन् राजन्! विद्या या ज्ञानमयी वाणी के समान सुखप्रदा पत्नी भी तुझे प्राप्त हो, तुझे सुख प्रदान करे। शत० ५।५।४ ५६॥

॥ इति दशमोध्यायः॥

[तत्र चतुस्त्रिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये नवमोऽध्यायः॥

एकादशोऽध्यायः।

११—१८ अध्यायानां प्रजापतिः साध्या वा ऋषयः॥

॥ ओ३म्॥ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत्॥ १॥

सविता ऋषिः। सविता देवता। विराड् आर्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—योगी सबसे प्रथम अपनी मनन-वृत्ति और ध्यान करने और धारण करने की वृत्तियों को तत्वज्ञान के लिये समाहित या

एकाग्र करता हुआ, ज्ञानवान् परमेश्वर की परम ज्योति का निश्चित ज्ञान करके, इस पृथिवी पर अन्य वासियों को भी प्राप्त कराता है। शत० ६। ३। १। १२॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ॥२॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। शंकुमती गायत्री। षड्जः॥

भा०—हम लोग योग द्वारा एकाग्र चित्त से, सर्वोत्पादक परम देव परमेश्वर के उत्पादित जगत् में, अपनी शक्ति से परम सुख लाभ के लिये उस परम ज्ञान को प्राप्त करें।

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥ ३॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—योगी सुख या परमानन्द की तरफ जाने वाले प्राणों या साधनों को प्रकाशकस्वरूप परमेश्वर के साथ योग द्वारा समाहित करके, सूर्य के समान महान् ज्योति को साक्षात् कराने में समर्थ उनको प्रेरित करे।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥४॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। जगती। निषादः॥

भा०—बड़े भारी, ज्ञान के संग्रही विशेष रूप से समस्त संसार को ज्ञान को विशेष रीति से पूर्ण करने वाले, दूसरों को ज्ञान देने और अन्यों के ज्ञान ग्रहण करने वाले मेधावी पुरुष, अपने ज्ञान से पूर्ण करने हारे परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये, अपने मन को उसमें योगाभ्यास द्वारा एकाग्र कर उसका चिन्तन करते हैं, और अपनी धारण-समर्थ वृत्तियों को उसी से जोड़ते हैं और उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं। वह पूर्ण ज्ञानवान् परमेश्वर एक ही ऐसा है जो समस्त प्रकार के विज्ञानों,

कर्मों और लोकों को जानने हारा होकर संसार को विविध रूप में बनाता और उसे विविध शक्तियों से धारण करता है। हे विद्वान् पुरुषो! उस सर्वोत्पादक तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की बड़ी भारी स्तुति या महिमा है। शत० ६। २। २। १६॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥५॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! आप दोनों के हित के लिये मैं विद्वान् पुरुष, आत्मा को विनय सिखाने वाले उपायों द्वारा, पूर्ण योगिजनों से साक्षात् किये गये अपने चित्त में एकाग्र होकर साक्षात् करूं और आप लोगों को उसका उपदेश करूं। सूर्य के समान विद्वान् का वह ज्ञानोपदेश आप दोनों के लिये, उत्तम मार्ग के समान विविध उद्देश्यों तक पहुंचे। जो दिव्य प्रकाशों को प्राप्त हैं उन लोगों से, हे समस्त पुत्रजनो! आप लोग अमृतस्वरूप परमेश्वरविषयक ज्ञान का श्रवण करो। शत० ६। २। ३। १७॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना॥ ६॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। निचृद् जगती। निषादः॥

भा०—जिस देव के पराक्रमपूर्वक किये गये गमन के पीछे २ अन्य देव भी गमन करते हैं और जिसके महान् सामर्थ्यों का अन्य अनुगमन करते हैं और जो पृथिवी पर प्रसिद्ध समस्त लोकों को अपने महान् सामर्थ्य से विविध प्रकार से बनाता है, वह सर्व जगत् में व्यापक तथा प्रकाशस्वरूप देव ही सबका उत्पादक है। शत० ६। २। ३। १८॥

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥७॥
ऋषिर्देवते पूर्वोक्ते । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ९ । मं० १ ॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम् । ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा ॥ ८ ॥
ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे देव ! हे सर्वप्रेरक ! तू इस हमारे योग्य यज्ञ को, विद्वानों का रक्षक, मित्रों को प्राप्त करने वाला, सत्य की उन्नति करने वाला, और सुख को बढ़ाने वाला बना । स्तुति करने योग्य पुरुष को ऋग्वेद के ज्ञान से समृद्ध कर । रथों के बल पर शत्रु संकट से पार करने वाले और ब्राह्म-बल पर अपना मार्ग बनाने वाले बड़े भारी क्षात्रबल को ब्रह्मज्ञान से समृद्ध कर । शत० ६ । २ । ३ । २० ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥
प्रजापतिः साध्या वा ऋषयः । सविता देवता । भुरिगति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—हे वज्र के धारक नररत्न ! तुझको सूर्य के समान राजा के शासन में रहकर, राजा प्रजा के बाहु बलों से और पोषणकारी राजा के हाथों से ग्रहण करता हूँ । तू गायत्र छन्द में उपदिष्ट विधि द्वारा, अंगारों के समान जाज्वल्यमान तथा पुष्टिकारक अग्नि को पृथिवी के आश्रय पर प्राप्त कर । इसी प्रकार त्रैष्टुभ छन्द में उपदिष्ट विधि द्वारा, अंगारे के तुल्य तथा पुष्टिकारक अग्नि को प्राप्त करा । शत० ६ । २ । ३ । ३८–३९ ॥

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निᳪं शकेम ।

खनितुᳪं सधस्थ आ । जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥१०॥

सविता देवता । भुरिगनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे वज्रधारक नररत्न ! तू पृथिवी खोदने वाले यन्त्र के समान शत्रु के बीच में रोक के घुस जाने में समर्थ है । तू स्त्री के समान सर्वकार्यसाधिका, सेना का रूप है । हम समान आश्रय-स्थान इस सभा भवन में, सोने के समान दीप्तिमान् पदार्थों को जिस प्रकार रम्भी या कुदाली से खोदकर पा सकते हैं उसी प्रकार अग्रणी पुरुष को प्राप्त करें । वह अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष जगत छन्द, अर्थात् वैश्यबल, धनबल, अथवा ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य से अग्नि के समान तेजस्वी हो । शत० ६ । ३ । १ । ४१ ॥

हस्त आधाय सविता बिभ्रदभ्रिᳪं हिरण्ययीम् । अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरदानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥११॥

प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । भुरिग् आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—शिल्पी जिस प्रकार लोहे की बनी हुई कुदाली को हाथ में लेकर पृथिवी के गर्भ से ज्योतिर्मय सुवर्ण आदि को प्राप्त करता है, उसी प्रकार विद्वान् धातु के बने वज्र को अपने हाथ में रखकर, पृथिवी के निवासियों में से ही, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के सामर्थ्य को उत्पन्न कर प्राप्त करता है । वह आनुष्टुभ छन्द में उपदिष्ट विधि द्वारा अग्नि के अङ्गारों के समान तेजस्वी हो ॥ शत० ६ । २ । १ ॥

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपंक्तिः पंचमः ॥

भा०—हे ज्ञान और बल से युक्त राजन् ! अश्व जिस प्रकार वेग से जाता है इसी प्रकार सबसे श्रेष्ठ सेवन करने योग्य पदवी को अति

वेग से प्राप्त कर। तेरा विद्वानों की बनी राजसभा में सर्वोत्कृष्ट प्रादुर्भाव होता है। अन्तरिक्ष या वायु जिस प्रकार सब संसार पर आच्छादित है उसी प्रकार प्रजा के ऊपर पक्षपात रहित होकर, सबको सुखादि देकर पालन करने के कार्य में तेरा बन्धन अर्थात् नियुक्ति की जाती है। और पृथिवी पर तेरा आश्रयस्थान है। शत० ६।३।२।२॥

युञ्जाथा॑ᳫं रास॑भं युवम॒स्मिन् यामे॑ वृषण्वसू।
अ॒ग्निं भर॑न्तमस्म॒युम् ॥ १३ ॥

कुश्रिर्ऋषिः। रासभो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—गमन करने में समर्थ रथ में जिस प्रकार शब्द और दीप्ति से युक्त अग्नि का शिल्पी लोग प्रयोग करते हैं उसी प्रकार हे प्रजा पर सुख वर्षण करनेहारे वीर पुरुष! और हे वासशील प्रजाजन! तुम दोनों इस राज्य की नियम-व्यवस्था में हमें मुख्य उद्देश्य तक पहुंचाने में समर्थ राष्ट्र के भरणपोषणकारी या कार्यसंचालन करनेहारे, विज्ञानोपदेश से प्रकाशमान् पुरुष को उत्तम पद पर नियुक्त करो। शत० ६। ३।२।३॥

योगे॑योगे त॒वस्त॑रं॒ वाजे॑वाजे हवामहे सखा॑य॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ ॥ १४ ॥

शुनःशेप ऋषि। इन्द्रः क्षत्रपतिर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे मित्रजनो! प्रत्येक नियुक्त होने के पद पर औरों से अधिक बलशाली ऐश्वर्यवान् पुरुष को, अपनी रक्षा के लिये प्रत्येक संग्राम के अवसर पर हम आदर से बुलावें। उसे अपना नेता बनावें। शत० ३।३।२।४॥

प्र॒ तू॒र्व॒न्नेह्य॑व॒क्राम॒न्नश॑स्ती रु॒द्रस्य॒ गाण॑पत्यं मयो॒भूरेहि॑।
उ॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ वीहि स्व॒स्तिग॑व्यूति॒रभ॑यानि कृ॒ण्वन्
पू॒ष्णा स॒युजा॑ स॒ह ॥ १५ ॥

अश्वरासभौ गणपतिर्वा देवता। आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू अतिवेग से गमन करता हुआ शासन को उल्लंघन करने वालों, या उच्छृङ्खल दुष्ट पुरुषों को और शत्रु सेनाओं को पददलित करता हुआ आगे बढ़। और सबके सुख और कल्याण की भावना करता हुआ, शत्रुओं के रुलाने वाले सेना-समूह गण के पति पद अर्थात् सेनापतित्व को प्राप्त कर। और तू निष्कण्टक मार्ग वाला होकर और अपने साथ रहने वाले पृथिवीवासी राष्ट्रजन और पुष्ट सेनाबल के साथ सब स्थानों को भय रहित करता हुआ, अन्तरिक्ष मार्ग को अथवा विशाल अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक सर्वोपरि विद्यमान राजपद को विशेष रूप से प्राप्त कर। शत० ६। ३। २। ७–८॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू पृथिवी के उस एक स्थान से जहां प्रजा बसी है समस्त प्रजाओं को पालन करने में समर्थ, अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी, अग्रणी नेता पुरुष को प्राप्त कर। हम लोग भी पालन करने में समर्थ, सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी, अग्नि के समान शत्रुसंतापक नेता को प्राप्त हों उक्त प्रकार के समृद्ध तेजस्वी नेता को हम भी धारण करेंगे और हम उसको प्राप्त करेंगे, उसका पालन पोषण करेंगे। शत० ६। ३। २। ८–६। ३। ३। ४॥

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥१७॥

पुरोधस ऋषयः। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—प्रकाशमान् तथा सबसे प्रथम विद्यमान् और ज्ञानवान् परमेश्वर उषाओं के अग्र को भी प्रकाशित करता है, वही फिर दिनों को प्रकाशित करता है, वही सूर्य की बहुत सी रश्मियों को भी प्रकाशित

करता है, आकाश और पृथिवी को भी सर्वत्र विस्तृत करता है। उसी प्रकार राष्ट्र में सबसे श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष भी उदय कालों को प्रकाशित करे, तथा सूर्य के समान तेजस्वी राजा की नाना प्रबन्ध-व्यवस्थाओं और कार्यों को प्रकाशित करे। वह राजा-प्रजा दोनों की वृद्धि करे। शत० ६। ३। ३। ६॥

आगत्य वाज्यध्वानꣳ सर्वा मृधो विधूनुते।
अग्निꣳसधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते॥ १८॥

मयोभुव ऋषयः। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—जिस प्रकार वेगवान् अश्व मार्ग पर आकर अपनी सब थकावटों को झाड़ फेंकता है उसी प्रकार बलवान् राजा राष्ट्र को प्राप्त करके समस्त संग्रामकारी शत्रुओं को कंपा देने में समर्थ होता और महत्व युक्त प्रतिष्ठा के स्थान पर ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को अपनी आंखों से देख लेता है। शत० ६। ३। ३। ८॥

आक्रम्य वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम्।
भूम्या वृत्वाय नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम्॥ १९॥

अग्निर्वाजी देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे बलवान् पुरुष! तू पृथिवी पर आक्रमण करके, अपनी रुचि के अनुसार अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को चाह। भूमि पर पूर्ण अधिकार करके तू हमें स्वयं बतला जहाँ से हम उस ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करें। शत० ६। ३। ३। ११॥

द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षꣳ समुद्रो योनिः।
विख्याय चक्षुषा त्वमभि तिष्ठ पृतन्यतः॥ २०॥

क्षत्रपतिर्देवता। निचृदार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तेरा पालन-सामर्थ्य आकाश के समान महान् है। रहने का स्थान पृथिवी के समान विस्तृत है। तेरा अपना स्वरूप अन्त-

रिक्ष या वायु के समान सबका आच्छादक तथा शरणदायक है। तुझे राजा बनाने वाले अमात्य आदि समुद्र के समान गम्भीर और अगाध हैं। अपनी दर्शनशक्ति से विशेषरूप से आलोचना करके तू अपनी सेना से आक्रमण करने वाले शत्रुओं पर आक्रमण कर। शत० ६। ३। ३। १२॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन्।
वयꣳस्याम सुमतौ पृथिव्या अग्निं खनन्त उपस्थे अस्याः ॥२१॥

द्रविणोदा वाजी देवता। आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न राजन्! तू प्रजा और नियुक्त पुरुषों को यथोचित धन प्रदान करने में समर्थ होकर बड़े भारी शोभने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये इस निवासस्थान से ऊपर उठा। हम लोग इस पृथिवी की पीठ पर अग्रणी तेजस्वी पुरुष को श्रम से प्राप्त करते हुए उसके उत्तम ज्ञान और मन्त्रणा के अधीन रहें। शत० ६। ३। ३। १३॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकꣳ सुकृतं पृथिव्याम्।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम् ॥२२॥

द्रविणोदा वाजी देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—अश्व के समान बलवान्, एवं ज्ञानवान्, तथा ऐश्वर्यदाता राजा उदय को प्राप्त होता है, और इस पृथिवी पर समस्त लोक अर्थात् जन-समुदाय को पुण्य आचारवान् बना देता है। हम लोग सर्वोत्कृष्ट सुखमय लोक को प्राप्त कर वहां से सुन्दर तथा स्वर्ण के समान कान्तिमान् पुरुष को प्राप्त करें। ६। ३। ३। १४॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥२३॥

गृत्समद ऋषिः। अग्नि प्रजापतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—अग्नि को जिस प्रकार समस्त पदों पर अपनी योग्यता के बल से रहने वाले, दूरगामी, बल से विशाल, महान् तथा व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष का, हम अन्नादि भोग्य पदार्थों से सत्कार करें जैसे कि घृत से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं। शत० ६।१।३।१९॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः॥ २४॥

गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! मैं सब ओर से शत्रु के प्रति आक्रमण करने वाले तुझको सब प्रकार से उत्तेजित करूं। वह राजा प्रेम से दी गई उत्तेजना-सामग्री को राक्षसी भावना से रहित चित्त से स्वीकार करे। वह मनुष्यों के बीच विशेष शोभावान्, उनका शिरोमणिस्वरूप और प्रेमयुक्त पुरुषों द्वारा अपना नेता चुना गया, अपने शरीर से सबका भरण-पोषण करता हुआ आग के समान तेजस्वी होकर किसी भी द्वारा तिरस्कार करने योग्य नहीं रहता, उसका कोई अपमान नहीं कर सकता। शत० ६।३।३।१५॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत्।
दधद्रत्नानि दाशुषे॥ २५॥

सोमक ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—संग्राम का पालक सेनापति दूरदर्शी, तथा अग्रणी होकर विजय करने योग्य स्थानों पर सब ओर से आक्रमण करे, और करादि दान देने वाले या दान देने योग्य प्रजाजनों को रत्न आदि पदार्थ प्रदान करे।

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रꣳ सहस्य धीमहि।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम्॥ २६॥

पायुर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! हे बल को चाहने वाले ! हम प्रजा के लोग विविध प्रकारों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले, नगर के कोट के समान पालन करने में समर्थ, प्रतिदिन विनाश करने योग्य पुरुषों के नाश करने वाले, और तीक्ष्ण स्वभाव वाले, तुझको, अपने चारों तरफ रक्षा करने के लिये नियुक्त करते हैं।

त्वम॑ग्ने द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ २७ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे अग्रणी ! मनुष्यों के पालक राजन् ! न्याय, विनय, प्रताप आदि तेजस्वी गुणों से तू प्रकाशमान् होता है। तू दुष्टों का शीघ्र नाश करता है। तू व्यापक सामर्थ्य या वज्ररूप शस्त्रबल से वृद्धि को प्राप्त होता है। तू सेवन करने योग्य प्रजाजनों के बीच में से उत्पन्न होता है। दाह, प्रताप, पराक्रम को धारण करने वाले वीरों के बीच में से प्रकट होता है। तू मनुष्यों को शुद्ध करने वाला और उन सब में स्वयं शुद्ध होकर प्रकट होता है।

दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् खनामि । ज्योति॑ष्म-
न्तं त्वाग्ने सुप्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना दीद्य॑तम् । शि॒वं प्र॒जाभ्योऽ-
हिंसन्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गि॒र॒स्वत् खनामः ॥२८॥

अग्निर्देवता । भुरिक् प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—हे अग्रणी ! सर्वप्रेरक परमेश्वर के शासन में रहकर, स्त्री और पुरुष दोनों के बाहुओं से और पुष्टिकारक राजा के बल और पराक्रम स्वरूप हाथों से अग्नि के समान तेजस्वी, राष्ट्र को पूर्ण करने वाले साधनों से सम्पन्न पुरुष को पृथिवी निवासी प्रजाजन से मैं मुख्य पुरोहित ऊपर उठाता हूँ, उसे मानो उच्च पद प्रदान करता हूँ। हे तेजस्वी

पुरुष ! सुन्दर मुख वाले, निरन्तर दीप्ति से चमकने वाले, सूर्य के समान देदीप्यमान, प्रजाओं के लिये कल्याणकारी, प्रजा का नाश न करते हुए, अंगारों के समान जाज्वल्यमान् तथा समृद्धि से सम्पन्न तुझको इस पृथिवी से रत्न सुवर्णादि के ही समान यत्नपूर्वक ऊपर खोदते, निकालते, अर्थात् नीचे से उच्चपद पर लाते हैं। शत० ६।४।१।२॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्। वर्धमानो महाँ२ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता। स्वराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन् ! तू जलों की पीठ की न्याईं शान्त है। तू अग्नि अर्थात् तेज का भी आश्रय है। तू सब ओर से बढ़ते हुए समुद्र के समान गम्भीर है। तू अपने पुष्टिकर्त्ता राष्ट्र में नित्य बढ़ता हुआ और महान् होकर सूर्य की तेजःशक्ति से और पृथिवी की विशालता से चारों ओर स्वयं विस्तृत हो। शत० ६।४।१।८॥

शर्म च स्थो वर्म च स्थोऽछिद्रे बहुले उभे।
व्यचस्वती संवसाथां भृतमग्निं पुरीष्यम् ॥ ३० ॥

दम्पती देवते। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे राजा और प्रजा ! तुम दोनों एक दूसरे को गृह के समान आश्रयप्रद हो, तथा कवच के समान सब ओर से रक्षा करने वाले हो। तुम दोनों दोष से रहित, बहुत से सुखों को प्राप्त कराने वाले अपने २ कर्तव्यों में व्याप्त होकर इकट्ठे बस रहो। तुम दोनों पालनकार्यों में उत्तम, अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को सुरक्षित और सुपुष्ट बनाये रक्खो। शत० ६।४।१।१०॥

संवसाथाᳪं स्वर्विदा समीची उरसा त्मना।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३१ ॥

जायापती देवते। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—स्त्री पुरुष जिस प्रकार गृहस्थ बनकर सन्तानोत्पत्ति करते हैं, उसी प्रकार हे राजा-प्रजाजनो ! आप दोनों एक दूसरे को सुख प्रदान करते हुए राजा उरःस्थल से अर्थात् क्षात्रबल से और प्रजाजन अपने वैश्य भाग से, तेजस्वी और अविनाशी ऐश्वर्य को धारण करते हुए, परस्पर सुसंबद्ध रहकर एकत्र होकर रहो। शत० ६ । ४ । २ । ११ ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभरा अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३२॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे अग्ने ! तेजस्वी पुरुष ! तू नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न है। तू विश्व का भरण-पोषण करने में समर्थ है। तुझको सर्वश्रेष्ठ तथा अहिंसक विद्वान् प्रजापालक, परस्पर संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा मथन करके प्राप्त करता है। हे तेजस्विन् राजन् ! व्यापकशील वायु जिस प्रकार विद्युत् को अन्तरिक्ष से मथन करके प्रकट करता है। विद्वान् समस्त राष्ट्र के मूर्धास्थल रूप में तुझे प्राप्त करता है। शत० ६ । ४ । २ । १ ॥

तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः ।
वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ ३३ ॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! शत्रु के हन्ता, और शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ तुझको अहिंसक विद्वान् के प्रजा के धारण करने वाले समस्त साधनों को प्राप्त करने में समर्थ तथा पुरुषों का त्राणकर्त्ता व्यक्ति प्रदीप्त करे। शत० ६ । ४ । २ । ३३ ॥

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्
धनञ्जयꣳ रणेरणे ॥ ३४ ॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—राष्ट्रपालन के समस्त मार्गों का ज्ञाता, सब पर उत्तम

व्यवस्था की वर्षा करने वाला विद्वान्, नाशकारी चोर डाकुओं के सबसे प्रबल विनाशक, प्रत्येक संग्राम से ऐश्वर्य-धन के विजय करने हारे उस तुझको, पराक्रम से युद्ध करने के लिये उत्तेजित करता है। शत० ६। ४। २। ७॥

सीद॑ होतः॒ स्व उ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञꣳ सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑।
दे॒वा॒वीर्दे॒वान्ह॒विषा॑ यजा॒स्यग्ने॑ बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः॥ ३५॥

देवश्रवो देववातश्च ऋषि। अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे दानाध्यक्ष के पदाधिकार को स्वीकार करने वाले योग्य विद्वान्! तू अधिकार में प्रतिष्ठित हो। और राजा-प्रजा के व्यवहाररूप कार्य को धर्म के आधार पर स्थापित कर। हे तेजस्विन्! तू विद्वानों और उत्तम गुणों की रक्षा करने हारा, वेतनादि पदार्थों द्वारा शासक अधिकारियों को राष्ट्र में नियुक्त कर। और समस्त राज्यव्यवस्था को संचालन करने वाले सर्वोपरि राजा में तथा करादि देने वाले प्रजाजन में बड़ा भारी दीर्घ जीवन और ऐश्वर्य धारण करा। शत० ६। ४। २। ६॥

नि होता॑ होतृ॒षद॑ने॒ विदा॑नस्त्वे॒षो दी॑दि॒वाँ२ऽ अ॑सदत्सु॒दक्षः॑।
अद॑ब्धव्रतप्रमति॒र्वसि॑ष्ठः सहस्रम्भ॒रः शुचि॑जिह्वो अ॒ग्निः॥ ३६॥

गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—विद्वान्, अग्नि के समान कान्तिमान्, तेजस्वी, उत्तम कार्यानुकूल प्रज्ञावान्, आदान-प्रतिदान करने में चतुर अधिकारी 'होता' के पद पर विराजे। वह सबको बसाने वाला अर्थात् सबका रक्षक, सहस्रों प्रजाजनों के पालन-पोषण करने में समर्थ, सत्य वाणी बोलने वाला, अखण्डित व्रतों द्वारा उत्कृष्ट मतिमान् तथा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष 'अग्नि' कहाने योग्य है। शत० ६। ४। २। ७॥

सꣳसीदस्व महाँ२ऽ असि शोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३७ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे अग्ने ! विद्वान् ! तू अपने पद पर अच्छी प्रकार विराजमान् हो। तू महान् है। तू शुभ गुणों से कान्ति युक्त हो। और हे दुष्टों के दलन करने हारे ! और हे सबसे श्लाघ्यतम विद्वान् ! तू भय न दिलाने वाले, रोषरहित, दर्शनीय स्वरूप को प्रकट कर। शत० ६। ४। २। ९॥

अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥

सिन्धुद्वीप ऋषिः। आपो देवताः। न्यङ्कुसारिणी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! या सद्वैद्य ! तू प्रजाओं के रोगों को नाश करने के लिये, मधुर गुण युक्त, दिव्य गुणसम्पन्न जलों को उत्पन्न कर। उन जलों के आश्रय स्थान से उत्तम फल वाली ओषधियां उत्पन्न हों। शत० ६। ४। ३। २॥

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम्।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पृथिवी वायुश्च देवते। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे पृथिवीवासिनि प्रजे ! आकाशचारी वायु के समान सुखकारी राजा, जो उत्सुक हुई प्रजा के हृदय के प्रति खिले तो वह प्रजा के साथ भली प्रकार संधि से रहे या उसका खूब भरण पोषण करे। हे राजा ! तू जो विद्वानों के बीच प्रजा के प्राणरूप से विचरता है। हे देव, राजन् ! प्रजा के सुखप्रद उस तुझको सत्कार, यश, बल, क्षेम प्राप्त हो।

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत्स्वः ।
वासो अग्ने विश्वरूपꣳ संव्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे तेजोमय राजन् ! तू तेज के साथ उत्तम रूप से प्रकट होकर श्रेष्ठ सुखकारी गृह को प्राप्त है । हे विशेष कान्ति से युक्त ऐश्वर्य-वान् स्वामिन् ! तू विविध प्रकार के चित्र विचित्र स्वरूप के वस्त्र को धारण कर । शत० ६ । ४ । ३६ ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४१ ॥

विश्वमना वैयश्व ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे विद्वान् राजन् ! तू उत्तम अहिंसक व्यवहारों वाला होकर हमारे बीच में, अपनी धर्मपत्नी सहित और धारण-पोषण समर्थ शक्ति एवं ध्यान करने में समर्थ बुद्धि के सहित उठ खड़ा हो, उन्नत पद पर स्थिर हो । और बड़े भारी तेज से उत्तम पवित्र आचारों से युक्त होकर, उत्तम कीर्तियों और उत्तम शिक्षाओं और उत्तम गुणों सहित हमें प्राप्त हो । शत० ६ । ४ । ३ । ९ ॥

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥

कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! प्रकाशमान् सूर्य के समान आप भी राष्ट्र की उत्तम रीति से रक्षा करने के लिये हमारे ऊपर उच्च पदस्थ होकर विराज-मान हो । तू सबसे ऊपर रहकर अपने अति गतिशील योद्धाओं द्वारा अन्न, बल और युद्ध विजय का देने हारा हो । तेरी हम विविध प्रकारों से स्तुति करें । शत० ६ । ४ । ३ । १० ॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून् प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥४३॥

त्रित ऋषिः । अश्वोऽग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! वह आप नव उत्पन्न गर्भ के समान हो । आकाश और पृथिवी के बीच में सूर्य के समान अति सुन्दर और ओषधियों के द्वारा विशेष रूप से धारित-पोषित हो । हे आप विचित्र शक्ति वाले एवं प्रशंसनीय हो । बालक जिस प्रकार माताओं से शोकादि अन्धकारों को दूर करता हुआ और हर्षध्वनि करता हुआ आता है इसी प्रकार तू अन्धकार रूपी अज्ञानों को दूर करता हुआ, राष्ट्र के बनाने वाले अनुभवी पुरुषों से विद्याओं का अध्ययन करके आवे । शत० ६ । ४ । ४ । २ ॥

स्थिरो भव वीड्वङ्ग आशुर्भव वाज्यर्वन् ।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः ॥ ४४ ॥

रासभोऽग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् स्वराड् उष्णिग् वा । गांधार ऋषभो वा ॥

भा०—हे अति शीघ्रगामिन् वीर ! तू स्थिर, दृढ़ अंगों वाला, अश्व के समान वेगवान्, और ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान् हो । सुख से आश्रय करने योग्य, और अग्रणी राजा के लिये उसके ऐश्वर्य को वहन करने वाला हो । शत० ६ । ४ । ४ ३ ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता । विराट् पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे प्राण के समान प्रिय विद्वन् ! तू मानव प्रजाओं के लिये कल्याणकारी हो । तू आकाश और पृथिवी के बीच के प्राणियों को संतप्त मत कर । अन्तरिक्षस्थ प्राणियों का भी मत सता । वनस्पतियों को भी कष्ट मत दे, उनका व्यर्थ नाश मत कर । शत० ६ । ४ । ४ । ४ ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भꣳ समुद्रियम् । अग्न आयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

वाजी रासभोऽग्निर्देवता । ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—बलवान् पुरुष मेघ के समान गर्जन करता हुआ शत्रु पर आगे बढ़े । बल से शोभायमान पुरुष आक्रमणकारी सिंह के समान गर्जता हुआ आगे बढ़े । पालन करने वाले तेजस्वी राजा को पुष्ट करता हुआ आयु के पू॰ न मरे । बलवान् पुरुष सेना के महा-समुद्र के बीच तथा आप्त प्रजाओं के मध्य में विराजमान्, तथा सुखों के वर्षक बलवान् राजा को धारण करे । हे अग्रणी राजन् ! आप विविध ऐश्वर्यों के भोग करने के लिये हमें प्राप्त हों । शत० ६ । ४ । ४ । ७ ॥

ऋतꣳ सत्यमृतꣳ सत्यमग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरामः । ओषधयः प्रतिमोदध्वमग्निमेतꣳ शिवमायन्तमभ्यत्र युष्माः । व्यस्यन् विश्वा अनिरा अमीवा निषीदन्नो अप दुर्मतिं जहि ॥ ४७ ॥

अग्निर्देवता । विराड ब्राह्मी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार तेजस्वी विद्वान् पालन करने में समर्थ परंतप राजा को पुष्ट करता है उसी प्रकार हम लोग यथार्थ ज्ञान को तथा वेद-ज्ञान को धारण करें । जैसे ओषधियां अति प्रसन्न होकर लहलहाती हैं उसी प्रकार आप लोग कल्याणकारी तथा आप लोगों के प्रति आते हुए इस शत्रुसंतापक राजा को प्राप्त कर हर्ष प्रकट करो हे विद्वन् ! तू समस्त प्रकार की अन्नादि के नाशक दैवी विपत्तियों को दूर करता हुआ, स्वयं रोग रहित होकर विराजमान् होता हुआ हमारी दुष्टमति को दूर कर । शत० ६ । ४ । ४१०—१६ ॥

ओषधयः प्रतिगृभ्णीत पुष्पवतीः सुपिप्पलाः ।
अयं वो गर्भ ऋत्वियः प्रत्नꣳ सधस्थमासदत् ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे वीर प्रजाजनो! आप लोग पुष्टिप्रद अन्न आदि से समृद्ध और उत्तम रक्षासाधनों से युक्त होकर सुरक्षित रहो। यह राजा तुम्हें ग्रहण करने में समर्थ है। वह पूर्व प्राप्त उच्च स्थान को प्राप्त किये रहे। शत० ६।४।४।१७॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहꣳ सुहवस्य प्रणीतौ ॥ ४९ ॥

उत्कील कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन्! तू बड़े बल से तेजस्वी होता हुआ, राष्ट्र के रोग स्वरूप दुष्ट शत्रुओं को नाना प्रकार से पीड़ित कर। बड़े भारी तथा उत्तम सुखकारी तेजस्वी राजा के राष्ट्र गृह में मैं प्रजावर्ग, सुख पूर्वक आह्वान योग्य राजा की उत्कृष्ट नीति में रहूँ। शत० ६।४।४।२०॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥

सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे आप्तजनो! आप लोग जलधारा के समान शीतल सदा रहते हो, अतः वे आप लोग सुख को उत्पन्न करने हारे होकर, बल, पराक्रम और बड़े भारी दर्शनीय संग्राम के समान साहस योग्य उत्तम कार्य करने के लिये हमें पुष्ट करो। शत० ६।५।१५॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥

सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—पुत्रों के प्रति स्नेह से युक्त माताएं जिस प्रकार अपने उत्तम कल्याणकारी दुग्धरस से उनको पुष्ट करती हैं उसी प्रकार हे जलों के समान ज्ञानरस से पूर्ण आप्त पुरुषो! आपका जो सबसे अधिक

कल्याणकारी बल, प्रेम है, उसको इस लोक में हमें प्राप्त कराओ। शत० ६।५।१५॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।

आपो जनयथा च नः॥ ५२॥

ऋषिदेवताच्छन्दःस्वराः पूर्वोक्ताः॥

भा०—हे आप्त पुरुषो! आप लोग जिस ज्ञानरस से सुखपूर्वक इस संसार में निवास करने के लिए समस्त प्राणियों की तृप्त करते हो, हम उस रस को पर्याप्त रूप से प्राप्त हों। और हे आप्त पुरुषो! आप लोग हमें भी योग्य बनाओ। शत० ५।१।२॥

मित्रः सꣳसृज्य पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह।

सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः॥ ५३॥

मित्रो देवता। उपरिष्टाद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य विस्तृत भूमि को अपने प्रकाश से संयुक्त करके, उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को भी प्रजाओं के रोगों के नाश के लिये तेज के सहित उत्पन्न करता है, उसी प्रकार सबका स्नेही राजा मैं विशाल भूमि को तेजोमय ऐश्वर्य से युक्त करके, प्रजाओं के रोग-संताप के नाश करने के लिये, उत्तम गुणों और विद्याओं में सुविख्यात, विज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को भली प्रकार नियुक्त करता हूँ। शत० ६।५।१५॥

रुद्राः सꣳसृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे।

तेषां भानुरजस्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते॥ ५४॥

रुद्रो देवताः। अनुष्टुप। गान्धारः॥

भा०—दुष्टों को रुलाने वीर पुरुष, परस्पर मिल कर एक व्यवस्थित राष्ट्र बनाकर, पृथिवी पर सूर्य के समान बड़े भारी तेजस्वी सम्राट् को तेजस्वी बना देते हैं। उनमें से शत्रुओं से कभी विनष्ट न होने वाला,

सूर्य के समान तेजस्वी, कान्तिमान् वह राजा ही विद्वानों में बहुत प्रकाशित होता है। शत० ६।५।१।७।

संसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम्।

हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

सिनीवाली देवता। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—राष्ट्र को नियम में बांधने वाली राजसभा, विद्वानों और वीर्यवान् पुरुषों से बनी हुई पृथिवीवासिनी प्रजा को, दमन करने के बाह्य और आभ्यन्तर साधनों से विनीत बनाकर, उत्तम कर्म करने वाली बनाये।

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।

सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

अदितिर्देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः स्वरः ॥

भा०—हे अदिति अर्थात् अखण्ड शासनशक्ति! तथा हे सिनीवाली! अर्थात् राष्ट्र को नियम में बांधने वाली राजसभा, राज्यप्रबन्ध वाली राजनीति की उत्तम कर्मवाली तथा उत्तम व्यवस्था वाली है वह तेरे पृथिवीनिवासी लोगों को हाथ में कलसी के समान धारण करे

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया। माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्तु गर्भ आ। मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

अदितिर्देवता। भुरिग् बृहती। मध्यमः ॥

भा०—शिल्पी जिस प्रकार अपनी बाहुओं से मट्टी से हांडी बनाता है उसी प्रकार परमेश्वर धारण करने वाली शक्ति से इस पृथिवी को बनाता है और जिस प्रकार माता अपनी गोद में पुत्र का धारण और पालन करती है उसी प्रकार वह पृथिवी अपने भीतर अग्नि के समान तेजस्वी राजा को धारण करे। हे राजन्! तू यज्ञ और ऐश्वर्यमय राष्ट्र का शिर है मुख्य है। शत० ६।५।१।११ ॥

१वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद्ध्रुवासि पृथि-
व्यसि धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्यᳬ सजा-
तान्यजमानाय २रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद्-
ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं गौपत्यᳬ
सुवीर्यᳬ सजातान्यजमानाया३ दित्यास्त्वा कृण्वन्तु जागतेन
छन्दसाङ्गिरस्वद्ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं
गौपत्यᳬ सुवीर्यᳬ सजातान्यजमानाय ४विश्वे त्वा देवा वैश्वा-
नराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि
धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्यᳬ सजातान्
यजमानाय ॥ ५८ ॥

वसुरुद्रादित्यविश्वदेवा देवताः । (१, २) भुरिग् जगती । (३) जगती ।
(४) भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—हे पृथिवी ! हे राजन् ! तुझको ब्राह्मण बल से वसु नामक विद्वान्गण अग्नि, सूर्य, वायु और आकाश के समान तेजस्वी और बलवान् बनावें । शत्रुओं को रुलाने में समर्थ वीर सैनिक क्षात्रबल से तुझको तेजस्वी बनावें । आदानकुशल व्यापारी लोग वैश्यगण से तुझको ऐश्वर्यवान् बनावें । समस्त प्रजा के नेता लोग व्यवहार से युक्त श्रमीवर्ण के बल से तुझे बलवान् बनावें । हे पृथिवी ! तू ध्रुव, स्थिर है । तू मुझ राष्ट्रपति के लिये प्रजा, धनैश्वर्य, पशुसमृद्धि, उत्तम वीर्य धारण कर । मेरे समान बलशाली राजाओं को भी मुझ यज्ञशील राष्ट्रपति के अभ्युदय के लिये धारण कर ।

अदित्यै रास्नास्यदितिष्टे बिलं गृभ्णातु । कृत्वाय सा महीमुखां
मृण्मयीं योनिमग्नये । पुत्रेभ्यः प्रायच्छददितिः श्रपयानिति ॥५९॥

अदितिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विदुषि स्त्रि! तू अखण्ड विद्या का दान करने वाली है। हे विद्ये! तेरे गूढ़ रहस्य को अखण्डव्रत का पालन करने वाला कुमार और कुमारी ग्रहण करे। पुत्रों की माता जिस प्रकार मट्टी की हांडी को बना कर पुत्रों को दे देती है और आज्ञा दे दिया करती है कि उसको आग पर पकाओ। उसी प्रकार वह विदुषी माता पूजनीय अग्नि-स्वरूप आचार्य्य के प्रति, पुत्र-पुत्रियों को दे देती है कि आचार्य उन पुत्र पुत्रियों को परिपक्व करे, और कहे कि इस ब्रह्मविद्या को तप द्वारा परिपक्व करो। शत० ६।५।५।१२॥

वस॑वस्त्वा धूपयन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद् रु॒द्रास्त्वा॑ धूपयन्तु त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वा॑ धूपयन्तु जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत्। विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा धू॑पय॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदिन्द्र॑स्त्वा धूपयतु॒ वरु॑णस्त्वा धूपयतु॒ विष्णु॑स्त्वा धूपयतु॥ ६०॥

वस्वादयो लिंगोक्ता देवताः। स्वराट् संकृतिः गान्धारः॥

भा०—वसु आदि विद्वान्, गायत्री आदि वेदोक्त मन्त्रों द्वारा, कन्याओं और कुमारों को शिक्षित और संस्कार युक्त करें। विद्या के लिये वरण करने योग्य और समस्त विद्याओं में व्यापक विद्वान् आचार्य्य भी तुम्हें शिक्षित करे। शत० ६।५।३।१०॥

'धूपयन्तु'—धूप भाषार्थः। चुरादिः॥ 'सुगन्धान्नादिभिः, विद्या सुशिक्षाभ्यां, सत्यव्यवहारग्रहणेन, राजविद्यया राजनीत्या संस्कुर्वन्तु, इति श्रीदयानन्दर्षिः।

[1]अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वत् ख॑नत्ववट दे॒वानां॑ त्वा पत्नी॑र्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वद्द॑धतूखे धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गिर॒स्वद॒भीन्धताम् [2]उखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वी-

विश्वदेव्यावती: पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वच्छूपयन्तु खे ग्नास्त्वा देवीर्विश्वदेव्यावती: पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत् पचन्तु खे जनयस्त्वाच्छिन्नपत्रा देवीर्विश्वदेव्यावती: पृथिव्याः सधस्थे अङ्गिरस्वत्पचन्तु खे ॥ ६१ ॥

अदित्यादयो लिंगोक्ता देवताः। (१) भुरिक् कृतिः। निषादः।
(२) प्रकृतिः। धैवतः॥

भा०—विदुषी माताएँ तुझ बालक को प्राप्त करें। विदुषी स्त्रियां, श्रेष्ठ रक्षाकर्त्री स्त्रियां, वेदवाणियों के समान ज्ञानपूर्ण वा उत्तम आचार वाली स्त्रियां और अखण्डिताचार वाली स्त्रियां, अंगारों पर जिस प्रकार हांडी पकाई जाती है उसी प्रकार सन्तानों का भी धारण पोषण करें, उन्हें विद्यादि गुणों से प्रज्वलित करें, ब्रह्मचर्य आदि व्रतपालन से मन वाणी और शरीर को परिपक्व, दृढ़ करें। शत० ६।५।४।१-८॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि।
द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥ ६२ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। मित्रो देवता निचृद् गायत्री। षड्जः स्वरः॥

भा०—स्त्री अपने मित्रभूत, प्रजा के पालक कमनीय पति के पालक कमनीय पति की, नाना प्रकार की धन सम्पत्ति को, प्राप्त करे। शत० ६।५।४।१०॥

देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश आपृण ॥ ६३ ॥

सविता देवता। भुरिग् बृहती। मध्यमः॥

भा०—उत्तम हाथों वाला उत्तम अंगुलियों वाला, उत्तम बाहु वाला, और उत्तम शक्ति से युक्त तेरा पति हे स्त्रि! तुझ में सन्तानार्थ बीज वपन करे। और हे स्त्री! तू अपने पति द्वारा कभी पीड़ित न होकर

इस पृथिवी पर अपनी समस्त कामनाओं उत्तम शिक्षाओं को पूर्ण कर । श०
त० ६ । ५ । ४ । ११, १२ ॥

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।
मित्रैतां त उखां परिददाम्यभित्या एषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

उखा [कन्या] मित्रश्च देवते । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे स्त्री ! तू उठकर बड़े पुरुषार्थ वाली हो । उठ, तू स्थिर होकर खड़ी हो । हे मित्रवर ! प्रजा को खनन या प्राप्त कराने वाली इस स्त्री को मैं तुझे सौंपता हूँ, तुझ से कभी अलग न होने के लिये प्रदान करता हूँ । यह तुझसे भिन्न होकर न रहे । शत० ६ । ५ । ४ । १३ ॥

वसवस्त्वाकृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वाकृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वाकृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानरा आकृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

वस्वादया लिङ्गोक्ता देवताः । भुरिग् धृतिः । षड्जः ॥

हे स्त्री वा पुरुष ! तुमको वसु रुद्र आदित्य और विश्वदेव नामक विद्वान्गण, गायत्री आदि वेद मन्त्रों से, ज्ञानवान् तेजस्वी करें ।

आकूतिमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा मनो मेधामग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा चित्तं विज्ञातमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा वाचो विधृतिमग्निं प्रयुज्ँ स्वाहा । प्रजापतये मनवे स्वाहाग्नये वैश्वानराय स्वाहा ॥ ६६ ॥

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—अभिप्रायों का ज्ञान करने वाली तथा प्रोत्साहक शक्ति और उसको प्रयोग करने हारे ज्ञानवान् आत्मा को यथार्थ सत्य क्रिया के अभ्यास से जानो । मनन करने वाले अन्तःकरण और धारणावती बुद्धि को और उसके प्रेरक आत्मा को उत्तम योग क्रिया द्वारा प्राप्त करो । चिन्तन करने वाले तथा विशेषज्ञान के साधन और उसके प्रेरक आत्मा को उत्तम रीति से जानो । वाणी को विशेषरूप से धारण करने

वाले आत्मा को उमम रीति से प्राप्त करो। हे पुरुषो! आप लोग मननशील तथा प्रजा के पालक पुरुष का उत्तम आदर सत्कार करो। पुरुष सब पुरुषों के हितकारी सबके प्रकाशक, परमेश्वर या विद्वान् का उत्तम रीति से स्तवन, गुणगान किया करो। शत० ६ । ६ । १ । १५–२० ॥

विश्वो॑ देवस्य॑ नेतुर्मर्त्तो॑ वुरीत सुख्यम् ।
विश्वो॑ राय इषुध्यति द्युम्नं वृ॑णीत पुष्यसे स्वाहा॑ ॥ ६७ ॥

आत्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—समस्त मनुष्य सबके नायक परमेश्वर के प्रेम या मित्रता को चाहें। समस्त मनुष्य ऐश्वर्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना करें। और पुष्ट होने के लिये सत्यव्यवहार द्वारा धन ऐश्वर्य को प्राप्त करें। शत० ६ । ६ । १ । २१ ॥

मा सु भि॑त्था मा सु रि॑षोऽम्ब धृष्णु वी॒रय॑स्व॒ सु ।
अ॒ग्निश्चे॒दं क॑रिष्यथः ॥ ६८ ॥

अम्बा देवता । गायत्री । षडजः ॥

भा०—हे स्त्री! तू अपने पालक पति से भेद या द्रोह मत कर। अपने पालक पति का घात मत कर। हे स्त्री! पुत्रों की माता के समान तू दृढ़ता से पराक्रम और बल के कार्य कर। अग्नितत्त्व-प्रधान अर्थात् वीर्यवान् पति, और सोमप्रधान स्त्री दोनों मिलकर गृहस्थ कार्य करें। शत० ६ । ६ । २ ५ ॥

दृꣳह॑स्व देवि पृथिवि स्व॒स्तय॑ आसु॒री मा॒या स्व॒धया॑ कृ॒ताऽसि॑।
जुष्टं॑ दे॒वेभ्य॑ इ॒दम॑स्तु ह॒व्यमरि॑ष्टा॒ त्वमुदि॑हि य॒ज्ञे अ॒स्मिन् ॥ ६९ ॥

अम्बा देवता । त्रिष्टुप् । षड्जः ॥

भा०—हे देवि! तू अन्न से पुष्ट होकर कल्याण के लिये वृद्ध को प्राप्त हो। तेरा यह अन्न विद्वानों को तृप्तिकारक हो। तू इस यज्ञ, प्रजापति या गृहस्थ कार्य से उदय को प्राप्त हो।

द्र॒वन्नः स॒र्पिरा॑सुतिः प्र॒त्नो होता॒ वरे॑ण्यः ।
सह॑सस्पु॒त्रो अद्भु॑तः ॥ ७० ॥

सोमाहुतिर्भार्गवो ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ।

भा०—स्त्रीरूप उखा में ओषधि-वनस्पतियों का परिणाम भूत वीर्य, गर्भ में आहुति के तुल्य है । वह बलशाली और आश्चर्यकारी है जो कि पुत्ररूप से उत्पन्न होता है ।

पर॑स्या॒ अधि॑ सं॒वतो ऽव॑राँ२ ऽ अ॒भ्यात॑र ।
यत्रा॒हमस्मि॒ ताँ२ ऽ अ॑व ॥ ७१ ॥

विरूप आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे कन्ये ! उत्कृष्ट गुणों वाले और समान गुणों वाले वरों की अपेक्षा नीची कोटि के वरों को तू मत वर । और जिस पद पर मैं उत्कृष्ट पुरुष स्थिर हूँ तू भी ऐसों का वरण कर, उनको प्राप्त हो ।

प॒र॒मस्याः॑ परा॒वतो॑ रो॒हिद॑श्व इ॒हाग॑हि ।
पु॒री॒ष्यः॑ पुरुप्रि॒योऽग्ने॒ त्वं त॑रा॒ मृधः॑ ॥ ७२ ॥

आरुणिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् पुरुष ! परम श्रेष्ठ स्त्री को प्राप्त करने के लिये दूर देश से भी यहां आ, और शत्रुओं या कष्टों से पार हो । शत० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

यद॑ग्ने॒ कानि॒ कानि॑ चि॒दा ते॒ दारू॑णि द॒ध्मसि॑ ।
सर्वं॒ तद॑स्तु ते घृ॒तं तज्जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥

जगदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे पते ! हम जितने भी, अग्नि में काष्ठों के समान, आदर-योग्य पदार्थ तुझे प्रदान करें, वे सब तुझे मृग के समान पुष्टिजनक, तेजोवर्धक हों । हे उत्तम युवक ! उनको तू स्वीकार कर ।

यदत्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥

जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे पुरुष ! जिह्वा को वश करने हारी निर्लोभ स्त्री जो पदार्थ खावे, और पदार्थ प्राणों द्वारा बाहर आवे वह सब तुझे पुष्टिकारक हो ।

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥७५॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—घर पर खड़े घोड़े को जिस प्रकार नित्य नियम से घास दिया जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! हम लोग प्रतिदिन खाने पीने योग्य भोग्य-सामग्री को प्राप्त करते हुए और तुझे प्रदान करते हुए, धनैश्वर्य की समृद्धि से और अन्न की समृद्धि से तृप्त होते हुए, और तेरी बनाई धर्म-मर्यादाओं में रहते हुए कभी पीड़ित न हों । शत० ६।६।३।७॥

नाभा पृथिव्याः समिधाने अग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥७६॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—पृथिवी के मध्य में अग्नि में जिस प्रकार आहुति दी जाती है उसी प्रकार हम लोग, बड़े भारी ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये, अन्नादि पदार्थों और पृथ्वी आनि ऐश्वर्य से प्रसन्न होने वाले, महान् कीर्ति से युक्त, दानशील, संग्रामों में शत्रु को बराबर पराजय करने में समर्थ, विजयी प्रतापी पुरुष को आदर से बुलावें, उसका आदर करें । शत० ६ । ६ । ३ । ९ ॥

याः सेना अभीत्वरीराव्याधिनीरुगणा उत ।
ये स्तेना ये च तस्करास्ताँस्ते अग्नेऽपिदधाम्यास्ये ॥ ७७ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे शत्रुसंतापक राजन् ! जो हम पर आक्रमण करने वाली, सब ओर से शस्त्रप्रहार करने वाली, शस्त्र आदि उठाये हुई सेनाएं हों, और जो चोर और जो नाना हत्यादि पाप करने वाले डाकू हों, उन सबको, तेरे शत्रुओं के विनाशकारी बल में, मुख में जिस प्रकार ग्रास डाल दिया जाता है उसी प्रकार झोंक दूं। तू उनको ग्रस जा, विनाश कर। शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

दꣳष्ट्राभ्यां मलिम्लूञ्जम्भ्यैस्तस्कराँ २ऽ उत । हनुभ्याꣳ स्तेनान् भगवस्ताँस्त्वं खाद सुखादितान् ॥ ७८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य अपनी दाढ़ों से चबाकर, अगले कुतरने दांतों से कुतर २ कर, दोनों जबाड़ों से कुचल २ कर, उत्तम रीति से चबाये गये ग्रासों को खा जाता है, उसी प्रकार हे प्रतापी राजन् ! हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! दांत के समान दशन करने वाले शस्त्रों के दोनों दलों से, मलिन कार्य वाले दुष्टों को, और छुरी हत्याओं को करने वाले पुरुषों को और चोर डाकू पुरुषों को बांध २ कर मारने वाहे उपायों से, और हनन करने वाले विविध उपायों से तू चबा डाल, कुचल २ कर ग्रस ले। शत० ७ । ६ । ३ । १० ॥

ये जनेषु मलिम्लव स्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । सेनापतिरग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—जो प्रजा के लोगों में मलिनाचार वाले, और जो वन में चोर और डाकू छिपे हों, हमारे गृह के इधर उधर या नदी पर्वतादि के तटों में या राजा के पार्श्ववर्त्ती सामन्त राजाओं और अमात्य आदि में दूसरों पर पापाचार करना चाहते हैं। उन सबको दाढ़ों में ग्रास के समान तेरे वश में करता हूँ। शत० ६ । ६ । ३ १० ॥

यो अस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्यो अस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥ ८० ॥

अध्यापकोपदेशकाग्निर्देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो पुरुष हमारे प्रति शत्रु के समान बर्ताव करे, और जो जन हम से द्वेष का बर्ताव करे, और हमारी निन्दा करे और हमें मारना या हमसे छलकर हमें हानि पहुंचाना चाहे उन सबको हे राजन् ! दांतों में अन्न के समान पीस डाल । शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

सꣳशितं मे ब्रह्म सꣳशितं वीर्यं बलम् । सꣳशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः ॥ ८१ ॥

अग्निः पुरोहितो यजमानश्च देवते । निचृदार्षी पंक्तिः पंचमः ॥

भा०—जिसका मैं पुरोहित अर्थात् मार्गदर्शी होऊं उसका जयशील क्षात्रबल खूब अच्छी प्रकार तीव्र रहे । और मेरा वेदज्ञान और ब्रह्मज्ञान बल भी खूब तीक्ष्ण रहे । मेरा वीर्य और पराक्रम भी खूब तीक्ष्ण, प्रचण्ड रहे । शत० ६ । ६ । १४ ॥

उदेषां बाहू अतिरमुद्वर्चो अथो बलम् । क्षिणोमि ब्रह्मणामित्रानुन्नयामि स्वाँ२ऽअहम् ॥ ८२ ॥

अग्निः सभापतिर्यजमानो वा देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—मैं इन दुष्ट पुरुषों एवं शत्रुओं के बल वीर्यों को उल्लंघन कर जाऊं । उनके तेज और शरीर-बल या सेना-बल को भी अतिक्रमण कर जाऊं, उनसे अधिक हो जाऊं । वेदज्ञान के बल से मैं शत्रुओं का विनाश करूं । मैं अपने पक्ष के वीर पुरुषों को ऊंचा उठाऊं, उनको उन्नत पद प्रदान करूं । शत० ६ । ६ । ३ । १५ ॥

अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ ८३ ॥

अन्नपतिर्यजमानः पुरोहितश्च देवताः । उपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू हमें बलकारी, रोगरहित अन्न दे। दानशील पुरुष को खूब बढ़ा। हमारे दो पाये मनुष्य आदि और चौपाये गौ आदि पशुओं के लिए बलकारी अन्न प्रदान कर। शत० ६।६।४।७॥

॥ इत्येकादशोऽध्यायः ॥

[तत्र त्र्यशीतिर्मन्त्राः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकादशोऽध्यायः ॥

द्वादशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद् दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥१॥

वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिक् पङ्क्तिः। पंचमः॥

भा०—सर्व पदार्थों को विज्ञान द्वारा दर्शाने वाला, महान् लक्ष्मी की इच्छा करता हुआ कान्तिमान् राजा, अपराजित जीवन को विशाल पृथ्वी पर नाना तेजों से प्रकट करता है और अपना तेज दिखाता है। वह अग्रणी राजा अपने वयोवृद्ध सहायकों से अमर, अखण्डित होकर रहता है। इस तेजस्वी राजा को उत्कृष्ट वीर्यवान् तेजस्वी पिता और आचार्य उत्पन्न करता है। शत० ६।७।२।१।

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची। द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाः ॥२॥

अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार माता पिता दोनों एकचित्त होकर, विविध रुचिवाले होते हुए भी परस्पर संगत होकर, एक बालक को दुग्ध-रस-

पान कराते और अन्न से पुष्ट करते हैं उसी प्रकार अज्ञानी और ज्ञानी दोनों प्रकार के जन, परस्पर संगत होकर बालक के समान ही प्रेमपात्र एकमात्र राजा को रस, अन्न और बलद्वारा पुष्ट करते हैं। वह आकाश और पृथिवी के भीतर दीप्तिमान् सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रकाशित होता है। वीर्य, बल, अन्न को प्रदान करने वाले वीर, विजय, पराक्रम राजगण, उस अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को धारण करें। शत० ६।७।२।३॥

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद् भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॑ण्यो ऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥३॥

श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। विराड् जगती। निषादः॥

भा०—क्रान्तदर्शी पुरुष समस्त पदार्थों को प्रकट करता है, और दोपाये मनुष्यों और चौपाये पशुओं के लिये सुख-कल्याण को उत्पन्न करता है। वह सबका प्रेरक सब के वरण करने योग्य; अत्यन्त सुख-स्वरूप, स्वर्ग और मोक्ष को विशेषरूप से प्रकाशित करता, उसका उपदेश करता है। और प्रभात के प्राप्त होने के समय में जिस प्रकार सूर्य चमकता है उसी प्रकार वह भी अपने शत्रुनाशक तेज के अच्छी प्रकार प्राप्त हो जाने पर तेजस्वी होकर विराजता है। शत० ६।७।२।४॥

सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रुत्माँ॑स्त्रि॒वृत्ते॒ शिरो॑ गाय॒त्रं चक्षु॑र्बृहद्रथन्त॒रे प॒क्षौ।
स्तोम॑ आ॒त्मा छन्दा॒ᳪ᳖स्यङ्गा॑नि॒ यजू॑ᳪषि॒ नाम॑। साम॑ ते त॒नू-
र्वा॑मदे॒व्यं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॒ पुच्छं॒ धिष्ण्या॑: श॒फाः। सु॒प॒र्णो॒ऽसि ग॒रु-
त्मा॒न्दिवं॑ गच्छ॒ स्व॒: पत ॥ ४ ॥

गरुत्मान् देवता। भुरिग् धृतिर्निचृत् कृतिर्वा। ऋषभो निषादो वा॥

भा०—हे राजन्! तू सुपर्ण उत्तम अर्थात् पालन करने के साधनों से सम्पन्न, और गम्भीर-आत्मा वाला है। कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनों से युक्त साधना तेरा मुख्य व्रत है। गायत्री से प्राप्त वेदज्ञान तेरी चक्षु

है। बृहत् सर्वश्रेष्ठता और 'रथन्तर' अर्थात् रथी सैनिक ये दोनों तुझ राजशक्ति के दो पक्ष अर्थात् बाजू हैं। स्तोम अर्थात् ऋग्वेद तेरी आत्मा के समान है। नाना छन्द जिस प्रकार यज्ञ के अङ्ग हैं उसी प्रकार राष्ट्र को विपत्तियों से बचाने वाले साधन राजा के अङ्ग हैं। यजुर्वेद में प्रतिपादित राष्ट्र के पालकों के विभाग राजा के कीर्तिजनक हैं। सम्भजन योग्य तथा देवहितकारी सामरूपी उपाय तेरा स्वरूप है। नाना प्रकार के यज्ञियकर्म राज्य के पुच्छ अर्थात् आश्रय-स्थान के समान है। धारण करने में कुशल अधिकारी लोग खुरों या चरणों के समान आश्रय हैं। हे राजन्! तू पक्षवाले विशाल पक्षी के समान शक्तिमान् है, तू सुन्दर विज्ञान, प्रकाशमय लोक या राजसभा भवन को प्राप्त हो। और सुख को प्राप्त कर। शत० ६।७।२।६॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्तानुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व॥ ५॥

विष्णुर्देवता। भुरिगुत्कृतिः। षड्जः॥

भा०—हे क्रियाशीलता का पग व्यवहार! तू राष्ट्र में व्यापक सत्ता वाले राजा का अन्तः शत्रुओं को नाश करनेवाला प्रथम पग है। तू वेदज्ञ पुरुषों के त्राण करनेवाले पवित्र कार्य पर आरूढ़ हो। तू पृथिवीवासी प्रजा के अनुकूल रह कर विविध प्रकार के कार्य कर। हे द्वितीय पग! तू व्यापक शक्ति वाले राजा का दूसरा पग है अभिमानी वैरी लोगों का नाश करने हारा है। तू तीन प्रकार के बलशाली क्षात्रबल पर आरूढ़ हो और अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक एवं सर्वप्राणप्रद वायु के समान विक्रम कर। हे तृतीय पग! व्यापक राज शक्ति का तू

द्वितीय पग है, तू कर-दान न करनेवाले शत्रुओं का विनाशक है। तू वैश्यवर्ग पर बल प्राप्त कर। तू सूर्य या मेघ के समान पृथ्वी पर से जल लेकर उसी पर वर्षा कर, जगत् के उपकार करने का व्रत धारण कर, अपना पराक्रम कर। व्यापक वायु हे चतुर्थ पग! तू शत्रु के समान आचरण करने वाले द्रोहियों को नाश करने हारा है। तू समस्त प्रजा के अनुकूल सुख वृद्धि के कार्य-व्यवहार को प्राप्त कर। तू दिशाओं को विजय कर अर्थात् दिशाओं के समान सब प्रजाओं को आश्रय देने में समर्थ हो। शत० ६।७।२।१३—१६॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः॥६॥

वत्सप्रीर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—तेजस्वी राजा सिंह-गर्जना करे और मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करे। मेघ पृथ्वी को जिस प्रकार जलधारा रूप से प्राप्त होकर नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली लताओं को प्रकट करता है उसी प्रकार वह तेजस्वी राजा पृथिवी का स्वयं भोग करता हुआ नाना प्रकार से उन्नतिशील प्रजाओं को ज्ञानादि से प्रकाशित करता है। वह शीघ्र ही प्रकट होकर अपने गुणों से तेजस्वी एवं प्रकाशित होकर निश्चय से इस लोक को विशेष प्रकार से प्रकाशित करता है। और आकाश और पृथिवी के बीच सूर्य के समान राजा अपनी कान्ति से प्रकाशित होता है। शत० ६।७।३।२॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा नि वर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन।
सन्या मेधया रय्या पोषेण॥७॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे सम्मुख आने वाले एवं शत्रुओं को बार २ विजय करके पुनः लौटने वाले विजयशील राजन्! तू मेरे प्रति दीर्घ जीवन, तेज,

प्रजा, धन, धन लाभ, बुद्धि, ऐश्वर्य और पुष्टि इन सब के साथ सम्पन्न होकर प्राप्त हो। शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

अग्ने॑ऽअङ्गिरः श॒तं ते॑ सन्त्वा॒वृतः॑ स॒हस्रं॑ त ऽउपा॒वृतः॑ । अधा॒ पोष॑स्य पोषे॑ण॒ पुन॑र्नो न॒ष्टमाकृ॑धि पुन॑र्नो र॒यिमा कृ॑धि ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हे अंगारों के समान देदीप्यमान् राजन्! तेरे हमारे प्रति लौट कर आगमन भी सैकड़ों हों और तेरे हमारे समीप आगमन भी हज़ारों हों। और पुष्टिकारक धन-समृद्धि की बहुत अधिक वृद्धि से हमारे हाथ से गये धन को भी हमें पुनः प्राप्त करा। हमारे ऐश्वर्य को फिर २ प्रदान कर। शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ पुन॑रग्न इ॒षायु॑षा । पुन॑र्नः पा॒ह्यꣳह॑सः ॥९॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे विद्वान्! तू बार २ बल पराक्रम से युक्त होकर और बार २ अन्न और दीर्घ आयु से युक्त होकर लौट आ। हमें बार २ पाप से बचा। शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

स॒ह र॒य्या निव॑र्त्तस्वाग्ने॒ पिन्व॑स्व॒ धार॑या ।
वि॒श्वप्स्न्या॑ वि॒श्वत॒स्परि॑ ॥ १० ॥

अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे ज्ञानवन् राजन्! तू ऐश्वर्य के साथ और समस्त योग्य पदर्थों का भोग प्राप्त करानेहारी धारण करनेहारी विद्या और शक्ति के साथ साथ सब देशों से ऐश्वर्य को ला-लाकर देश को समृद्ध कर, और पुनः अपने देश में आ। शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

आ त्वा॑हार्षम॒न्तर॑भूर्ध्रु॒वस्ति॒ष्ठावि॑चाचलिः ।
वि॒श॑स्त्वा॒ सर्वा॑ वाञ्छन्तु॒ मा त्वद्रा॒ष्ट्रमधि॑भ्रशत् ॥ ११ ॥

ध्रुव ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजन्! तुझको स्थापित करता हूं। तू प्रजा के भीतर

सामर्थ्यवान् हो। तू अचल, ध्रुव होकर बैठ। तुझको समस्त प्रजाएं चाहें। तेरे हाथ से कहीं राष्ट्र, राज्य का वैभव न निकल जाय। शत० ६। ७। ३। ७॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम॥ १२॥

शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। विराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे शत्रुओं को बांधने वाले या वारण करने हारे राजन्! हम से शरीर के ऊपर के भाग में बंधे बन्धन को ऊपर से दूर कर। नीचे के बन्धन को गिरादे। बीच के बंधे बन्धन को विशेष रीति से शिथिल कर। और हे सूर्य के समान समस्त राष्ट्र को अपने वश में लेने हारे तेजस्वी पुरुष! हम तेरी रक्षण-व्यवस्था में रहते हुए अखण्ड राज्य भोग के लिये अपराध रहित होकर रहें। शत० ६। ७। ३। ८॥

अग्ने बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान् तमसो ज्योतिषागात्।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः॥१३॥

त्रित ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! तू महान् तथा शत्रुदाहक सेनाओं के ऊपर होकर, अपने पराक्रम रूप तेज से शत्रुरूप अन्धकार को दूर हटाता हुआ उदित हो। शत्रु के नाश करने वाले तेज से सब प्रकार से समृद्ध होकर, उत्तम राज्य के अंगों से बलवान् स्वयं भी सुदृढ़ अंगों वाला होकर, सब स्थानों को, सबके घरों को समस्त विभागों को पूर्ण कर, समृद्ध कर। शत० ६। ७। ३। १०॥

हुंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्॥ १४॥

जीवेश्वरौ देवते। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २४ ॥ शत० ६।७। ३।११।१२॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान् । मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याथं शुक्रज्योतिर्विभाहि ॥१५॥

अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! तू भूमि माता की गोद में समस्त ज्ञानों को जानता हुआ विराजमान् हो । उनको तापजनक ज्वाला के समान शस्त्र-बल से संतप्त मत कर । तू उसके भीतर प्रकाशमान् और तेजस्वी होकर विविध रूपों और गुणों से प्रकाशित हो । शत० ६ । ७ । ३ । १५॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे ।
तस्यास्त्वथं हरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता । विराड अनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—हे तेजस्विन् ! राजन् ! तू नाना ऐश्वर्यों को खोदकर निकालने की एकमात्र खान रूप भूमि पर और अपने आश्रयस्थान या आसन पर विराजमान रहकर दीप्ति से सूर्य के समान प्रज्वलित हो । और परराष्ट्र के हरण करने में समर्थ बल से तपता हुआ, हे ऐश्वर्यों से महान् ! तू उस प्रजा के लिये कल्याणकारी हो । शत० ६ । ७ । २ । ३ । १५ ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने अथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ १७ ॥

अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू मुझ राष्ट्रवासी प्रजा के लिये कल्याणकारी होकर सिंहासन पर विराज । तू कल्याणकारी है । इसलिये समस्त दिशाओं को कल्याणमय बनाकर इस राष्ट्र में अपने आश्रय स्थान पर विराजमान् हो। शत० ६ । ७ । ३ । १५ ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥

१८–१९—वत्सप्रीर्भालन्दन ऋषिः।

अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—सब से प्रथम आकाश में विद्यमान् सूर्य के समान ज्ञान में निष्ठ अग्रणी विद्वान् उत्पन्न होता है। दूसरे हममें से वेदों का विद्वान् विद्युत् के समान है। तीसरा जलों में विद्यमान् बडवानल के समान है जो कि मनुष्यों में सबसे अधिक विचारवान् है जो स्वयं नित्य-निन्तर तेज से प्रकाशमान् रहता है। उसको उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ विचारशील प्रजाजन उसकी स्तुति करते हैं। शत० ६। ७। ५। २॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ॥ १९॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—हे राजन्! तेरे तीन प्रकार के तेजों को हम जानें। और समस्त प्रजाओं के पालने में समर्थ तीनों विविधरूपों से धारण किये हुए धारण सामर्थ्यों, और बलों को भी जानें। और तेरी विद्वानों के हृदय में नमनकारी अर्थात् शत्रुओं को झुकाने वाली बल या ख्याति है उसको भी जानें। तू जिस स्थान से आता या प्रकट होता है हम उस बल आदि से सम्पन्न तेरे निकास को भी जानें। शत० ६। ७। ४। ४॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन्।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन्॥२०॥

अग्निर्देवता निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मनुष्यों के भीतर अपने चित्त को देने वाला, लोकोपकारक पुरुष उत्तम अभ्युदय के मार्ग पर प्रजाओं के बीच राजा को प्रज्वलित करता है। मनुष्यों को ज्ञानदर्शन करानेवाला विद्वान् जन ही ज्ञान-प्रकाश के उद्गम-स्थान आचार्य पद पर प्रज्वलित करता है और तीसरे सर्वोच्च

आश्रय में विराजमान् तुझको बड़े २ विद्वान् लोग प्रजाओं के बीच बढ़ावें। शत० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन्।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः २१

भा०—व्याख्या देखो अ० १२ । ६ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥२२॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—लक्ष्मियों, ऐश्वर्यों का सत्पात्रों में दान करने हारा, ऐश्वर्यों का आश्रय-स्थान, उनका धारण करनेवाला, नाना ज्ञान करानेवाली मतियों को प्राप्त करानेवाला, सोम ऐश्वर्यमय राष्ट्र या विद्वानों का रक्षक प्रजाओं का बसाने वाला, शत्रु के पराजय करने वाले बल का प्रेरक, सञ्चालक, सेनानायक राजा, दिनों के प्रारम्भ में उदय होनेवाले सूर्य के समान स्वयं अपने प्रताप से दीप्त होनेवाला, जलों या समुद्र के तल पर उठते सूर्य के समान प्रजाओं के बीच विविध प्रकार से शोभा देता है।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—जो विद्वान् पुरुष सबको अपने ज्ञान से ज्ञान कराने वाला, और प्रकट होकर राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को पूर्ण और पालन करने में समर्थ है, और जो बलवान् अभेद्य शत्रुगण को उनपर आक्रमण करता हुआ तोड़ डालता है, और जिस नायक का पाचों जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और निषाद आदर करते हैं। वह राजा सूर्य के समान प्रकाशित होता है।

उशिक् पावको अरतिः सुमेधा मर्त्येष्वग्निरमृतो निधायि।
इयर्त्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥ २४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मनुष्यों के बीच सबका वशयिता, कान्तिमान् सबको पवित्र करने वाला, अत्यधिक मतिमान्, उत्तम बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति स्थापित किया जाय । वह विद्वान् रोषरहित शत्रुओं को अपने पराक्रम से कंपाने वाले वीर्य या बल को उन्नत करता है । समस्त राष्ट्र का भरण पोषण करता हुआ अति उज्ज्वल प्रकाश से ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त होता है ॥

दृशानो रुक्म उर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः।
अग्निरमृतो अभवद् वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥२५॥

भा०—व्याख्या देखो १२ । १ ॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! जो आज तेरे लिये घृत से भरे मालपूए के समान भोज्य पदार्थ को तैयार करता है उस उत्कृष्ट पुरुष को प्राप्त कर । हे बलवान् पुरुष ! तू सर्वश्रेष्ठ सुखकारी, सात्विक पुरुषोचित अन्न को प्राप्त करे ।

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थ उक्थ आ भज शस्यमाने।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनदुज्जनित्वैः ॥२७॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पद पर सबको प्रिय हो और अग्रणी सेना-नायक के पद पर भी सर्वप्रिय हो, और अपने किये हुए कार्य से और आगे होने वाले कार्यों से भी शत्रुओं को उखाड़ता और प्रजा के उपकार के कार्यों को उत्पन्न करता है, उसको हे राजन् ! उत्तम

कीर्ति के पदों और अवसरों पर नियुक्त कर । और प्रत्येक प्रशंसा योग्य यज्ञादि कार्य के वर्णन करने के अवसर पर भी उसकी शुश्रूषा कर, उसको मान-पद प्राप्त करा ।

त्वाम॑ग्ने यज॑माना॒ अनु॒ द्यून् विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्य्या॑णि ।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ विव॑व्रुः ॥२८॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् राजन् ! तेरे से संगति करनेहारे प्रतिदिन वरण करने योग्य सब प्रकार के धनैश्वर्यों को धारण करते हैं । और वे तेरे साथ ही उद्योग से ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहते हुए कामनावान् विद्वान् पुरुष गौओं से भरी गोशाला को चाहते हैं । या वेद-वाणियों से युक्त तथा सब से अभिगन्तव्य परिव्राट् के समान विद्वान् को वरण करते हैं ।

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒रा॑ᳪं सु॒शेवो॑ वैश्वान॒र ऋषि॑भि॒ः सोम॑गोपाः ।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मनुष्यों को उत्तम सुख देने वाला, समस्त मनुष्यों का हितकारी, राष्ट्र के ऐश्वर्य का रक्षक राजा, मन्त्र द्रष्टा ऋषियों द्वारा स्तुत किया जाता है । हम राजा और प्रजा को द्वेष रहित रहने का उपदेश करते हैं । हे विद्वान् शासको ! विजयशील योद्धाओ और दानशील धनाढ्य पुरुषो ! आप लोग हमें उत्तम वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को प्रदान करो ॥

स॒मिधा॒ग्निं दु॑वस्यत घृ॒तैर्बो॑धय॒ताति॑थिम् ।
आस्मि॑न् ह॒व्या जु॑होतन ॥ ३० ॥

विरूपाक्ष आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । १ । शत० ६ । ८ । १ । ६ ॥

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वꣳसुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

तापस ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे विद्वान् राजन् ! तुझको समस्त विजयशील विद्वान् एवं दानशील पुरुष अपनी विद्याओं से और संचित शक्तियों से या बुद्धिपूर्वक किये कार्यों से पूर्ण करें, उन्नत करें, तुझे बढ़ावें । और वह तू हमारे लिये सुरूप विशेष तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, और सूर्य के समान दीप्तिमान्, कल्याणकारी हो । शत० ६ । ८ । १ । ७ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०— हे राजन् परम तेजस्वी होकर भी तू अपनी कल्याणकारी ज्वालाओं, अर्थात् शस्त्रमालाओं से प्रयाण कर, और अपने बड़े तेजों से प्रकाशित होता हुआ अपनी प्रजा को शरीर से कभी नष्ट मत कर । शत० ६ । ८ । १ । १० ॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥३३॥

भा०—व्याख्या देखो १२ । ६ । शत० ६ । ८ । १ । १३ ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्यो अतिथिः शिवो नः ॥३४॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—यह तेजस्वी राजा जब अपने भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र के समस्त सुखःदुख स्वयं भली प्रकार सुनता है, तब विशाल तेजस्वी राजा सूर्य के समान प्रकाशित होता है । और जो राजा सेनाओं से पूर्ण बलवान् शत्रु पर भी चढ़ जाने में समर्थ है वह दिव्य शक्तियों से युक्त होकर

प्रकाशित होता है। वह हमारा मंगलकारी होने से अतिथि के समान पूजनीय है। शत० ६।८।१।१४॥

आपो॑ दे॒वीः प्रति॑गृभ्णीत॒ भस्मै॒तत्स्यो॒ने कृ॑णुध्वꣳसुर॒भा उ॑ लो॒के।
तस्मै॑ नमन्तां॒ जन॑यः सुप॒त्नीर्मा॒तेव॑ पु॒त्रं बि॑भृता॒प्स्वे॑नत्॥ ३५॥

आपो देवताः। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे शान्ति आदि गुणों में व्यापक आप्त प्रजाओ! तुम लोग इस राजा के अनुरूप तेज को धारण करो। सुखकारी, ऐश्वर्यवान् लोक में, इसको रखो। उसके सुख के लिये उत्तम पत्नी रूप स्त्रियां जिस प्रकार वीर्य-धारण करने के लिये अपने प्रिय पति के सामने आदर से झुकती हैं उसी प्रकार प्रजाएँ अपने राजा के प्रति आदर से झुकें। और पुत्र को जिस प्रकार माता पालती पोसती है उसी प्रकार हे आप्त प्रजाजनो! आप लोग इस राजकीय तेज को अपने उत्तम कार्यों और व्यवहारों द्वारा पुष्ट करो। शत० ६।८।२।३॥

अ॒प्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे।
गर्भे॒ सन् जा॑यसे॒ पुनः॑॥ ३६॥

विरूप ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे तेजस्वी राजन्! जिस प्रकार जीव की जलों में स्थिति है इसी प्रकार आप्त प्रजाजनों में तेरा निवासस्थान है। जीव जिस प्रकार ओषधिरूप में उत्पन्न होता है और गर्भ में रह कर पुनः शरीर-धारीरूप से उत्पन्न होता है उसी प्रकार राजा भी दोषदहन करने वाली प्रजाओं में उत्पन्न होता है और राष्ट्र के गर्भ में बार २ राजा रूप से प्रकट होता है।

गर्भो॑ अ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॒ वन॒स्पती॑नाम्।
गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्या॑ग्ने॒ गर्भो॑ अ॒पाम॑सि॥ ३७॥

अग्निर्देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे जीव ! तू ओषधियों का गर्भ है, तू उनके भी बीच में विद्यमान् है। तू बड़े २ वृक्षों का गर्भ है अर्थात् उनके बीच में भी विद्यमान् है। समस्त उत्पन्न प्राणियों के बीच में विद्यमान् है और जलों वा प्राणों के भीतर भी विद्यमान् है। इसी प्रकार राजा तापधारक वीर पुरुषों के ग्रहण करने में समर्थ है, महावृक्ष के समान सर्वाश्रय बड़े २ पुरुषों को भी वश करने में समर्थ है। समस्त प्राणियों को वश करने में समर्थ है। और प्रजाओं को भी वश करने में समर्थ है। शत० ६।८।२।४॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने।
सᳬसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः॥ ३८॥

अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे जीव ! तू अपने देह की भस्म से पृथिवी में मिलकर और फिर जलों और मातृयोनि को प्राप्त होकर, बार २ नाना माताओं के साथ संयुक्त होकर तेजस्वी बालक होकर पुनः इस लोक में आता है। इसी प्रकार हे तेजस्वी राजन् ! अपने तेज से अपने मूलकरण उत्पादक और आश्रयरूप प्रजाओं और पृथिवी को प्राप्त होकर, ज्ञानशील पुरुषों के साथ मिलकर, तेजस्वी होकर बार २ अपने आसन पर आदर पूर्वक विराज।

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने।
शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याᳬ शिवतमः॥ ३९॥

अग्निर्ऋषिः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—जिस प्रकार माता की गोद में बालक सोता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी फिर अपने सिंहासन पर बैठकर, समस्त प्रजाओं और पृथिवी पर अधिष्ठित होकर, इस पृथिवी के भीतर सब से अधिक कल्याणकारी होकर व्याप्त, प्रसुप्त, गम्भीर होकर रह। शत० ६।८।२।६॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न इषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥४०॥

सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ॥ ४१ ॥

भा०—व्याख्या देखो १२ । ९, १० । शत० ६ । ८ । २६ ॥

बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्दे अग्ने ॥ ४२ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे युवतम ! हे बलवन् ! स्वच्छ शरीर को धारण करने योग्य अन्न के स्वामिन् ! मुझ इस प्रार्थी के अत्यन्त अधिक आवश्यक रूप से कहने योग्य और उत्तम रीति से यथाविधि आप तक पहुंचाये गये वचन को यथावत् जानो । इस न्यायकार्य में कोई तेरी निन्दा करेगा और कोई तेरी स्तुति करेगा । मैं विनीत प्रार्थी हे ! सत्य असत्य के विवेक करने-वाले राजन् ! तेरे विस्तृत शासन का गुणानुवाद करता हूँ । शत० ६ । ८ । २ । ९ ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।
युयोध्युस्मद् द्वेषाꣳसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

सोमाहुतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे धन ऐश्वर्य के पालक ! हे धन प्रदाता ! ऐश्वर्यवान् विद्वान् वह तू हमारे समस्त अभिप्राय को जान । और हम से द्वेष या परस्पर के अप्रीति के कारणों को दूर कर । समस्त राष्ट्र के कार्यों को उत्तम रीति से करनेहारे तेरे लिये हम सदा आदर वचन का प्रयोग करते हैं । शत० ६ । ८ । २ । ९ ॥

पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ यज्ञैः । घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ४४

अग्निर्देवता स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—आदित्य के समान विद्वान्, रुद्र ब्रह्मचारी, वसु ब्रह्मचारी तुझको बार २ ज्ञानवान् करें। वेद के विद्वान् लोग यज्ञों या सत्संगों द्वारा, हे ऐश्वर्य के प्राप्त करानेहारे! बार बार तुझे ज्ञानवान् करें। तू घी से अग्नि के समान, पुष्टिकारक पदार्थ से अपने शरीर को पुष्ट कर। दानशील या संगति करने हारे पुरुष के समस्त संकल्प, समस्त आशाएं सत्य हों॥

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ येऽत्र॒ स्थ पु॒रा॒णा ये च॒ नूत॑नाः।
अदा॑द्य॒मो॒ऽव॒सानं॑ पृथि॒व्या अक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥४५॥

पितरो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राष्ट्र के पालक पुरुषो! आप लोगों में से इस राज्यपालन के कार्य में जो पहले से नियुक्त और जो नये नियुक्त हैं वे दूर २ देशों में भी जायें, विविध देशों में भ्रमण करें, विविध उपायों से सर्वत्र फैल कर गुप्त दूतों का भी काम करें। सर्वनियन्ता राजा पृथिवी में तुम लोगों को अधिकार और स्थान प्रदान करता है। और राज्य के पालक लोग इस राजा के लिये इस भूलोक को वश करते हैं।

सं॒ज्ञान॑मसि काम॒धर॑ण॒म्मयि॑ ते काम॒धर॑णं भूयात्। अ॒ग्नेर्भस्मा॑-
स्य॒ग्नेः पुरी॑षमसि॒ चित॑ स्थ परि॒चित॑ ऊर्ध्व॒चित॑ः श्रयध्वम् ॥४६॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे विद्वन्! तू समस्त प्रजा को ज्ञान देनेहारा है। तेरा अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का जो सामर्थ्य है वह मेरे में भी हो। हे विद्वन्! तू अग्रणी का भस्म अर्थात् तेजःस्वरूप है। तू तेजस्वी सूर्य का लक्ष्मीसम्पन्न समृद्ध रूप है। हे प्रजाओ एवं अधिकारी पुरुषो! आप लोग ज्ञानवान् हो। आप लोग सब ओर से ज्ञान संग्रह करनेहारे और मोक्ष पद का प्रवचन या ज्ञान करनेहारे हो। आप लोग इस राष्ट्र में सुख से आश्रय पाइये। शत० ७।१।१।८॥

अयथंसो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिथंसस्वान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—यह वह ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष है जिसके आश्रय पर ऐश्वर्यवान् राजा अतिअधिक अभिलाषावान् होकर सहस्रों ऐश्वर्यों से समृद्ध अन्नादिक को और अति वेगवान् अश्व के समान आरोहण योग्य शासित समृद्ध राष्ट्र को अपने वश करनेवाले अधिकार में धारण करता है। हे ऐश्वर्यवान् पुरुष! तू दान करता हुआ ही स्तुति किया जाता है। शत० ७।१।१।२१॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे ज्ञानवन् राजन्! द्युलोक में विद्यमान् सूर्य की न्याईं जो तेरा तेज पृथिवी में विद्यमान् है, जो तेरा तेज ओषधियों में है, और हे पूज्य पुरुष! जो तेरा तेज जलों के समान शान्त-स्वभाव प्रजाजनों में है, जिस तेज से विशाल अन्तरिक्ष को भी तू व्यापता है, वह तेरा तेज अति दीप्तियुक्त, और कान्तिमान् होकर भी जल से पूर्ण समुद्र के समान गम्भीर और समस्त मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों का द्रष्टा है। शत० ७।१।१।२३॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥४९॥

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे विद्वन्! तू सूर्य या प्रकाश के विज्ञान को भली प्रकार प्राप्त करता है। जो बुद्धियों को प्रेरणा करनेवाले पदाधिकारी पुरुष हैं उन मुख्य तेजस्वी पुरुषों को तू उपदेश और अनुज्ञा प्रदान करता है। जो

आप्तजन सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अभिमत कार्य में दूर २ देश में जाते हैं, और जो आप्तजन उसके समीप रहते हैं, तू उनको भी अपने वश कर और उनको शिक्षा आज्ञा कर । शत० । ७ । १ । १ । २४ ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥ ५० ॥

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ची पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—प्रजाओं के पालन करने में समृद्ध तथा उत्कृष्ट सम्पत्तियों के लाभ करने के साधनों द्वारा सबके प्रति समान प्रेम से वर्त्ताव करनेवाले, व्यवस्थित राष्ट्र के प्रति कभी द्रोह न करनेहारे नायक पुरुष, रोगरहित बड़ी २ अन्न आदि सम्पत्ति को सेवन करें प्राप्त करें । शत० ७।१।१।२५॥

इडामग्ने पुरुदꣳसꣳ सनिं गोः शश्वत्तमꣳ हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ५१ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे विद्वन्, ! बल से स्पर्द्धा करनेवाले के लिये अन्न, भूमि और बहुत से कार्य-व्यवहारों को पूर्ण करने वाले पृथ्वी या पशुओं के भाग को सदा के लिये उन्नत कर । हमारा उत्पन्न पुत्र विविध ऐश्वर्यों का जनक वा विजयशील हो । हे विद्वन् ! वह तेरी दी हुई उत्तम मति हमारे कल्याण के लिये हो ।

अयन्ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ ५२ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । १४ ॥

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ।
परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ ५३ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजसभे ! तू 'चित्' अर्थात् भोग्य सुख साधनों का सञ्चय

करने वाली, शरीर में चेतना समान शक्ति है। तू उस राजशक्ति से युक्त होकर तथा विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर, ध्रुव होकर विराज। तू सब ओर से अपने बल को संग्रह करने वाली है। तू उस उत्कृष्ट विजय करने वाली राजशक्ति से सूर्य के समान स्थिर होकर विराजमान् हो।

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५४ ॥

अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे राजसभे! तू समस्त लोकों का पालन कर। जो कुछ त्रुटि या न्यूनता हो उसको पूर्ण कर। स्थित होकर विराजमान हो। सेनापति और राजा, तथा वेदवाणी का पालक तुझको इस आश्रयस्थान में स्थापित करते हैं।

ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ५५ ॥

इन्द्रपुत्रः प्रियमेधा ऋषिः। आपो देवताः। विराडनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—जिस प्रकार वे जलों को पूर्ण करने वाले आदित्य के रश्मिगण इसके लिये जल को परिपक्व करते हैं, और ऋतुओं के उत्पादक पूर्ण संवत्सर में सूर्य के तीनों प्रकार के सवनों अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा और शरत् में व्यापक रश्मियाँ होती हैं, उसी प्रकार बलों को बढ़ाने वाली नानाविध प्रजाएं तेजस्वी राजा के तीनों तेजों से युक्त रूपों में, विद्वानों को उत्पन्न करने वाले राष्ट्र में इस राजा के लिये समृद्ध राष्ट्र को परिपक्व करती हैं।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ५६ ॥

जेता माधुच्छन्दस ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—समस्त स्तुतियाँ समुद्र के समान विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण

या विस्तृत रथी योद्धाओं में महारथी, संग्रामों अन्नों और ऐश्वर्यों के पालक उत्तम प्रजाजनों के स्वामी राजा को बढ़ावें ।

समितꣳ सं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ ।
इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥

द्व्यग्नी देवते । भुरिगुष्णिक् ऋषभः ॥

भा०—हे राजा प्रजाओ ! तुम दोनों एक दूसरे के प्रति अति प्रेमयुक्त, एक दूसरे को प्रसन्न करने हारे, एवं एक दूसरे के प्रति शुभ चिन्तन करते हुए, एकत्र निवास करते हुए, अन्न आदि अभिलषित पदार्थों और अन्नरस को लक्ष्य करके एक साथ चलो, एक साथ समानरूप से उद्योग करो या समानरूप से संकल्प करो ।

सं वां मनांꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं न इषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥ ५८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगुपरिष्टाद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—मैं आचार्य या पुरोहित तुम दोनों के मन के संकल्प विकल्पों को समान करता हूँ । व्रतों प्रतिज्ञाओं को भी समानरूप करता हूँ । चित्तों या ज्ञानपूर्वक किये कर्मों को भी समानरूप से करता हूँ । हे ज्ञानवान् ! हे पुर में सब से अधिक समृद्ध राजन् ! तू सबका स्वामी हो । अन्न और बल को तू हमारे में से दान ील पुरुष को प्रदान कर ।

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ असि ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ ५९ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक । ऋषभः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू समृद्धिमान्, ऐश्वर्यवान् , पशु-सम्पत्ति से भी युक्त है । समस्त दिशाओं देशों और वहां की प्रजाओं को सुखी करके अपने पद पर यहाँ विराजमान् हो ।

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञᳯं हिᳯंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

दम्पती अग्नी देवते । आर्षी पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हमारे लिये तुम दोनों एक समान मन वाले, समान चित्त वाले, और एक दूसरे के प्रति अपराध न करने वाले होकर रहो । इस परस्पर की संगति को मत तोड़ो । परस्पर की इस संगति के पालक को भी मत विनाश करो । आज हमारे हित के लिये तुम दोनों ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् होकर सुखकारी होओ ।

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निᳯं स्वे योनावभारुखा । तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

पत्नी उखा देवता । आर्षी पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०— माता पुत्र को जिस प्रकार अपने गर्भाशय में धारण करती है, उसी प्रकार पृथिवी निवासिनी प्रजा भी अति समृद्ध, तथा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को अपने लोक में धारण करती है । राष्ट्र के उत्तम कार्यों के करने में समर्थ प्रजा का पालक राजा समस्त ज्ञानवान् सदस्यों, और २ समस्त विद्वानों शूरवीर योद्धाओं, एवं व्यवहारज्ञ पुरुषों से सहमति और सहयोग लेता हुआ, उसको विविध उपायों से धारण करता है ।

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य । अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥६२॥

निर्ऋतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे दुष्टों को दमन करने वाली दण्डशक्ते ! तू राजा को कर न देने वाले और राजा का आदर न करने वाले को पकड़ । चोर और निन्दनीय कार्यों के करने वाले पापी पुरुष की चाल का पीछा कर । हम से भिन्न, हमारे शत्रु को पकड़ । तेरी वही चलने योग्य चाल है । हे व्यवहार । कुशल दमन-शक्ते ! तुझे ही सब दुष्टों को नमाने वाला बल प्राप्त हो

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

निर्ऋतिदेवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे व्यापक दण्डशक्ते ! दुःसह तेज से युक्त तेरा नमनकारी बल है । तू इस लोहे से बने कारागाररूपी दृढ़ बन्धन को दूर कर । तू नियन्ता राजा और नियमकारिणी राजसभा से अच्छी प्रकार सम्मति करती हुई इस अपने राजा को उत्तम सुखमय लोक में स्थापित कर ।

यस्यास्ते घोर आसञ्जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय । यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥६४॥

निर्ऋतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे दुष्टों के प्रति भयंकर दण्डनीति ! जिस तेरे मुख्य स्थान में इन दुःखदायी बन्धनों के त्याग के लिये मैं दण्ड आदि रूप से धन आदि पदार्थ प्रदान करता हूँ, और जिस तुझको भूमि अर्थात् पदार्थों का आश्रय एवं उत्पादक कह कर लोग प्रसन्न होते हैं, उस दण्डनीति को सब प्रकार मैं प्राप्त करूं ।

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः ।
नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

यजमानो देवता । आर्षी जगती । निषादः ।

भा०—हे पुरुष ! राजा की दमनकारिणी व्यवस्था जिस दृढ़ पाश को बांधती है, मैं तेरे उस पाश को जीवन के बीच में ही काटता हूँ, उस पास का अन्त करूं । तू उत्कृष्ट रूप में होकर पवित्र भोग्य पदार्थ का भोग कर । जो दिव्य दमन व्यवस्था इस पवित्र कार्य को करती है उस ऐश्वर्यमयी देवी का हम नित्य आदर करें ।

निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभिचष्टे शचीभिः।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ ६६ ॥

विश्वावसुर्देवगन्धर्व ऋषिः। अग्निर्देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—सूर्य के समान सत्य-धर्मों का पालक ऐश्वर्यवान् राजा, राष्ट्र में बसनेवाली प्रजाओं को पृथिवी पर बसानेहारा, और उन्हें एकत्र होने का आश्रय होकर, अपनी शक्तियों से समस्त प्राणियों को देखता है। और वह ही शत्रुओं के साथ युद्ध में सर्वोपरि स्थिर रहता है।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६७ ॥

बुधः सौम्य ऋषिः। कृषीवलाः कवयो देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—बुद्धिमान् किसान हलों को जोतते हैं। और विद्वानों को सुख हो ऐसी बुद्धि से धीर पुरुष जुओं का, बैल जोड़ों का विस्तार करते हैं।

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्। गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

बुधःसौम्य ऋषिः। कृषीवलाः कवयः वा देवताः। विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हलों को जोतो, जुओं को नाना प्रकार से फैलाओ। क्षेत्र के तय्यार हो जाने पर उसमें बीज बोओ। और कृषि विद्या के अनुसार अन्न की नाना जातियाँ खूब हृष्ट पुष्ट हों। और शीघ्र ही दातरी से काटने योग्य अनाज हमारे लिये पक कर प्राप्त हो।

शुनꣳ सुफाला वि कृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तनास्मै ॥६९॥

कुमार हारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—उत्तम हल के नीचे लगी लोहे की बनी फालियें भूमि को सुख से नाना प्रकार से खोदें। किसान लोग बैलों से सुखपूर्वक जावें। वायु और और आदित्य दोनों के समान जल भूमि को सींचते हुए

किसान इस प्रजाजन के लिये अन्न आदि ओषधियों को उत्तम फल युक्त करें और उसकी कटाई करें।

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्यावंवृत्स्व ॥७०॥

कुमार हारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—फाली या हल से विदीर्ण भूमि जल और अन्न से युक्त हो। सूर्य किरणों और वर्षा की वायुओं से युक्त होकर वह खुदी भूमि जल से खूब सींची जाकर, अन्न से समृद्ध होकर पुष्टिकारक अन्न और दुग्ध आदि पदार्थों से हम सब को प्राप्त हो।

लाङ्गलं पवीरवत्सुशेवं सोमपित्सरु। तदुद्वपति गामविं प्रफर्व्यं च पीवरीं प्रस्थावद्रथवाहनम् ॥ ७१ ॥

कुमार हारित ऋषिः। कृषीवला देवताः। विराट् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—अन्न का पालक, क्षेत्र में कुटिलता से चलने वाला, सुखकारी, फाल वाला हल, गौ आदि पशु, भेड़ बकरी आदि क्षुद्र पशु, उत्तम रीति से गमन करने योग्य स्वस्थ हृष्ट पुष्ट शरीर की स्त्री और प्रस्थान करने योग्य रथ और घोड़े आदि ऐश्वर्यों को उत्पन्न करता है।

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

मित्रादयो लिंगोक्ता देवताः। आर्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेहारी कृषि! तू अपने स्नेही तथा शत्रुओं के वारक ऐश्वर्यवान् राजा के लिये, और स्त्री पुरुषों के लिये, पोषणकारी पिता माता और प्रजाओं के लिये, और ओषधियों-वनस्पतियों से सब मनोरथों को पूर्ण कर॥

वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना अगन्म तमसस्पारमस्य।
ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥

अघ्न्या देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे किसानो ! कभी न मारने योग्य और दिव्य भोगों को प्राप्त कराने वाले बैल सायंकाल मुक्त कर दिये जावें । हम लोग इस रात्रि के अन्धकार के पार प्राप्त होवें । पुनः सूर्य के प्रकाश को प्राप्त करें । अर्थात् सायंकाल को बैल जुओं से खोल दिये जायँ । रात बीतने पर प्रातःकाल पुनः कृषिकार्य में लगें ।

स॒जूर॒ब्दो अय॑वोभिः स॒जूरु॒षा अरु॑णीभिः । स॒जोष॑साव॒श्विना॒ दᳪं सो॑भिः स॒जूः सूर॒ एत॑शेन स॒जूर्वै॑श्वान॒र इड॑या घृ॒तेन॒ स्वाहा॑ ॥ ७४

लिंगोक्ता अश्विनौ सूरो वैश्वानरश्च देवताः । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार संवत्सर मास अर्ध-मास आदि काल के अवयवों से युक्त है । और जिस प्रकार किरणों से प्रभात वेला संयुक्त रहती है, पति पत्नी दोनों जैसे गृहस्थ कार्यों से परस्पर प्रेमयुक्त होकर हैं, और सूर्य जिस प्रकार अपने व्यापक प्रकाश से युक्त है, और जिस प्रकार सर्व-जीवों के भीतर विद्यमान् आत्मा अन्न से, और अग्नि जिस प्रकार दीप्तिकारी प्रकाश से संगत होकर एक दूसरे को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार हम सब सत्य-व्यवहार से युक्त होकर प्रेम से वर्तें ॥

या ओष॑धीः पूर्वा॑ जा॒ता दे॒वेभ्य॑स्त्रियु॒गं पु॒रा ।
मनै॒ नु ब॒भ्रूणा॑म॒हᳪं श॒तं धामा॑नि स॒प्त च॑ ॥ ७५ ॥

आथर्वणो भिषगृषिः । ओषधिस्तुतिः वैद्यो देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो ओषधियें दिव्यगुणों वाले पृथिवी जल आदि से वर्षा, ग्रीष्म और शरद् तीनों कालों में पहले से उत्पन्न होती हैं उन परिपाक हो जाने से बभ्रू अर्थात् भूरे रंग की हुई ओषधियों के सौ और सात अर्थात् १०७ प्रकार के धारण सामर्थ्यों को मैं जानूं । शरीर के मर्मस्थानों को पुष्ट करनेवाली औषधिओं का ज्ञान करूँ । शत० ७ । २ । ४ । २६ ॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ ७६ ॥

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे माता के समान पुष्टिकारक ओषधियो ! तुम्हारे सैकड़ों वीर्य हैं । और तुम्हारे प्ररोह, अंकुर आदि भी सहस्रों प्रकार के हैं । और तुम सैकड़ों प्रकार के कार्य करनेवाली हो । तुम मेरे शरीर को नीरोग करो । शत० ७ । २ । ४२७ ॥

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ ७७ ॥

अग्निदेवते पूर्ववत् । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ओषधियो ! तुम उत्तम फल उत्पन्न करनेहारी हो । अश्वारोही लोग जिस प्रकार परस्पर मिलकर युद्ध में विजय करते हैं और शत्रु सेना के पार करनेवाले वीर शत्रुओं को आगे बढ़ने से रोकते हैं, उसी प्रकार हे ओषधियो ! तुम भी रोगों पर मिलकर विजय करनेवाली और कष्टों से पार करने वाली हो ।

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे । सनेयमश्वं गां
वास आत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥

चिकित्सुर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे ओषधियो ! तुम माता के समान अन्नादि की पोषक हो । तुम बल-जीवन देने वाली होने से, 'देवी' कहाती हो । हे परमात्म पुरुष ! आपकी कृपा से ओषधियों द्वारा गौ, अश्व, वस्त्र और प्राण प्राप्त करें ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

वैद्या देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे वीर्यवती ओषधियो ! पीपल के वृक्ष पर भी तुम्हारी

स्थिति है, और पत्तों पर भी तुम निवास करती हो, इन्द्रियों पर प्रभाव करने वाली हो, पुरुष की सेवा करती हो।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।

विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। ओषधयो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—राजसभा में क्षत्रिय राजाओं के समान जिस वैद्य में तुम समन्वय में आश्रय लेती हो वह वैद्य दुःखदायी रोग कारणों के नाश करने में समर्थ होता है, वह रोग-नाश करनेहारा विप्र 'भिषक्' कहाता है।

अश्वावतीᳫं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।

आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ८१ ॥

आथर्वणो भिषगृषिः। वैद्यो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—मैं अति शीघ्र शरीर में व्यापने वाले गुणों से युक्त और वीर्यवती और बल-पराक्रमशालिनी, उत्कृष्ट ओज धातु की वृद्धि करनेवाली सन्ताप का नाश करनेवाली ओषधियों को, वातक रोगों के नाश करने के लिये सब प्रकार से सब स्थानों से प्राप्त करूं।

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।

धनᳫंसनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥

भिषगृषिः। ओषधयो देवताः। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—गौओं के बाड़े से जिस प्रकार गौएं निकलती हैं उसी प्रकार हे रोगी पुरुष! तेरे शरीर से ओषधियों के बल प्रकट होते हैं। ये औषधियां तुम्हें बल तथा शक्ति का धन देती हैं, तथा तेरी आत्मा को शरीर में बनाए रखती हैं।

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयᳫंस्थ निष्कृतीः।

सीराः पतत्रिणी स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

भिषगृषिः। वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे ओषधियो ! तुम्हारे लिये रोगियों की इच्छा तुम्हें निर्माण करने वाली है, क्योंकि तुम रोगों का निराकरण करने वाली हो। तुम सीर अर्थात् हल से भी पैदा की जाती हो। और शरीर में व्याप्त होकर रोग को बाहर कर देने और शरीर की रक्षा करने में समर्थ होने से तुम 'पतत्रिणी' हो। जो भी पदार्थ शरीर में रोग उत्पन्न करता है उसको बाहर कर देती हो।

अति विश्वाः परिष्ठा स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः॥ ८४॥

आथर्वणो भिषग् ऋषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—चोर जिस प्रकार गौओं के बाड़े पर आक्रमण करता है उसी प्रकार चारों ओर थित समस्त ओषधियां रोग-समूह पर आक्रमण करती हैं, और जो कुछ भी शरीर का दुःखदायी रोग होता। उसको दूर कर देती हैं।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा॥ ८५॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। अनुष्टुप् गान्धारः॥

भा०—जब मैं इन ओषधियों को अधिक बलशाली बनाकर अपने हाथ में लेता हूँ, तब पूर्व के समान ही जीवन को ले लेने वाले राजयक्ष्मा का भी मूल कारण नष्ट हो जाता है।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव॥ ८६॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। निचृदनुष्टुप्। गन्धारः॥

भा०—ओषधियाँ जब जिस रोगी पुरुष के अंग अंग और पोरु पोरु में अच्छी प्रकार फैल जाती हैं तब मर्मों को काट देने वाले बलवान् राजा के समान, उस शरीर से वे रोग को विनष्ट कर देती हैं।

साकं यक्ष्म प्र प॑त चाषेण॑ किकिदीविना॑।

साकं वात॑स्य ध्राज्या॑ साकं न॑श्य निहाक॑या ॥ ८७ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। विराडनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—हे यक्ष्म ! राजरोग ! तू ज्ञानपूर्वक प्रयोग किये गये भोजन के साथ ही परे भाग जा। और प्राण-वायु की प्रबल गति के साथ दूर भाग जा अर्थात् प्राणायाम द्वारा नष्ट हो। और रोग को निःशेष दूर करने की प्रक्रिया वा रोग-पीड़ा के साथ तू नष्ट हो।

अ॒न्या वो॑ अ॒न्याम॑वत्व॒न्यस्या॒ उपा॑वत।

ताः सर्वा॑ः संविदा॒ना इ॒दं मे॒ प्राव॑ता॒ वच॑ः ॥ ८८ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। विराडनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—ओषधियाँ एक दूसरी की रक्षा करें। एक दूसरी के गुणों और प्रभावों की रक्षा करें। वे सब परस्पर सहयोग करती हुईं मेरे इस वचन को अच्छी प्रकार पलन करें।

याः फ॒लिनी॒र्या अ॑फ॒ला अ॑पु॒ष्पा याश्च॑ पु॒ष्पिणी॑ः।

बृह॒स्पति॑प्रसूता॒स्ता नो॑ मुञ्च॒न्त्वꣳह॑सः ॥ ८९ ॥

ऋषिदेवतादि पूर्ववत् ॥

भा०—जो ओषधियाँ फल वाली हैं और जो फल रहित हैं, जो फूल वाली नहीं हैं और जो फूल वाली हैं, वे सब बड़े लोकों के स्वामी परमेश्वर से उत्पादित, वा बृहती आयुर्वेद-विद्या के पालक उत्तम विद्वानों द्वारा प्रयोग की जाकर, हमें रोगजन्य दुःख से छुड़ावें।

मु॒ञ्चन्तु॑ मा शप॒थ्या॒दथो॑ वरु॒ण्या॒दुत।

अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शात्सर्व॑स्माद् देवकिल्बि॒षात् ॥ ९० ॥

वन्धुर्ऋषिः। वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे ओषधियो ! कुपथ्य या निन्दा योग्य कर्म से होने वाले

कष्ट से, निवारण करने योग्य रोग से, मृत्यु के बन्धन से, और इन्द्रियों में बैठे विकारों से तुम मुक्त करती हो।

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि।

यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ ६१ ॥

बन्धुर्ऋषिः। वैद्या देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—प्रकाशमान् सूर्य से आने वाली किरणों के समान ज्ञानवान् वैद्य-पुरुष के पास से आती हुई वीर्यवती ओषधियां मानो कहती हैं कि जिस प्राणधारी के शरीर को हम व्याप लेती हैं वह पुरुष कभी पीडित नहीं होता।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।

तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे ॥ ६२ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—जो ओषधियाँ सोमवल्ली के गुणों से प्रकाशित होती हैं और सैकड़ों रोगों के दूर करने में नाना प्रकार से उपदेश की जाती हैं, उनमें से हे विशेष ओषध! तू सब से अधिक उत्तम है। तू यथेष्ट सुख के प्राप्त करने के लिये और हृदय को शान्ति देने के लिये पर्याप्त है।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।

बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्य्यम् ॥ ६३ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—सोम जिनमें मुख्य है ऐसी जो ओषधियाँ पृथिवी पर स्थित हैं वे वेद विद्या के पालक विद्वान् द्वारा प्रयोग की गईं या परमेश्वर द्वारा उत्पादित हैं। वे इस रोगिणी स्त्री को विशेष बल प्रदान करें।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।

सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्य्यम् ॥ ६४ ॥

भिषजो देवताः। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—जो ओषधियाँ इस प्रकार सुनी जाती हैं, और २ जो दूर २ तक फैलाई गई हैं, वे सब मिलकर इस रोगिणी स्त्री को वीर्य अथवा बल प्रदान करें।

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।

द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳसर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

वैद्या देवताः। विराडनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे ओषधियो! तुमको खो देने वाला तुम्हें विनाश न करे। और जिसके लिये मैं तुमको खोदूं। हमारे वह सब मनुष्य और पशु नीरोग सुखी हों।

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा।

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

वैद्या देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—ओषधियाँ सोम लता के साथ मानो संवाद करती हैं कि हे राजन्, सोम! वेदज्ञ विद्वान् जिस के लिये हमें तैयार करके प्रदान करता है उसको हम रोगों से पार करती हैं।

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि।

अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ९७ ॥

भिषग्वरा देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे ओषधे! तू बल का नाश करने वाले कफ रोग को, बवासीर और दोषों के एकत्र होजाने से उठने वाले गण्डमाला आदि रोगों का नाश करने वाली है। इसी प्रकार के सैकड़ों रोगों और पकने वाले फोड़े का भी नाश कर देने वाली है।

त्वां गन्धर्वा अखनँस्त्वामिन्द्रस्त्वां बृहस्पतिः।

त्वामोषधे सोमो राजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत ॥ ९८ ॥

वैद्या देवताः। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे ओषधि ! तुझको भूमि के पालक किसान आदि या गन्ध सूंघकर ठीक २ वस्तु पा लेने वाले विशेषज्ञ लोग खोदते हैं । तुझको ऐश्वर्यवान् तथा बड़े राष्ट्र का पालक और राजा सोम और विद्वान् पुरुष भी प्राप्त करता है और वह यक्ष्मा रोग से मुक्त होता है ।

सहस्व मे अरातीः सहस्व पृतनायतः ।
सहस्व सर्वं पाप्मानꣳसहमानास्योषधे ॥ ९९ ॥

ओषधिर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ओषधि ! तू रोग को पराजित करनेहारी है । तू समस्त पापाचार को विनष्ट कर । शत्रुरूप मेरे रोगों को पराजित कर और इकट्ठे होकर चढ़ाई करने वाले रोगों को भी बलपूर्वक पराजित कर ।

दीर्घायुस्त ओषधे खनिता यस्मै च त्वा खनाम्यहम् ।
अथो त्वं दीर्घायुर्भूत्वा शतवल्शा वि रोहतात् ॥ १०० ॥

वैद्या देवताः । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—तुझे खोदकर प्राप्त करनेवाला और जिसके लिये तुझको मैं खोद कर प्राप्त करता हूँ हे ओषधे ! वह दीर्घ आयु वाला हो और हे औषधे ! तू भी दीर्घ आयु वाली होकर सैकड़ों अंकुरों सहित विविध प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो ।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ २॥ अभिदासति ॥१०१॥

भिषजो देवताः । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ओषधे ! तू सबसे श्रेष्ठ है । वट आदि वृक्ष तेरे समीप संघ बनाकर ठहरते हैं । जो रोज हमें दुःख देता है वह हमारे वश में हो ।

विशेष ओषधिसूक्त देखो ऋषि अथर्वा दृष्ट अथर्ववेद का० ८ । सू० ७ ॥

मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳसत्यधर्मा व्यानट् । यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०२ ॥

हिरण्यगर्भ ऋषिः । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो परमेश्वर पृथिवी का उत्पादक है और जो सत्य के बल से जगत् को धारण करने वाला होकर द्यौलोक, आकाश और सूर्य को विविध प्रकार से व्याप्त है । और जो सबसे प्रथम विद्यमान् होकर जलों और वायुओं और प्राणों को और ज्योति वाले सूर्य चन्द्र आदि लोकों को उत्पन्न करता है, उस सुखमय उपास्य देव की हम भक्ति और स्तुति से अर्चना करें । वह मुझे कभी नाश न करे । शत० ७ । ३ । १ । २० ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।
वपान्ते अग्निरिषितो अरोहत् ॥ १०३ ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू यज्ञ और पुष्टिकारक अन्न के साथ सब प्रकार से वर्तमान रह । कामनावान् अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष या राजा तेरे बीज-वपन करने के स्थानों में बीज वपन करे और अन्न प्राप्त करे । शत ७ । ३ । १ । २१ ।

अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम् ।
तद् देवेभ्यो भरामसि ॥ १०४ ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् राजन् ! जो तेरा शुद्ध, जो आह्लादकारी, जो पवित्र और जो यज्ञ योग्य तेज है, उसको हम प्रजागण विजयी वीर पुरुषों के लिये प्राप्त कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ १०५ ॥

विद्वान् देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मैं इस पृथवी से अन्न और बलकारक समस्त उत्तम भोजन

प्राप्त करूं। इस पृथ्वी से सत्य-ज्ञान के कारणरूप महान् परमेश्वर के सत्य-ज्ञान को धारण करनेवाली वेदवाणी को भी प्राप्त करता हूँ। वह अन्न बल और सत्यज्ञान मुझे प्राप्त हो। और वही अन्न हमारी इन्द्रियों और शरीरों में भी प्राप्त हो। और अन्न के अभाव वाली रोगों से उत्पन्न करने वाली, तथा भुखमरी आदि विपत्ति का मैं त्याग करूं, उसको हटाऊँ शत०। २। १। २३॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे॥ १०६॥

पावकोऽग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे ज्ञानवान्! हे विशेष ज्ञानदीप्ति में बसने वाले तेजोधन! तेरा बड़ा भारी ज्ञान और बड़ा भारी जीवन सामर्थ्य है। ये गुण अग्नि की ज्वालाओं के समान प्रकाशित होते हैं। हे महान् दीप्ति वाले सूर्य के समान् तेजस्विन्! क्रान्तदर्शिन् विद्वान्! तू बल से ज्ञान और वीर्य को दानशील पुरुषों अथवा दान-योग्य विद्यार्थी पुरुष को प्रदान करता है। शत० ७। ३। १। २९॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥१०७॥

पावकोग्निर्ऋषिः। अग्निर्विद्वान् देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—अग्नि के समान पवित्रकारी तेज वाला, वीर्य के समान विशुद्ध तेजवाला, किसी से भी न्यून-बल न होकर राजा अपने तेज से सूर्य के समान ऊपर उठता है। और माता पिता दोनों के बीच जिस प्रकार पुत्र निर्भय होकर विचरता है उसी प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच पुरुषों को त्राण करने में समर्थ होकर विविध प्रकार से विचरता हुआ तू उनमें प्राप्त हो और दोनों का पालन पोषण कर। शत० ७। ३। १। ३०॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । निचृत्पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—अपने बल और पराक्रम को कभी धर्म-मार्ग से न गिरने देने वाले हे विद्वान् राजन् ! तू उत्तम शासन-क्रियाओं से और सुख्यातियों से अंगुलियों के समान अग्रगामी धारण-शक्तियों से प्रजा का हितकारी होकर सुप्रसन्न हो । तुझ में नाना धन गौ आदि पशु चित्र और विविध रक्षा साधनों से सुरक्षित, उत्तम वंशों में उत्पन्न हुई प्रजाएं, अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्राप्त करें ।शत० ७ । ३ । १ । ३१ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥ १०९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे राजन् ! वह तू दर्शनीय शरीर से विशेष दीप्ति से चमकता है । सनातन से चली आई प्रज्ञा और शक्ति को धारण और पूर्ण किये रहता है । हे प्रतापवन् ! तथा हे नाशवान् साधारण मनुष्यों से भिन्न विशेष पुरुष ! गौ आदि जन्तुओं से हमारे उपकार के लिये धन-ऐश्वर्यों को बढा । शत० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥११०॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । आर्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हिंसा रहित व्यवस्था के करने वाले, प्रकृष्ट ज्ञानवान् राष्ट्र में निवास करने वाले, बड़े भारी और अति सुन्दर जन के देने वाले पुरुष को, और उत्तम ऐश्वर्ययुक्त बड़ी भारी अन्न-समृद्धि को और अक्षय सम्पत्ति को भी तू धारण करता है, अतः तू पूजनीय है । शत० ७ । ३ । १ ३ ३॥

ऋ॒तावा॑नं महि॒षं वि॒श्वद॑र्शतम॒ग्निꣳ सु॒म्नाय॑ दधिरे पु॒रो जना॑ः ।
श्रुत्क॑र्णꣳ स॒प्रथ॑स्तमं त्वा गि॒रा दैव्यं॒ मानु॑षा यु॒गा ॥ १११ ॥

पावकोऽग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—सत्य ज्ञानवान्, महान्, सब प्रकार से दर्शनीय, अग्नि के समान तेजस्वी, गुरु के उपदेश को अपने कानों में सदा धारण करने वाले, विद्वानों में कुशल तुझ विद्वान् राजा को, प्रजा के लोग अपने सुख के लिये मुखिया रूप से स्थापित करते हैं। और विस्तृत यश के पात्र तुझको मनुष्यों के जोड़े अर्थात् सभी नर नारी वाणी से प्रतिष्ठित करते हैं। शत० ७ । ३ । १ । ३४ ॥

आप्या॑यस्व॒ समे॑तु ते वि॒श्वत॑ः सोम॒ वृष्ण्य॑म् ।
भवा॒ वाज॑स्य सङ्ग॒थे ॥ ११२ ॥

गोतम ऋषिः । सोमो देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! तेरा बलशाली कार्य सर्वत्र प्राप्त हो। तू सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो। वीर्यवान् वेग या ऐश्वर्य के निमित्त होने वाले संग्राम में तू विजयी हो। शत० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

सं ते॒ पया॑ꣳसि॒ समु॑ यन्तु॒ वाजा॒ः सं वृष्ण्या॑न्यभिमाति॒षाह॑ः ।
आ॒प्याय॑मानो अ॒मृता॑य सोम दि॒वि श्रवा॑ꣳस्युत्त॒मानि॑ धिष्व ॥ ११३ ॥

गोतम ऋषिः सोमो देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे प्रेरक ! तुझे पुष्टिकारक पदार्थ प्राप्त हों। और अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ वीर्यवान् और वेगवान् पदार्थ तुझे प्राप्त हों। इसी प्रकार सब प्रकार के बल भी तुझे प्राप्त हों। आकाश में चन्द्र के समान प्रतिदिन बढ़ती कलाओं से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ सन्तति-परम्परा से सदा अमर या चिरस्थायी या शतवर्ष पर्यन्त दीर्घ जीवन अन्न का सेवन कर। शत० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

आप्यायस्व मन्दितम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः ।
भवा नः सप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

सोमो देवता । आर्ष्युष्णिक । ऋषभः ॥

भा०—हे अति प्रसन्नचित ! हे ऐश्वर्ययुक्त राजन् ! तू समस्त अंशों में वृद्धि को प्राप्त हो । तू वृद्धि के लिये हमारा अति अधिक विस्तृत यशों और गुणों से प्रसिद्ध कीर्तिमान् मित्र हो ।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ११५ ॥

अवत्सार ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे तेजस्विन् पुरुष ! बछड़ा जिस प्रकार अपनी माता के साथ बांध दिया जाता है उसी प्रकार परम आश्रयस्थान से प्राप्त हुई जिस वाणी से हम तेरे प्रति अधिक प्रेम प्रदर्शन करते हैं उस वेद वाणी से ही तेरे चित्त को बांधा जाता है । तू उससे बद्ध होकर राष्ट्र की व्यवस्था करे । शत० ७ । ३ । २ । ८ ॥

तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥

विरूप ऋषिः । अग्निर्देवता गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे जलते अंगारों वा अग्नि के समान तेजस्विन् ! वे नाना उत्तम प्रजाएं पृथक् २ कामना करने योग्य तुझ राजा को प्राप्त हों । शत० ७ । ३ । २ । ८ ॥

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी जो उत्पन्न प्रजाओं और आगामी काल में आने वाले प्रजाजनों या सभासदों को प्रिय लगने वाले

स्थानों पर भी, सबसे कामना करने योग्य हो, वह एक मात्र सम्राट् होकर राज्यसिंहासन पर विशेष रूप से शोभा प्राप्त करता है ॥ शत० ७ । ३ । २ । ९ ॥

इति द्वादशोऽध्यायः

[तत्र सप्तदशोत्तरशतमृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ मयि गृह्णाम्यग्रे अग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजा-स्त्वाय सुवीर्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

अग्निर्देवता । आर्ची पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—सबसे प्रथम अपने ऊपर नियन्ता रूप में, ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को, धनैश्वर्य समृद्धि के प्राप्त करने के लिये उत्तम प्रजाएं प्राप्त करने के लिये, और उत्तम बल प्राप्त करने के लिये मैं स्वीकार करता हूँ। जिसके अनुग्रह से उत्तम गुण मुझे प्राप्त हों । ७ । ४ । १ । २ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ऽआ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२

भा०—व्याख्या देखो (अ० ९ । २९) । शत० ७ । ४ । १ । ९ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥३॥

ब्रह्मा ऋषिः । आदित्यो देवता । निचृद् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सब प्रथम प्रकट हुए सब से प्रथम, एवं सब से अधिक विस्तृत सब से महान्, ब्रह्म रूप में परमात्मा की शक्ति को वही कांति-

मान्, प्रकाश स्वरूप परमेश्वर समस्त लोकों के बीच में व्यवस्था रूप से व्याप्त होकर समस्त रुचिकर तेजस्वी सूर्यों को विविध रूप से प्रकट करता है। वही परमेश्वर इस महान् शक्ति के बतलाने वाले निदर्शक नाना स्थलों में और नाना रूपों में स्थित आकाशस्थ लोकों को भी विविध रूप से प्रकट करता है। और वही परमेश्वर इस व्यक्त जगत् के और अव्यक्त मूल कारण के भी आश्रयस्थान आकाश को प्रकट करता है।

सब से प्रथम ब्रह्मशक्ति उत्पन्न होती है। वही मर्यादा से तेजस्वी क्षत्रियों को भी प्रकट करती है। वही इस राष्ट्र के विशेष स्थिति वाले आश्रयभूत वैश्यवर्ग को उत्पन्न करती है। और वही सत् और असत् के आश्रय सामान्य प्रजा को भी उत्पन्न करती है। शत० ७।४।१।१४॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भ ऋषिः। कः प्रजापतिर्देवता। आर्ची त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—सृष्टि के आदि में स्वर्ण के समान दीप्त सूर्यों और ज्ञानी पुरुषों को अपने गर्भ में धारण करने वाला, सब का वशी इस उत्पन्न होने वाले विश्व का एकमात्र उत्पादक और पालक रहा और उसमें व्याप्त होकर सदा रहता भी है। और वही इस सर्वाश्रय पृथिवी को और आकाश या तेजोदायी सूर्यादि को भी धारण करता है उस सुखस्वरूप प्रजापति की हम भक्तिपूर्वक उपासना करें। शत० ७।४।१॥१८॥

सुवर्ण अर्थात् कोश का ग्रहण करने वाला राजा समस्त राष्ट्र के उत्पन्न प्राणियों का एकमात्र पालक है। वह ही पृथिवीस्थ नारियों और सूर्य के समान पुरुषों को भी पालता है। उसी प्रजापति राजा की हम अन्न और आज्ञा पालन द्वारा सेवा करें।

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः॥ ५ ॥

अथर्वा ऋषिः । ईश्वर, आदित्यो देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् ॥

भा०—आदित्य का तेज पृथिवी पर प्रकाश और मेघजल के रूप में प्राप्त होता है। और फिर वह आकाश में जाता है। जो स्वयं आदि में पूर्व या पूर्ण है वह इस स्थान को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार अपने समान अनुरूप आश्रय-स्थान को प्राप्त करते हुए हर्ष के करणरूप आदित्य को जिस प्रकार सातों आदानकारी दिशाओं फैलता देखते हैं उसी प्रकार मैं आनन्द और हर्ष के हेतु के हेतु वीर्य को सातों प्राणों में संचारित करूं।

प्रजा का हर्षजनक राजा जो कि पूर्ण शक्तिमान् है वह पृथिवी का और सूर्य का अनुकरण करता हुआ पृथिवी को प्राप्त होता है। भूलोक के समान उत्पादक, समान रूप से संचरण करनेवाले, हर्षकारी उस राजा को सात प्राणों में वीर्य के समान, सातों दिशाओं में स्थापित करता हूँ। शत० ७। ४। १। २०॥

नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

६—८ सर्पाः देवताः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जो कोई भी इस पृथिवी पर और जो अन्तरिक्ष में और जो दूर आकाश में विद्यमान् लोक हैं उन सर्पण स्वभाव गतिमान् लोकों को अन्न प्राप्त हो और उन सर्प के स्वभाव वाले दुष्ट पुरुषों का उत्तम रीति से दमन हो।

इमे वै लोकाः सर्पाः या एव एषु लोकेषु नाष्ट्रा, व्यद्वरो या शिमिदा तदेवैतत्सर्वं शमयति। शत० ७। ४। १। २८॥

राजाओं के प्रति जाने वाले, प्रजाओं में फैले हुए, और शासक जनों में फैले हुए, गुप्त रूप से गतिशील चरों की हम नियम व्यवस्था करें।

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ१ रनु ।
ये वाऽवटेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः ॥

भा०—जो प्रजा को पीड़ा देनेवाले दुष्ट पुरुषों के प्रजानाशक साथी हैं और जो वनों में छिपकर रहते हैं, और जो वृक्षों जो गढ़ों में रहने वाले सापों के समान गुप्त रूप से रहते हैं, उन सब कुटिल स्वभाव के लोगों का भी दमन हो। शत० ७।४।१।२९ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु ।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । निचृद् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—जो सूर्य या विद्युत् के प्रकाश में, और जो सूर्य की रश्मियों में चलते फिरते हैं, और जिनका जलों के भीतर निवास स्थान आश्रय दुर्ग बना है, उन कुटिल लोगों को भी राजा अपने वश करे। शत० ७।४।१।३० ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ२ऽ इभेन ।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानो ऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥

देवा वामदेवश्च ऋषयः । अग्निः प्रतिसरो देवता । रक्षोघ्नी ऋक् । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ।

भा०—हे सेनापति ! तू बल को उत्पन्न कर, अमात्य पुरुषों से युक्त होकर सुव्यवस्थित पृथिवी को हस्तिबल से राजा के समान प्राप्त हो। और विस्तृत उत्कृष्ट बन्धनों से युक्त राज्यव्यवस्था के अनुसार विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को विनाश करता हुआ तू उन पर बाण आदि शस्त्रों के फेंकने वाला हो और विघ्नकारी पुरुषों को अति संताप-जनक साधनों या शस्त्रों से ताड़ना कर, दण्डित कर। शत० ७।४।१।३४ ॥

तव भ्रमास आशुया पतन्त्यनु स्पृश धृषता शोशुचानः ।
तपूंष्यग्ने जुह्वा पतङ्गानसन्दितो विसृज विष्वगुल्काः ॥ १०

देवा वामदेवश्च ऋषयः । रक्षोहा अग्निर्देवता । भुरिक् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तेरे शीघ्र गमन करने वाले भ्रमणशील वीर जन वेग से जायं । तू अति तेजस्वी होकर शत्रु के मान नष्ट करने में समर्थ बल से युक्त होकर उनके पीछे लगा रह । हे अग्नि के समान राजन् ! तू शत्रु के जाल में न पड़ कर शस्त्रों को प्रेरित करनेवाली सेना द्वारा सन्तापकार अस्त्रों को नाना प्रकार से छोड़ । तीव्र घोड़ों, घुड़सवारों या बाणों को छोड़ । और सब ओर को टूटते तारों के समान वेग और दीप्ति से आकाश मार्ग से जाने वाले अग्निमय अशनि नामक अस्त्रों को चला ।

प्रति स्पशो विसृज तूर्णितमो भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः ।
यो नो दूरे अघशंसो यो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ॥ ११ ॥

देवा वामदेवश्च ऋषयः । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे अग्रनायक राजन् ! जो पापाचरण करने को कहता है वह और जो हमारे से दूर है और जो हमारे पास है वह हमें व्यथादायी होकर तेरी आज्ञा भंग न कर सके । इसलिये तू अति वेगवान् होकर प्रतिहिंसक प्रतिभटों को और अपने दूतों को शत्रु के प्रति भेज । और स्वयं शत्रु से मारा न जा कर इस प्रजा का पालन करने हारा हो ।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष्व न्यमित्राँ२ऽ ओषतात्तिग्महेते ।
यो नो अरातिथंसमिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् १२

वामदेवो देवाश्च ऋषयः । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पांक्तिः पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू उठ, शत्रु के प्रति आक्रमण करने के लिये तैयार हो । शत्रु के विपरीत अपने बल और राज्य को विस्तृत कर । हे तीक्ष्ण शस्त्रों से युक्त राजन् ! तू शत्रुओं को सर्वथा जला डाल । हे उत्तम तेजस्विन् ! जो हमारे साथ शत्रुओं का सा व्यवहार करता है उसको सूखे वृक्ष को अग्नि के समान नीचे गिरा कर जला डाल ।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि॥ १३॥

वामदेवो देवाश्च ऋषयः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यतिजगती। निषादः॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन्! तू सब से ऊंचा होकर रह। दिव्य पदार्थों से बने अस्त्रों को प्रकट कर। दृढ़ धनुषों को नंवा। वेग से चढ़ाई करने वाले शत्रुओं के भोजन द्रव्य तथा उससे अतिरिक्त द्रव्य को अपने वश करके शत्रुओं का नाश कर। हे राजन्! तुझको अग्नि के तेज से स्थापित करता हूँ। शत० ७।४।१।७॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि॥१४॥

भुरिगनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—व्याख्या देखो० अ० ३।१२॥ जिस प्रकार द्यौलोक का शिरो भाग सूर्य है और वह ही सबसे बड़ा स्वमी है, और पृथिवी का भी स्वामी है, उसी प्रकार यह तेजस्वी राजा भी प्रकाशमान् तेजस्वी पुरुषों या राजसभा का शिरोमणि, सर्वश्रेष्ठ, पृथिवी का पालक है। सूर्य जिस प्रकार जलों के सार-भागों को ग्रहण करता है उसी प्रकार यह राजा भी आप्त प्रजाओं के सार भाग "कर" को ग्रहण करता है। हे तेजस्विन्! तुझको वायु और सूर्य के बल पराक्रम के साथ स्थापित करता हूँ। शत० ७।१।४१॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः।
दिवि मूर्द्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम्॥ १५॥

त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! राष्ट्र में तू समस्त पृथिवी का नायक और समस्त राष्ट्र-व्यवस्था का नायक है। समस्त लोकसमूह और समस्त

ऐश्वर्यों का नेता प्राप्त करनेवाला होकर, मङ्गलकारिणी तथा शत्रु को छेदन-भेदन करने वाली सेनाओं से युक्त होकर तू रहता है। न्याय-प्रकाश-युक्त श्रेष्ठ व्यवहार में सर्वोच्च पद को तू धारण करता है। और ग्रहण करने योग्य तथा सुखदायिनी आज्ञा को भी तू प्रकट करता है। शत० ७।४।१।१५॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा।
मा त्वा समुद्र उद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृᳬह ॥१६॥

अग्निर्देवता। स्वराडार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू सदा निश्चल भाव से रहनेवाली हो। तू समस्त लोकों का आश्रय है। तू समस्त उत्तम कामों को करने में समर्थ शिल्पियों द्वारा नाना उत्तम उपयोगी पदार्थों से आच्छादित एवं सुरक्षित रह। समुद्र या आकाश तुझको विनष्ट न करे। उत्तम पालन करने वाले राज्यसाधनों से युक्त राजा तेरा वध न करे। तू पीड़ित न होकर पृथिवी निवासिनी प्रजा को बढ़ा।

यज्ञ में इस मन्त्र से 'आतृण्णा' का स्थापन करते हैं। 'आतृण्णा' पद से ब्राह्मणकार ने पृथिवी, अन्न, प्राण, प्रतिष्ठा, स्त्री और पृथ्वीनिवसी लोक प्रजा का ग्रहण किया है। अन्नं वै स्वयम् आतृण्णा। प्राणो वै स्वयमा-तृण्णा। इयं (पृथिवी) स्वयमातृण्णा। या सा प्रतिष्ठा एषा सा प्रथमा स्वयमातृण्णा। इमे वै लोकाः प्रतिष्ठा। शत० ७।४।२।१।१०॥

स्त्री पक्ष में—हे स्त्रि ! तू ध्रुव, तू सब गृहस्थ सुखों का आश्रय है तू समस्त धर्म कार्यों के करने वाले पति द्वारा सुरक्षित हो, समुद्र के समान उमड़ने वाला कमोन्माद तुझे नाश न करे उत्तम पालक साधनों से सम्पन्न पति भी तुझे न मारे। तू निर्भर, पीड़ा, कष्ट से रहित रहकर पृथिवी के समान अपने शरीर में विद्यमान् पुत्र-प्रजननाङ्ग रूप भूमि को दृढ़ कर, उसको हृष्ट पुष्ट कर। शत० ७।४।२।५॥

समुद्र इव हि कामः। नही कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य। तै० २। २। ५। ६॥

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन्।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि॥ १७॥

प्रजापतिर्देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे पृथिवि-निवासिनी प्रजे! अथवा राज्यशक्ते! नाना प्रकार के उत्तम गुणों वाली, उत्तम रूप से विस्तारशील तुझको, प्रजा का स्वामी जलों के पृष्ठ पर और समुद्र के यात्रायोग्य स्थान में नौका के समान स्थापित करे। हे प्रजे! हे राज्यशक्ते! तू विस्तृत होने से 'पृथिवी' कहाती है॥ शत० ७। ४। २। ६॥

स्त्री के पक्ष में—प्रजा का पालक पति समुद्र के समान अपार कामोपभोगों में भी आप्त पुरुषों के अथवा समस्त कार्यों के आश्रय में विविध गुणों से प्रकाशित और गुणों से विख्यात, प्रजा का विस्तार करने हार तुझको स्थापित करे उनके बतलाये धर्म-मार्ग पर चलावे। तू पृथिवी के समान प्रजोत्पत्ति करने हारी है।

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृᳪह पृथिवीं मा हिᳪसीः॥ १८॥

अग्निर्देवता। प्रस्तारपंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे पृथिवि! तू सब को उत्पन्न करने में समर्थ होने से 'भूः' है। सब का आश्रय होने से 'भूमि' है। अखण्डित होने से 'अदिति' है। समस्त प्रजाओं को धारण करने वाली होने से 'विश्वधाया' है। समस्त उत्पन्न होने वाले प्राणियों और राज्य-कार्यों को धारण-पोषण करने हारी है। राजन्! तू इस पृथिवी को नियम में सुरक्षित रख। इस पृथिवी को दृढ़ कर, इस पृथिवी का विनाश मत कर। शत० ७। ४। २। ७॥

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय।
अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥ १९॥

अग्निर्देवता । भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०—समस्त जंगम संसार की प्राण-रक्षा के लिये, अपान के लिये, या दुःख निवारण के लिये, व्यान या विविध व्यवहारों के लिये, उदान के लिये और उत्तम बल-प्राप्ति के लिये, प्रतिष्ठा और सच्चरित्रता की रक्षा के लिये अग्रणी राजा बड़ी सुख-सामग्री से और अशान्तिदायक कल्याण-कारणी ग्रहादि समृद्धि से तेरी रक्षा करे। तू उस देवस्वरूप राजा के संग अग्नि के समान तेजस्विनी होकर स्थिर होकर विराजमान् हो। शत० ७।४।२।८॥

काण्डा॑त्काण्डात्प्ररोह॑न्ती परु॑षः परुषस्परि॑ ।
एवा नो॑ दूर्वे॒ प्र त॑नु स॒हस्रे॑ण श॒तेन॑ च ॥ २० ॥

अग्निर्ऋषिः पत्नी देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—दूब घास जिस प्रकार प्रत्येक काण्ड पर अपने मूल जमाती हुई और प्रत्येक पोरु २ पर से अपनी जड़ पकड़ती हुई फैलती है उसी प्रकार वह राज्यशक्ति भी पृथ्वी पर प्रत्येक अंग और विभाग से स्थान २ पर दृढ़ आसन या मूल जमाती हुई, हजारों और सैकड़ों प्रकार के बलों से अपने आप को खूब विस्तृत करे। शत० ७।४।२।१४॥

'दूर्वा'—अयं वाव मा धूर्वीत् इति यदब्रवीद् 'धूर्वीन् मा' इति तस्मात् धूर्वा। धूर्वा ह वै तां दूर्वेत्याचक्षते परोक्षम्। शत० ७।४।२।१२॥

स्त्री पक्ष में—वह स्त्री ग्रन्थि २ पर और पोरु २ पर बढ़ती हुइ दूब के समान बराबर दृढ़ मूल होकर सहस्रों शाखाओं से हमारे कुल को बढ़ावे।

या श॒तेन॑ प्रत॒नोषि॑ स॒हस्रे॑ण वि॒रोह॑सि ।
तस्या॑स्ते देवीष्टके वि॒धेम॑ ह॒विषा॑ व॒यम् ॥ २१ ॥

पत्नी देवता । अग्निर्ऋषिः । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे दूर्वा के समान पृथ्वी पर फैलने वाली राज्यशक्ते! तू जो सैकड़ों बलों से अपने को विस्तृत करती है और अपने हज़ारों वीरों

द्वारा विविध रूपों में अपनी जड़ जमाती है, हे विजयशीले ! हे सब को इष्ट या प्रिय लगने वाली ! उस तेरा हम कर आदि रूप में दातव्य और राजा द्वारा उपादेय पदार्थों से या ज्ञानपूर्वक सेवन या विधान या निर्माण करें। शत० ७।४।२।१४॥

यास्ते॑ अग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।
ताभि॑र्नो अ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ २२ ॥

इन्द्राग्नी ऋषी। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार सूर्य में विद्यमान् कान्तियां सूर्य की किरण से द्यौलोक को घेर लेती हैं उसी प्रकार जो तेरी उत्तम ख्यातियां, या उत्तम कामनाएं, या अभिलाषाएं सब को प्रकाश देने वाले साधनों से प्रकाश को फैलाती हैं, उन अभिलाषाओं से सदा तू हमारी और प्रजा-जन की अभिलाषा पूर्त्ति के लिये प्रयत्न कर। शत० ७।४।२।२१॥

या वो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुच॑: ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒: सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

इन्द्राग्नी ऋषी। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे ज्ञानप्रद एवं ऐश्वर्यप्रद विद्वान् पुरुषो ! और राजालोगो ! तुम लोगों की जो सूर्य में विद्यमान् दीप्तियों के समान कान्तियां या अभिलाषाएं या रुचिकर प्रवृत्तियां हैं, और जो मनोहर लक्ष्मी, सम्पत्ति या रुचि गौओं और अश्वों में हैं, उन सब रुचिकर समृद्धियों वा अभिलाषाओं द्वारा हे इन्द्र ! हे अग्ने ! और हे सेनापते ! आप सब लोग हमें रुचिकर सम्पत्तियां प्रदान करें। शत० ७।४।२।२१॥

वि॒राड्ज्योति॑रधारयत्स्व॒राड्ज्योति॑रधारयत् ।
प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम् ।

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ ।
अग्निष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ २४ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचद् ब्राह्मी बृहती । ऋषभः ॥

भा०—विविध प्रकारों से और विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशमान् पृथिवी ज्ञानज्योति को अपने भीतर धारण करे । स्वतन्त्रता के तेज से प्रकाशमान् पृथिवी की स्वतन्त्रता की ज्योति को अपने में प्रजा का पालक राजा धारण करे । हे प्रजे ! तुझ ज्योति वाली को पृथ्वी-तल पर बसावे । सब प्रजाजनों के प्राण, अपान और व्यान इन शक्तियों की वृद्धि के लिये यत्न करे । हे राजन् ! तू सब प्रकार का तेज प्रदान कर । हे पृथिवी ! तेरा अधिपति अग्नि के समान तेजस्वी हो । उस देव-स्वभाव अधिपति के साथ तू अग्नि के समान देदीप्यमान् होकर स्थिर होकर विराज । शत० ७ । ४ । २ । २३ । २८ ॥

[1]मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । [2]ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे वासन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२५॥

ऋतवो देवताः । (१) भुरिगतिजगती । निषादः । (२) भुरिग ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—मधु और माधव अर्थात् चैत्र और वैशाख वसन्त के दो ऋतु अर्थात् मास रूप से दो स्वरूप हैं । ये दोनों जिस प्रकार संवत्सर स्वरूप अग्नि के जोड़ने वाले हैं, उसी प्रकार मधु के समान मधुर और माधव के समान फलोत्पादक दोनों प्रकार के पुरुष मानों राजा रूप प्रजापति के भीतर स्नेहशील होते हुए दो राजाओं के बीच सन्धि कराने में कुशल होते हैं । इनके द्वारा सूर्य और भूमि के समान नर और नारी

या राजा और प्रजा कार्य करने में समर्थ होते हैं। और जिस प्रकार वसन्त के दोनों मासों के द्वारा सम्पूर्ण ओषधियां वीर्यवान् होती हैं उसी प्रकार प्रजायें भी पुष्प-फलजनक हों। तथा तेजस्वी विद्वान् लोग मुख्य राजा की सर्वश्रेष्ठ पदाधिकार की प्राप्ति और रक्षा के लिये समान कार्य में दीक्षित होकर अलग २ भी अपना २ कार्य करने में समर्थ हों। और जो राजा और प्रजा के बीच में एक समान चित्त वाले प्रेमी विद्वान् पुरुष हैं वे सब वसन्त काल के दो मास चैत्र और वैशाख के समान मधुर गुणों से युक्त होकर, राजा के लिये सुखकारी और सामर्थ्यवान् होकर, प्राणगण जिस प्रकार आत्मा के आश्रय पर रहते हैं उसी प्रकार वे सब बड़े सम्राट् के चारों ओर विराजें। हे द्यौ और पृथिवि! हे राजा प्रजागण! उस महान् देव राजा से तेजस्वी और पूर्णाङ्ग होकर तुम दोनों स्थिर होकर विराजो। शत० ७।४।२।२९॥

अषाढासि सहमाना सहस्वारातीः सहस्व पृतनायतः।
सहस्रवीर्य्यासि सा मा जिन्व॥ २६॥

सविता देवाः वा ऋषयः। क्षत्रपतिरषाढा देवता। निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे सेने! तू शत्रु से कभी पराजित न होने वाली होने से 'अषाढा' असह्य पराक्रम वाली है। तू विजय करती हुई कर न देने वाले शत्रुओं को विजय कर। और सेना बनाकर हम से युद्ध करना चाहने वालों को भी पराजित कर। तू सहस्रों वीर पुरुषों के बलों से युक्त है। वह तू मुख्य राष्ट्रपति और क्षत्रपति को हृष्ट-पुष्ट कर वा पाल। शत० ७।२।३३।७०॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ २७॥

२७—२९ गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—सत्य, ज्ञान, यज्ञ और ब्रह्मचर्य की साधना करने वाले के

लिये वायुएं और समुद्र मधुर रस ही बहाते हैं। हमारी ओषधियें भी मधुर रस से पूर्ण हों ॥ शत० ७।५।१।३।४॥

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। गायत्री। षड्जः॥

भा०—रात्रि हमारे लिये मधुर और प्रभात समय भी हमें मधुर हो। पृथिवी लोक हमें मधु के समान सुखप्रद हो। हमारे पिता के समान पालक प्रकाशमान् सूर्य या आकाश हमें मधुर लगें। शत ७।५।१।३।४॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। निचृद्गायत्री। षड्जः।

भा०—पीपल, वट, आम्र आदि वृक्ष हमारे लिये मधु के समान मधुर गुण वाले हों। सूर्य हमें मधु के समान मधुर गुण वाला, पुष्टिकर, अन्नप्रद हो। किरणें, गौएं और पृथिवी मधुर अन्न रस बहाने वाली हों। शत० ७।५।१।३।४॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा अनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥३०॥

प्रजापतिर्देवता। आर्षी पंक्ति। पंचमः॥

भा०—हे राजन्! तू जलों को धारण करने वाले मेघ या सूर्य के समान प्रजाओं और आप्त पुरुषों को वश करने वाले राजपद पर विराजमान् हो। सूर्य के समान तेजस्वी तुझ से अधिक बलवान् पुरुष तुझे संतापित या पीड़ित न करे। समस्त विश्व का हितकारी अग्रणी तुझे न सतावे। तू प्रजाओं को पत्र पुष्पों से लदे वृक्ष लतादि के समान देख। आकाश से होने वाली वृष्टि तुझे सदा प्राप्त हो। शत० ७।५।१।८॥

अग्नींत्समुद्रान्त्समसृपत् स्वर्गानपां पतिर्वृषभ इष्टकानाम्।
पुरीषं वसानः सुकृतस्य लोके तत्र गच्छ यत्र पूर्वे परेताः ॥३१॥

वरुणो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! तू सुखदायी तथा समस्त पदार्थों के उत्पादक तीनों लोकों और तीनों कालों में व्याप्त होता है। तू ही अभीष्ट सुख साधनों का दाता है। जलों के मेघ के समान प्रजाओं का पालक है। तू जल को धारण करने वाले मेघ के समान पुण्य के लोक को प्राप्त हो जहां पूर्व के लोग प्राप्त हुए हैं। शत० ७।५।१।९॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः॥ ३२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८।३२॥ शत० ७।५।१।१०॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ३३॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६।४॥ शत० ७।५।१।१०॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो अधि जातवेदाः।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥३४॥

जातवेदा देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे पृथिवि! तू स्थिर रहने वाली है। तू जगत् के समस्त प्राणियों का आश्रय है। धनसम्पन्न और ज्ञानसम्पन्न पुरुष पहले तुझ से ही उत्पन्न हुआ है। बाद में इन प्रजा-जनों से उत्पन्न होता है। गायत्री, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप इन वेद मन्त्रों से वह विद्वान् पुरुषों के लिये अन्नादि उपदेश पदार्थ प्राप्त करावे।

अथवा गायत्री ब्राह्म बल। त्रिष्टुप् क्षात्र बल और अनुष्टुप सर्वसाधारण प्रजा का बल। इन तीनों से समस्त उपदेश भोग्य ऐश्वर्यो

को प्राप्त करे और विद्वान् देवों, राजाओं को प्राप्त करावे। शत० ७।५।१।३०॥

स्त्री के पक्ष में—स्त्री ध्रुव और गृहस्थ का आश्रय है। यह पुरुष प्रथम इस माता से उत्पन्न होता है और फिर इन गुरु आदि अनेक आश्रय स्थानों से उत्पन्न होता है।

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऊर्जे अपत्याय।

सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥३५॥

जातवेदा देवता। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तू अन्न, ऐश्वर्य, बल, तेज वा यश, पराक्रम, और सन्तानों के लाभ के लिये यत्न कर। हे राजन्! तू स्वयं प्रकाशमान् है। सरस्वती, अर्थात् वेद-ज्ञान के दोनों निकास अर्थात् मन और वाणी या अध्यापक और उपदेश तेरी उत्तम रीति से रक्षा करें। शत ७।५।१।३१॥

मनो वा सरस्वान् वाक् सरस्वती। एतौ सारस्वतावुत्सौ। शत० ७।५।१।१।२१॥

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः।

अरं वहन्ति मन्यवे॥ ३६॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे शत्रु संतापक राजन्! जो तेरे कार्यसाधक अश्व हैं, जो कि शत्रु के स्तम्भन करने के लिये रथादि को खूब अच्छी प्रकार वहन करते हैं, उनको रथ में नियुक्त कर। शत० ७।५।१।२।३॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाꣳ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव।

नि होता पूर्व्यः सदः॥ ३७॥

विरूप आंगिरस ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे नायक राजन्! रथ का स्वामी जिस प्रकार घोड़ों को

रथ में जोड़ता है उसी प्रकार तू विद्वानों द्वारा शिक्षा प्राप्त, तथा विद्या-प्रकाशादि को ग्रहण करने वाले शिक्षित पुरुषों को अपने राज्य-कार्य में नियुक्त कर। तू ही सब से पूर्व अग्रासन पर विद्यमान् तथा सर्व ऐश्वर्यों का दाता या ग्रहीता होकर उच्च आसन पर विराजमान् है। शत० ७।५।१।३३॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
घृतस्य धारा अभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्ये अग्नेः ॥३८॥

वामदेवो गौतम ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप् धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार जल-धाराएं बहती हैं उसी प्रकार भीतर धरण-शील हृदय और मननशील चित से पवित्र की हुई वाणियां भी भली प्रकार से विद्वान् पुरुष के मुख से प्रवाहित होती हैं। यह आत्मा सुवर्ण समान तेजोमय और दण्ड के समान इन्द्रियों की शासक है। मैं उससे उठती ज्ञान-धाराओं को, आग के बीच में घृत की धाराओं के समान अति उज्ज्वल देखता हूँ। शत० ७।५।२।१॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥ ३९ ॥

अग्निर्देवता। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे पुरुष ! मैं तुझको यथार्थ ज्ञान के लिये, तुझ को यथोचित प्रीति और अभिलाषा पूर्त्ति के लिये, तुझे दीप्ति के लिये, तुझे तेज प्राप्त करने के लिये प्राप्त करता हूँ। तू विश्व का प्रेरक बल है। ज्ञानवान् और समस्त नरों में व्यापकरूप से विद्यमान् राजा को भी तू ज्ञान कराने वाला है। शत० ७।५।२।१२॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान्।
सहस्रदा असि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक् ऋषभः॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! तू तेज से तेजस्वी होने से 'अग्नि' है। कान्ति से कान्तिमान् होने के कारण 'रुक्म' अर्थात् सुवर्ण के समान है। तू सहस्रों ऐश्वर्यों और ज्ञानों का देने वाला है। तुझे अनन्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों की रक्षा और प्राप्ति के लिये नियुक्त करता हूँ। शत० ७।५।२।१२।१३।

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम्।
परिवृङ्धि हरसा माभि मꣳस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥
अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—व्याख्या देखो० १२। ६१॥ शत० ७।५।२।१७॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳ सरिरस्य मध्ये।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४२॥
अग्निर्देवता। निचृत्। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! वायु के समान वेग वाले, जलमय समुद्र के बांधने वाले, दूसरों को पापों से वारण करने वाले, महान् आकाश के बीच उत्पन्न सूर्य के समान प्रजा-जनों के बीच पैदा हुए नदियों के समान अति समृद्ध प्रजाओं के बीच बालक के समान विद्यमान् मेघ के आश्रयभूत वायु के समान जीवनदाता, और अश्व की सी शक्ति वाले विद्वान् को तू मत विनष्ट कर। शत० ७।५।२॥ १८॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिꣳसीरदितिं विराजम् ॥४३॥
अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—अविनाशी, ऐश्वर्यवान्, रोषरहित, सब के पोषक, पूर्ण ज्ञानवान् राजा की मैं नमस्कारों द्वारा स्तुति करता हूँ। वह तू पालनकारी सामर्थ्यों से सूर्य जिस प्रकार अपनी ऋतु से सबको चलाता है उसी प्रकार अपनी राजसभा के सदस्यों से सामर्थ्यवान् होता है। वह तू

विविध पदार्थों से प्रकाशित पृथिवी को मत विनष्ट कर। शत० ७।५।२।१९॥

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात्।
महीꣳसाहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४४॥

अग्निर्देवता। निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—संसार को घड़ने वाले परमेश्वर को वरण करने वाली, जगत् के मूलकारण रूप जल को स्तम्भन करने में समर्थ, सबसे उत्कृष्ट परमेश्वर से ही प्रादुर्भूत होने वाली, सबको प्राण देने में समर्थ परमेश्वर की बड़ी भारी, असंख्य शक्तियों से युक्त, भेड़ के समान सब की आच्छादक, निर्माण करने वाली शक्ति को, हे विद्वन्! तू सब से ऊंचे पद पर विराज कर विनाश कत कर। शत० ७।५।२।२०॥

यो अग्निरग्नेरध्यजायत शोकात्पृथिव्या उत वा दिवस्परि।
येन प्रजा विश्वकर्मा जजान तमग्ने हेडः परि ते वृणक्तु ॥ ४५॥

अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जो ज्ञानवान् पुरुष परम ज्ञानी पुरुष के संग से ज्ञानवान् होता है और जो पृथिवी के तेज से और सूर्य के तेज से प्रकाशमान् है, जिसके द्वारा समस्त कार्यों का कर्त्ता धर्त्ता राजा प्रजाओं को उत्तम बनाता है, उस विद्वान् पुरुष को हे राजन्! तेरा क्रोध और अनादर छोड़ दे। अर्थात् उसके प्रति तू न क्रोध कर, न उसका अनादर कर। शत० ७।५।२।२।२१॥

ईश्वर-पक्ष में—जो ज्ञानवान् योगी से भी अधिक ज्ञानवान् है। और जो अपने तेज से पृथिवी और सूर्य के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से है और जिस तेज से विश्व का स्रष्टा प्रजापति प्रजाओं को उत्पन्न करता है उस परमेश्वर के प्रति हे विद्वान् पुरुष! तेरा अनादर भाव न हो।

चित्रं देवानामुदंगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षथंसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो विद्वानों का संचय करने वाला है वह बलस्वरूप होकर राज्य में उदय को प्राप्त होता है, जो प्राण और जल का ज्ञापक है, जो प्रकाश और अन्धकार से युक्त दोनों प्रकार के लोकों को और अन्तरिक्ष को भी सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है, वह सूर्य के समान जंगम और स्थावर सबका आत्मा सर्वान्तर्यामी, सबका प्रेरक, और धारक है। शत० ७ । ५ । २ । २७ ॥

इमं मा हिंथंसीर्द्विपादं पशुथंसहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू सुख प्राप्त करने और अन्न के लिये निरन्तर बढ़ता हुआ, इस दोपाये पुरुष को और उसके उपयोगी चौपाये पशु को भी मत मार । हे ज्ञानवन् नेता ! तू पवित्र अन्न उत्पन्न करने वाले जंगली पशु की भी वृद्धि चाह । और उससे भी अपनी सम्पत्ति को बढ़ाता हुआ अपने शरीर के बीच में हृष्ट-पुष्ट होकर रह । तेरा संतापकारी क्रोध हिंसक जंगली पशु को प्राप्त हो । और जिससे हम प्रेम नहीं करते उनको तेरा संतापकारी क्रोध प्राप्त हो । शत० ७ । ५ । २ । ३ । २ ॥

इमं मा हिंथंसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु ।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे पुरुष ! हर्ष से ध्वनि करने या हिनहिनाने वाले, एक खुर के तथा वेगवान् अश्व, गधे खच्चर आदि पशु को मत मार । जंगल के गौर नामक बारहसिंगे को लक्ष्य करके भी तुझे मैं यही उपदेश करता हूँ । कि उसकी वृद्धि से भी तू अपनी वृद्धि करता हुआ अपने शरीर की रक्षा किया कर । तेरा क्रोध खेती को हानि पहुंचाने वाले मृग को प्राप्त हो । जिसके प्रति हमारी प्रीति नहीं है तेरा क्रोध उसको ही प्राप्त हो । शत० ७ । ५ । २ । ३३ ॥

इमथ्ठं साहस्रथ्ठं शतधारमुत्सं व्यच्यमानथ्ठं सरिरस्य मध्ये ।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंथ्ठंसीः परमे व्योमन् ।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४९ ॥

अग्निर्देवता । कृतिः । निषादः ॥

भा०—लोक में विद्यमान् सैकड़ों के धारक पोषक और हजारों सुखप्रद पदार्थों के उत्पादक इस बैल को और मनुष्यों के हित के लिये घी, दूध, अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थ प्रदान करनेवाली अहिंसनीय गौ को हे राजन् ! अपने रक्षण-कार्य में तत्पर होकर मत मार । तुझे मैं जंगली पशु गवय का भी उपदेश करता हूँ । उससे भी अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ अपने शरीर को स्थिर कर, । तेरा क्रोध नाश करने वाले 'गवय' नाम के पशु को प्राप्त हों । और जिस शत्रु से हम द्वेष करते हैं तेरा क्रोध उसको प्राप्त हो । शत० ७ । ५ । २ । ३४ ॥

इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंथ्ठंसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

अग्निर्देवता । भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—हे राजन् ! तू परम रक्षाधिकार में नियुक्त होकर, सर्वजगत् के रचयिता परमेश्वर की प्रजाओं में सब से प्रथम, सुखों के उत्पादक, आवरण करने योग्य वस्त्रों के मूलकारण, दोपाये और चौपाये पशुओं में शरीरों को कम्बलादि से ढंकने वाले, ऊन को देने वाले भेड़ जन्तु को मत मार। तुझे मैं जंगली ऊंट का उपदेश करता हूँ। उससे समृद्ध होकर शरीर के सुखों को प्राप्त कर। तेरी पीड़ाजनक प्रवृत्ति पीड़ाजनक जीव को प्राप्त हो। और तेरा दुःखदायी क्रोध उसको प्राप्त हो जिससे हम द्वेष करते हों। शत० ७। ५। २। ३५॥

अजो ह्युग्नेरजनिष्ट शोकात्सो अपश्यज्जनितारमग्रे।
तेन देवा देवतामग्रमायँस्तेन रोहमायन्नुप मेध्यासः।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु॥ ५१॥

अग्निर्देवता। भुरिक् कृतिः। निषादः।

भा०—अजन्मा आत्मा तेजोमय परमेश्वर के तेज से ज्ञानवान् और तेजस्वी हो जाता है। तभी वह पूर्व विद्यमान्, समस्त जगत् के उत्पादक परमेश्वर का साक्षात् करता है। उसी अजन्मा आत्मा द्वारा विद्वान् जन उत्तम देव-भाव को प्राप्त होते हैं। और उसी के बल पर पवित्रात्मा जन उन्नत पद को प्राप्त करते हैं तुझको मैं जंगली शरभ अर्थात् हिंसक व्याघ्र पशु का स्वरूप दर्शाता हूँ। उसके समान बलवान् होकर तू अपने शरीर की रक्षा के लिये स्थिर होकर रह। तेरा शोक संताप और पीड़ाजनक कार्य हिंसक पुरुष को प्राप्त हो। और जिससे हम द्वेष करते हैं उसको तुम्हारा पीड़ा-संताप-जनक क्रोध प्राप्त हो। शत० ७। ५। २। ३६

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षा तोकमुत त्मना॥ ५२॥

उशना ऋषिः। अग्निरूको ऽग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे अति अधिक बलवान् पुरुष ! तू दानशील और कर आदि देने वाले प्रजा-जनों का पालन कर। और प्रेम से उनकी कही वाणियों को श्रवण कर। और स्वयं ही उनकी पुत्र के समान रक्षा कर। शत० ७।५।२।३१ ॥

[1]अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन्त्सादयाम्यपां त्वा भस्मन्त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि। [2]सरिरे त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ सादयाम्यपां त्वा पुरीषे सादयाम्यपां त्वा पाथसि सादयामि[3]। गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

उशना ऋषिः। आपो देवताः। (१) भुरिक् ब्राह्मी पंक्तिः। पञ्चमः। (२) ब्राह्मी जगती। निषादः। (३) निचृद् ब्राह्मी पांक्तिः। पंचमः॥

भा०—[१]हे राजन् ! तुझको मैं जलों, प्राणों, या प्रजाओं के प्राप्त करने योग्य जीवन रूप पद पर स्थापित करता हूँ। [२] तुझको जलों के दलदल भाग में जहां नाना ओषधियां उत्पन्न होती हैं उस अधिकार पद पर स्थापित करता हूँ। [३] जलों के तेजोभाग रूप मेघ के पद पर तुझको स्थापित करता हूँ। अर्थात् मेघ जिस प्रकार सब पर छाया और निष्पक्षपात होकर जल वर्षण करता है उसी प्रकार प्रजाओं पर तू समस्त सुख कर ऐश्वर्यों का वर्षण और छत्रछाया कर। [४] तुझे जलों की विद्युत् के पद पर स्थापित करता हूँ। अर्थात् जिस प्रकार जलों में विद्युत् बलवती शक्ति है उसी प्रकार तू भी प्रजाओं के बीच बलवती शक्ति वाला

होकर रह [५] तुझको जलों के एकमात्र आश्रय, इसी भूमि के पद पर स्थापित करता हूँ। अर्थात् जिस प्रकार समस्त जलों का आधार भूमि है उसी प्रकार समस्त प्रजाओं का आश्रय होकर तू रह। [६]तुझको 'अर्णव' = जीवन प्राण के 'सदन' आसन पर स्थापित करता हूँ। अर्थात् प्राण जिस प्रकार समस्त इन्द्रियों का आधार है, उसी प्रकार तू भी समस्त प्रजाओं और शासक वर्गों का आश्रय होकर रह। [७] तुझको मैं समुद्र अर्थात् मन के आसन पर स्थापित करता हूँ। जिस प्रकार मन समस्त वाणियों का उद्गमस्थान है, उसी प्रकार तू समस्त प्रजाओं का उद्गम स्थान बन कर रह। [८] जलों के निवासस्थान तड़ाग या कूप के पद पर तुझको नियुक्त करता हूँ। अर्थात् सुख दुःख में जिस प्रकार ग्राम-जनता तालाब या कूप के आश्रय पर रहती है उसी प्रकार तू प्रजा के सुख दुःख में आश्रय बन। [९]जलों को समान रूप से धारण करने वाले गम्भीर जलाशय के पद पर स्थापित करता हूँ। [१०] तुझे सर्वत्र प्रसरणशील और प्रेरक जल के पदपर स्थापित करता हूँ। [११] और सूक्ष्म जलों के आश्रयस्थान महान् आकाश के पद पर तुझे स्थापित करता हूँ।[१२] जलों को एकत्र धारण करने वाले अन्तरिक्ष के पद पर तुझको स्थापित करता हूँ। अर्थात् अन्तरिक्ष जिस प्रकार मेघ आदि रूप से जलों को एकत्र रखता है उसी प्रकार राजपुरुषों और प्रजाजन दोनों को तू समान रूपसे धारण कर। [१३] समस्त नद नदियों के स्थान समुद्र के पद पर मैं तुझको स्थापित करता हूँ। अर्थात् तू समस्त देशदेशान्तरों से आई प्रजाओं को शरण देने वाला हो। [१४] तुझको मैं जलों के भीतर दीप्ति सहित विद्यमान् रेती के पद पर स्थापित करता हूँ। जैसे रेती जलों को स्वच्छ रखती और शोभा को बढ़ाती है उसी प्रकार तू प्रजाओं को स्वच्छ रख और उसकी शोभा को बढ़ा। [१५] जलों के भीतर विद्यमान्, पालनकारी तत्त्व अन्न के पद पर मैं तुझको स्थापित करता हूँ। [१६] तुझको गायत्री-छन्दअर्थात् ब्राह्मणों के

विद्या बल से स्थापित करता हूँ। [१७] तुझको त्रैष्टुभ-छन्द अर्थात् क्षात्र-बल से स्थिर करता हूँ। [१८] तुझको जागत छन्द अर्थात् वैश्यों के बल से स्थापित करता हूँ। [१९] अनुष्टुभ छन्द अर्थात् सर्व साधारण लोक के बल से तुझको स्थापित करता हूँ। [२०] तुझको मैं पांक्त-छन्द अर्थात् दशों दिशाओं अथवा पांचों जनों के बल से स्थापित करता हूँ।

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपाꣳशुरुपाꣳशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

प्राणा देवताः। स्वराड् ब्राह्मी जगती। निषादः ॥

भा०—यह अग्निस्वरूप वाला पूर्व दिशा में सबका मूल कारण, स्वयं सत्-रूप से विद्यमान् था। उसका ही यह सामर्थ्य स्वरूप प्राण है। इसी से वह 'भुव' का अपत्य उससे उतपन्न होने से 'भौवायन' कहाता है। प्राण से उत्पन्न होने वाला प्राणों का आश्रय 'वसन्त' है। 'वसन्त' अर्थात् सबको बसाने वाले तत्त्व से 'गायत्री', प्राणों की रक्षा करने वाली शक्ति या वाणी उत्पन्न हुई। गायत्री शक्ति से गायत्र अर्थात् प्राण रक्षक बल उत्पन्न हुआ। गायत्र बल से 'उपांशु, नाम प्राण-उत्पन्न हुआ। उपांशु प्राण से 'त्रिवृत्' नामक प्राण उत्पन्न होता है। त्रिवृत् नाम प्राण से रथन्तर नाम प्राण का बल जिससे इन्द्रियों में ग्राह्य विषय ग्रहण किये जाते हैं वह उत्पन्न होता है। उन सबका प्रवर्त्तक और द्रष्टा सब प्राणों में मुख्य रूप बसने वाला 'प्राण' वसिष्ठ कहाता है। हे चितिशक्ते! या हे वाणि! प्रजा के पालक मुख्य प्राण द्वारा वशीकृत तुझ द्वारा मैं प्रजाओं के प्राण को वश में करता हूँ। शत० ८। १। १। ६॥

राजा और राष्ट्र-पक्ष में—यह प्राण राजा 'भुवः' है। उसके प्राण रूप अमात्य आदि 'भौवायन' हैं उनमें उत्तरोत्तर वसन्त गायत्री, गायत्र,

उपांशु त्रिवृत् त्रिमूर्ण रथन्तर, रथ बल उत्पन्न होते हैं। सब का द्रष्टा मुख्य राजा का पुरोहित 'वसिष्ठ' है। प्रजापति, प्रजा के पालक राजा से वशीकृत तुझ प्रजा या पृथिवी से मैं प्राण को या अन्न को प्रजा के हितार्थ प्राप्त करता हूँ।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारथं स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदशः पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

प्रजापतिः (प्राणभृद्) देवता । भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—दक्षिण दिशा में यह स्वयं समस्त कर्म करने में समर्थ है। उसके ही विश्वकर्मा रूप से उत्पन्न मन है। मन से उत्पन्न ग्रीष्म ऋतु है। सूर्य के प्रखर ताप वाले ऋतु के मानस् तेज से त्रिष्टुप् अर्थात् मन, वाणी और कर्म तीनों में हिंसा करने वाला क्षात्र-बल उत्पन्न होता है। उस क्षात्र-बल से स्वर-समूह अर्थात् स्वयं राजमान् राजा-गण उत्पन्न होते हैं। स्वयं तेजस्वी राज-गण से पृथिवी का अन्तर्मन अर्थात् प्रबन्ध उत्पन्न होती है। उस व्यवस्था से राष्ट्र के १५ अंगों पर शासक मुख्य राजा की उत्पत्ति होती है। उस मुख्य राजा से बड़े भारी राष्ट्र की उत्पत्ति होती है। उसका द्रष्टा और सञ्चालक स्वयं प्राण के समान 'भरद्वाज' है। हे राजशक्ते! राजा द्वारा वशी-कृत तुझसे मैं प्रजाओं के मन को अपने वश करता हूँ। शत० ८।१।१।७-९ ॥

अयं पश्चाद् विश्वव्यचास्तस्य चक्षुर्वैश्वव्यचसं वर्षाश्चाक्षुष्यो जगती वार्षी जगत्या ऋक्सममम् ऋक्समाच्छुक्रः शुक्रात्सप्तदशः सप्तदशाद्वैरूपं जमदग्निर्ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया चक्षुर्गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५६ ॥

प्रजापतिर्देवता भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—यह प्रजापति पश्चिम दिशा में तेज द्वारा समस्त विश्व में फैलने वाले सूर्य के समान है। विश्व में व्यापक सूर्य के प्रकाश से जिस प्रकार पुरुष की आंख उत्पन्न होती है उसी प्रकार प्रजापालक परमेश्वर का भी चक्षु सूर्य का बना हुआ है। जैसे आंखों से प्रेमाश्रु बहते हैं उसी प्रकार मानो ये समस्त वर्षाएं भी सूर्य से उत्पन्न होकर परमेश्वर के चक्षु से बहती हैं। यह समस्त सृष्टि वर्षा से ही उत्पन्न होती है। जगती छन्द से जिस प्रकार 'ऋक्' नाम साम की उत्पत्ति है। ऋक् सम नामक साम से शुक्र 'ग्रह' अर्थात् वीर्य उत्पन्न होता है। शुक्र ग्रह से यज्ञ में 'सप्तदश' स्तोम की उत्पत्ति होती है। अध्यात्म में वीर्य से सप्तदश नाम आत्मा के शरीर की उत्पत्ति होती है। राजा प्रजा के बल से १७ अंगों वाले सप्तदशाङ्ग राज्य और उस पर स्थित राजा की उत्पत्ति होती है। 'सप्तदश' नाम आत्मा से ही वैरूप अर्थात् विविध जीवसृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। साम में सप्तदश स्तोम से वैरूप नाम 'पृष्ठ' का उदय होता है। राष्ट्र में, सप्तदश अङ्गों से युक्त राजा के द्वारा राज्य की विविध रचना होती है। वह चक्षु सूर्य ही जमदग्नि है, वही सबका द्रष्टा है। इस शरीर में चक्षु ही जमदग्नि है। राष्ट्र में सर्वोपरि द्रष्टा पुरुष ही जमदग्नि है। प्रजा के पालक परमेश्वर द्वारा स्वीकार की गई पत्नी के समान निर्मात्री शक्ति से, एवं देह में आत्मा द्वारा प्राप्त चितिशक्ति से राष्ट्र में राज्य-शक्ति से मैं प्रजाओं की चक्षु को अपने वश करता हूँ। शत० ८ । १ । २ । १-३॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳशरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऐडमैडान् मन्थी मन्थिन एकविꣳश एकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्र ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

प्रजापतिर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—यह उत्तर दिशा में या सब से ऊपर महान् आकाश 'स्वः'

है। उस प्रजापति का मानो वह आकाश ही महान् 'श्रोत्र' है। इसलिये उसका श्रोत्र 'स्वः' होने से 'सौव' कहाता है। इसी प्रकार इस शरीर में 'स्व' अर्थात् सुख का साधन आकाश की तन्मात्रा से ही बना हुआ 'श्रोत्र' है। 'संवत्सर' रूप प्रजापति में शरत् ऋतु ही श्रोत्र के समान है। वर्षा के बाद आकाश और दिशाएं खुल जाने से शरद् ऋतु उत्पन्न होती है, इसी से शरत् मानो प्रजापति के श्रोत्र रूप आकाश या दिशाओं से उत्पन्न होती है। शरद् ऋतु से अनुष्टुप् छन्द उत्पन्न होता है। अर्थात् छन्दों में जिस प्रकार अनुष्टुप् सर्व-प्रिय है उसी प्रकार ऋतुओं में 'शरद्' ह। अनुष्टुप् से 'ऐड' नाम साम की उत्पत्ति होती है। अर्थात् अनुष्टुप् नाम छन्द से ऐड अर्थात् 'इड़ा' वाणी का विस्तार होता है। ऐड नाम साम से यज्ञ में मन्थिग्रह उत्पन्न होता है। वाणी के विस्तार से इन्द्रियों और हृदय को मथन करने की शक्ति उत्पन्न होती है। मन्थिग्रह से यज्ञ में 'एकविंश' नाम साम की उत्पत्ति होती है। वाणी के बल पर हृदय मथन हो जाने पर २० अंगों सहित इक्कीसवां आत्मा स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होता है। यज्ञ में एकविंशस्तोम से 'वैराज' साम की उत्पत्ति होती है। आत्मा से ही विविध तेजों से राजमान् देह की उत्पत्ति होती है। 'एकविंश' राजा से ही विविध राष्ट्र के कार्यों की उत्पत्ति होती है। शरीर में श्रोत्र ही विश्वामित्र ऋषि है। राजा द्वारा राजशक्ति के वश कर लेने पर प्रजाओं के 'श्रोत्र' अर्थात् सुख दुःख श्रवण करने वाले न्यायाधीश को मैं स्वीकार करूं। शत० ८।१।२।४-६॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हेमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत आग्रयणः आग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्याᳪं शाक्वररैवते विश्वकर्म ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः लोकं ता इन्द्रम् ॥ ५८ ॥

प्रजापतिर्देवता विराडाकृतिः । पंचमः ॥

भा०—यह सबसे ऊपर विराजमान् मननशील प्रज्ञा है जो विराट् शरीर में चन्द्रमा के तुल्य अज्ञान अन्धकार में भी प्रकाश करने हारी है। उससे उत्पन्न होने वाली वाणी मति से उत्पन्न होने के कारण 'मात्या' है। हेमन्त जिस प्रकार अति शीतल है उसी प्रकार वाणी से हृदय की शान्ति होती है। इससे मानो वाणी से हेमन्त उत्पन्न होती है। संवत्सर प्रजापति रूप में शरत् काल की चन्द्र ज्योति के बाद तीव्र गर्जनाकारी वाणी रूप मेघ और उसके बाद हेमन्त उत्पन्न होता है। हेमन्त से पंक्ति उत्पन्न होती है। अर्थात् हेमन्त काल के बाद अन्न पकना प्रारम्भ होता है। संवत्सर में पंचम ऋतु हेमन्त से मानो यज्ञ में पंक्ति छन्द की उत्पत्ति हुई। राष्ट्र में प्रजा के हृदयों को शमन करने से ही शत्रु परिपाक की शक्ति प्राप्त होती है, अथवा पञ्चांग सिद्धि प्राप्त होती है। यज्ञ में पंक्ति छन्द से 'निधनवत् साम' की उत्पत्ति है। निधनवत् साम से 'आग्रयण' ग्रह की उत्पत्ति होती है और आग्रयण ग्रह से त्रिनव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोम उत्पन्न होते हैं। त्रिनव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोमों से शाक्वर और रैवत दो 'पृष्ठ' उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र में शत्रु-संतापक पंक्ति नामक सैन्य पांचों जनों की सम्मति, सैन्य शक्ति से 'निधनवत्' अर्थात् शत्रु-हनन होता है। उससे आग्रयण अर्थात् आगे बढ़ने वाले शूरवीरों का पद नियत होता है। उससे त्रिनव और त्रयस्त्रिंश २७ और ३३ के स्तोम अर्थात् संघों की रचना होती है। और उनसे शाक्वर अर्थात् शक्तिशाली और रैवत अर्थात् धनाढ्य राष्ट्रों की उत्पत्ति होती है। इस सबका ऋषि अर्थात् द्रष्टा और नेता सञ्चालक विश्वकर्मा प्रजापति है। राजा द्वारा वशीकृत राजशक्ति रूप तुझ से प्रजा के हित के लिये आज्ञा प्रदान करने वाली वाणी को अपने वश करूं। शत० । ८ । १ । २ । ७-९ ॥

'लोकं,० ता०, ऽइन्द्रम्० ॥'

१२ अ० के ५४, ५५, ५६ इन तीन मन्त्रों की प्रतीक मात्र रक्खी है। (लोकं पृण० (१२ । ५४) ता अस्य सूद० (१२ । ५५) इन्द्रं विश्वा० १२ । ५६ ॥)

इति त्रयोदशोऽध्यायः

[तत्र अष्टापञ्चाशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोदशोऽध्यायः ॥

चतुर्दशोऽध्यायः ।

॥ ओ३म् ॥ ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया। उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥

अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू स्थिर जनपद वाली है। तू स्थिर ग्रह और स्थान वाली है। तू ध्रुव प्रजा का आश्रय है। तू अपने स्थिर आश्रय पर ही उत्तम राज्यप्रबन्ध से आश्रित होकर रह। तू पृथिवी के योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को सेवन करने वाली हो। राष्ट्र यज्ञ के सम्पादक विद्या के पारंगत शासनादि के अधिकारी दोनों तुझको इस आश्रय पर स्थिर करें।

स्त्री के पक्ष में—तू स्थिर निवास स्थान वाली, स्थिर आश्रय वाली होने से ध्रुवा है। तू उत्तम आचरणपूर्वक और स्थिर पति का आश्रय लेकर विराज। उखा अर्थात् स्थाली के योग्य पाक आदि विद्या को अति प्रेम से से करने वाली होकर रह। तुझे अध्वर अर्थात् गृहस्थ यज्ञ या अविनाशी प्रजा जन्तु रूप यज्ञ के अभिलाषी माता इस गृहाश्रम में स्थिर करें ॥ शत० ८ । २ । १ । ४ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

अश्विनौ देवते । ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे प्रजे ! तू 'कुलाय' अर्थात् गृह वाली, और घृत आदि पदर्थों से युक्त, एवं पुर को धारण करने वाली है पृथिवी पर बने गृह या आश्रय पर विराजमान् हो । तुझको उपदेश करने हारे विद्वान् और वसु ब्रह्मचारी वा निवास करने हारे विद्वान् लोग नित्य उपदेश करें । सौभाग्य की वृद्धि के लिये तू इन वेद मन्त्रों में स्थित ज्ञानों को प्राप्त कर । पूर्ववत् । शत० ८ । २ । १ । ५ ॥

स्त्री के पक्ष में—तू गृह वाली, घृत-पुष्टिकारक अन्न और जल से पूर्ण या स्नेह से पूर्ण होकर 'पुर' = पालनकारी घर को धारण करने वाली स्त्री है । पृथिवी के तल पर बने सुखप्रद गृह में विराज । रुद्र वसु आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग तुझे वेदों का उपदेश करें । तू अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिये उनको प्राप्त कर । यज्ञकर्त्ता विद्वान् माता पिता तुझे यहां स्थिर करें ।

अध्यात्म में—चिति शक्ति पुरन्धि है, वह शरीररूप गृह वाली है । शरीर में बसने वाले प्राण उसकी स्तुति करते हैं, वह अन्न को प्राप्त करे । जीवन-यज्ञ के कर्त्ता प्राणापान उसे वहां स्थित रखें ।

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांꣳ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ३ ॥

अश्विनौ देवते । निचृद् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू अपने बलों और ज्ञानों द्वारा और अपने चतुर बलवान् भृत्यों के बल से कार्य-कुशल पुरुषों का पालक पिता के समान

होकर और बड़े भारी संग्राम के लिये विद्वानों और विजयी पुरुषों के बीच में सुखकारी पद पर विराजमान् हो। पुत्र के लिये जिस प्रकार पिता हितकारी और उसका पालक होता है उसी प्रकार तू भी हो। हे पृथिवी मातः! तू भी पालक पिता के समान हो। सब प्रकार से सुख-कारिणी और उत्तम प्रकार बसने योग्य हो। तू अपनी विस्तृत राज्य-शक्ति से बस। शत० ८। २। १। ६॥

स्त्री पुरुष के पक्ष में—हे पुरुष! तू भृत्यों और अपने बल का पालक होकर विद्वान् पुरुषों को सुख और बड़े भारी रमण योग्य उत्तम कार्य के लिये स्थिर हो। पुत्र के लिये पिता के समान हो। हे स्त्री! तू पति को सुखकारिणी, सुखपूर्वक गृहस्थ-सुख देने वाली, उत्तम वेश धारण करके अपनी देह से पति के साथ संगत, एक होकर रह।

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणायजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ५ ॥

अश्विनौ देवते। स्वराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजशक्ते! तू पृथिवी का पालन करने वाला उत्तम स्वरूप है। उस तेरी समस्त विद्वान् और राजगण स्तुति करें। तू बल को अपनी 'पृष्ठ' या पलान सामर्थ्य में धारण करने वाली, जल के समान तेज को धारण करने वाली होकर विरजमान् हो। और हमें उत्तम प्रजाओं के समान ही नाना ऐश्वर्यों को भी प्रदान कर।। शत० ८। २। १। ७॥

स्त्री के पक्ष में—तू उत्तम रूपवती होकर निश्चय से पृथिवी के ऊपर पालक होकर या श्रीसमृद्ध होकर विद्यमान् है। समस्त विद्वान् तेरी कीर्त्ति गावें। तू वीर्यवान् पुरुष को अपने आश्रय किये हुए तेजस्विनी या अन्न, घृत और स्नेह से युक्त होकर विराज। और हम सब को उत्तम प्रजायुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर।

अदि॑त्यास्त्वा पृ॒ष्ठे सा॑दयाम्य॒न्तरि॑क्षस्य ध॒र्त्रीं वि॒ष्टम्भ॑नीं दि॒शामधि॑पत्नीं भुव॑नानाम्। ऊ॒र्मिर्द्र॒प्सो अ॒पाम॑सि वि॒श्वक॑र्मा त ऋषि॑र॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑ ॥ ५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

भा०—हे राजशक्ते ! अखण्ड पृथिवी के पीठ पर तेरे आश्रय पर निवास करने वाले राजा को धारण करने वाली, और दिशाओं और उनमें निवास करने वाली प्रजाओं को विविध उपायों से अपने वश करने वाली, और लोकों को अधिष्ठाता रूप से पालन करने वाली तुझको स्थापित करता हूँ। जलों के बीच में जिस प्रकार रस विद्यमान् रहता है उसी प्रकार तू भी प्रजाओं के बीच रस रूप से विद्यमान् हो। जलों के बीच में ऊपर उठने वाली तरङ्ग के समान उदय को प्राप्त होने वाली हो। जिस प्रकार समस्त शिल्प के उत्तम कार्यों का कर्त्ता 'इञ्जीनियर' है उसी प्रकार समस्त कार्यों का कर्त्ता राजा तेरा सञ्चालक तथा द्रष्टा है। पूर्ववत्। शत० २।२।१ १०॥

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि ! तुझको पृथिवी के ऊपर स्थापित करता हूँ। तू भीतर उपास्य, पतिदेव या अक्षय उत्साह को धरने वाली, सब दिशाओं को थामने वाली और उत्पन्न पुत्रों की पालक है। तू जलों की तरंग के समान हर्षकारिणी है। तेरा द्रष्टा पति ही तेरा 'विश्वकर्मा', सर्व शुभ कर्मों का करने वाला कर्त्ता-धर्त्ता है। जगत्पालक परमेश्वरी शक्ति के पक्ष में भी मन्त्र स्पष्ट है।

शु॒क्रश्च॒ शुचि॑श्च॒ ग्रैष्मा॑वृ॒तू अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॑ऽसि॒ कल्पे॑ताम् द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। ये अ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी इ॒मे। ग्रैष्मा॑वृ॒तू अ॑भि॒कल्प॑माना॒ इन्द्र॑मिव दे॒वा अ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ ६ ॥

ग्रीष्म ऋतुर्देवता । निचृद् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—शुक्र और शुचि ये दोनों ग्रीष्म काल के अंगस्वरूप दो मास हैं। व्याख्या देखो अ० १३ । मं० २५ ॥ शत० ८ । २ । १ । ७६ ॥

[1]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा । सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा [2]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा [3]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ७ ॥

विश्वेदेवा ऋषयः । मन्त्रोक्ता वस्वादयो विश्वेदेवा देवताः । (१) भुरिक् प्रकृतिः । धैवतः ॥ (२) स्वराट् पंक्तिः । (३) निचृदाकृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू संवत्सर के घटक ऋतुओं के समान राष्ट्र के घटक या राजसभा के बनाने वाले सदस्यों के साथ समान रूप से प्रीतिपूर्वक हो । तू राष्ट्र-शरीर के विधाता आप्त पुरुषों के साथ समान रूप से प्रीति युक्त होकर रह । दानशील और विजिगीषु, वीर पुरुषों से प्रेमयुक्त हो । जीवन को देह के साथ बांधने वाले प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन-जागृति एवं विज्ञानों द्वारा सब को जीवनप्रद और अन्न-आजीविका द्वारा व्यवस्थाओं में बांधने वाले विद्वानों के साथ प्रीतियुक्त बर्ताव करने वाला हो । इसी प्रकार तू वसु, रुद्र, आदित्य और विश्वेदेव इन सब विद्वान्, शत्रुतापक, प्रजा के पालक, व्यवस्थापक, आदान-प्रतिग्रह करने वाले ज्ञानी पुरुषों के

साथ प्रेम युक्त होकर रह। विद्याओं में व्यापक राष्ट्र-यज्ञ के सम्पादक विद्वान् तुझको इस राष्ट्राधिकार के पद पर स्थापित करें।

स्त्री और पुरुष के पक्ष में—हे स्त्रि और हे पुरुष! तुम ऋतुओं प्राणों, विद्वानों, और जीवनोपयोगी पदार्थों से युक्त हो। प्रजा तन्तु के इच्छुक माता पिता दोनों तुझको सर्वहितकारी अग्नि, अग्रणी नेता पद के लिये इस सद्गृहस्थ में स्थापित करें। इसी प्रकार तू वसु, रुद्र और आदित्य नामक विद्वान् जितेन्द्रिय पुरुषों के साथ प्रेमपूर्वक सत्य संग लाभ कर। शत० ८। २। २। ८-९॥

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मं उर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥ ८॥

पूर्वार्धस्य प्राणः उत्तरार्धस्य च आपो देवताः। दम्पती देवते। भुरिगाति-जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! मुझ प्रजागण के प्राण की रक्षा कर। मेरे अपान की रक्षा कर। मेरे शरीर के विविध संधियों चलने वाले व्यान की रक्षा कर। मेरे चक्षु को विस्तृत दर्शन-शक्ति से प्रकाशित कर। मेरे श्रोत्र को श्रवण-समर्थ कर। जलों के समान प्राणों का सेचन कर, उनको पुष्ट कर। ओषधियों को पुष्ट कर। दो पांव के मनुष्यों की रक्षा कर। चौपायों की रक्षा कर। जैसे आकाश से वृष्टि होती है उसी प्रकार तेरी तरफ से मेरे प्रति सुखों की वर्षा हो।

स्त्री के पक्ष में—हे पते! तू विशाल शक्ति से मेरे प्राण, अपान और व्यान की रक्षा कर। चक्षु को प्रकाशित कर। श्रोत्र को उत्तम शास्त्र-श्रवण से युक्त कर। प्राणों को पुष्ट कर। भृत्य और चौपायों की रक्षा कर। सूर्य जैसे पृथिवी पर वर्षा करता है ऐसे तू मुझे अपनी भूमि रूप स्त्री पर सन्तानादि के निमित्त वीर्यादि का प्रदान कर। शत० ८। २। । ३ २॥

[1]मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः [2]पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिंहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्द उक्षा वयः ककुप् छन्द ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

[3]अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वय उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्वयोऽनुष्टुप् छन्दः लोकं ता इन्द्रम् ॥ १० ॥

प्रजापत्यादयो देवताः (१) निचृद् ब्राह्मी पंक्तिः । (२) स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः । (३) विद्वांसो देवताः । निचृदार्षिर्मध्यमः ॥

भा०—१. शिर जिस प्रकार शरीर में सब के ऊपर विराजमान् है उसी प्रकार समाज में जो सब से ऊंचे पद पर स्थित हो उसका कर्त्तव्य प्रजापति का है । प्रजाओं का पालन करना है । (२) जो 'क्षत्र' या वीर्यवान् पद पर स्थित है उसका कर्त्तव्य प्रजा को सुख प्रदान करना है । ३. जो विविध प्रजाओं को विविध प्रकार और उपायों से स्तम्भन कर सके, पाल सके उसका कर्त्तव्य 'अधिपति' होने का है । ४. जो पुरुष राज्य के समस्त उत्तम कार्यों का प्रवर्त्तक अर्थात् श्रमविभाग के मुख्य पदपर स्थित है वह परम स्वामी पद पर स्थित होने योग्य है । ५. सबको आच्छादित करने वाले पदाधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह विविध प्रकार के बल वा शरीर ढकने के पदार्थों को प्राप्त करे । ६. जो पुरुष बलवान् है उसका कर्त्तव्य है कि वह विविध ऐश्वर्यों से शोभायमान् हो । ७. जिसमें पुरुष होने का सामर्थ्य है उसका 'तन्त्र' अर्थात् तन्त्र, कुटुम्ब को धारण पोषण करना कर्त्तव्य है ।

८. जो पुरुष व्याघ्र के समान शूरवीर है उसका कर्त्तव्य है कि वह शत्रु से कभी पराजित न हो। ९. सिंह के समान बड़े २ बलवान् शत्रुओं को जो हनन करने में समर्थ है वह प्रजा पर 'छदि' अर्थात् गृह के छत के समान आश्रय देने वाला होकर अपनी छत्रच्छाया में रक्खे। १०. जो पीठ से बोझ लादने वाले पशु के समान राष्ट्र के कार्य-भार को स्वयं वहन करने में समर्थ है वह 'बृहती' पृथ्वी के समान बड़े कार्य भार को अपने ऊपर ले। ११. वीर्यसेचन में समर्थ वृषभ के समान वीर्यवान् पुरुष का कर्त्तव्य अपने अधीन प्रजाओं को आच्छादन करना और सबसे अपने सरल सत्य व्यवहार से वर्त्तना है। १२. जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-मान से प्रकाशित है उसका कर्त्तव्य प्राप्त हुए बड़े २ कार्यों का करना है। १३. शकट-वहन करने में समर्थ बैल के समान बलवान् पुरुष अपने वीर्य को परिपक्व रक्खे और गृहस्थ के भार को उठावे। १४. जो दुधार गौ के समान दूसरों का पालन व पोषण करने में समर्थ है वह जगत् को पालन कर सकता है १५. तीनों वेदों की रक्षा करने में समर्थ पुरुष कर्म उपासना और ज्ञान तीनों से स्तुति करे। १६. आदित्य के समान तेज को धारण करने वाला पुरुष विविध ऐश्वर्यों और ज्ञानों से स्वयं प्रकाशित हो और अन्यों को प्रकाशित करे। जो पुरुष पाचों प्राणों पाचों इन्द्रियों पर वश करने में समर्थ है वह अपने प्राणों की रक्षा करने में सफल हो। १८. कर्म, उपासना और ज्ञान में, या वेदत्रयी में ही निवास करने वाला अथवा तृतीयाश्रमी पुरुष अपने समस्त पापों का दाह करने में सफल हो। १९. तुर्य अर्थात् तुरीय, चतुर्थ आश्रमवासी पुरुष होकर निरन्तर परमेश्वर की स्तुति करे। (लोकम्, ता, इन्द्रम्) ये १२ वें अध्याय के ४, ५५, ५ ५६ इन तीन मन्त्रों की प्रतीक हैं। शत० ८। २। ३। १०-१४॥

इन्द्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं च विबाधस॥ ११॥

विश्वकर्मा ऋषिः। इन्द्राग्नी देवता। भुरिगनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे इन्द्र और अग्नि ! अर्थात् सेनापति और राजा या राजा और पुरोहित ! तुम दोनों पीड़ा को प्राप्त न होती हुई तथा ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली प्रजा को दृढ़ करो। हे प्रजे ! तू अपने पृष्ठ बल से द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों को, प्राप्त होती है। सब स्थानों के भोग्य पदार्थों को प्राप्त होती है। शत० ८।३।१।८॥

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥ १२॥

विश्वकर्मा ऋषिः। वायुर्देवता। भुरिग् विकृतिः। मध्यमः॥

भा०—हे राजशक्ते ! विविध रूपों से विस्तृत और विस्तृत ऐश्वर्य वाली तुझको, समस्त उत्तम कार्यों के करने हारा राजा, अन्तरिक्ष के समान सबके बीच पूजनीय पुरुष के पृष्ठ पर अर्थात् उसके बल या आश्रय पर स्थापित करे। तू स्वयं अपने भीतर विद्यमान् पूज्य पुरुष या अन्तरिक्ष के समान प्रजा के रक्षक राजा को बल प्रदान कर। उसी 'अन्तरिक्ष' नाम राजा को दृढ़ कर। उस अन्तरिक्ष पदपर विद्यमान् सर्वरक्षक को मत विनाश कर। सबके प्राण, अपान, व्यान, उदान प्रतिष्ठा और उत्तम चरित्र की रक्षा के लिये, वायु के समान बलशाली पुरुष बड़े भारी कल्याणकारी सम्पत्ति या शक्ति से, अति शान्तिदायक तेज और पराक्रम से तेरी रक्षा करे। उस देवस्वरूप पुरुष के साथ तू अग्नि के समान तेजस्विनी होकर स्थिर होकर रह। शत० ८।३।१। ९-१०॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक्॥ १३॥

विश्वेदेवा ऋषयः । दिशो देवताः । विराट् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—पूर्वदिशा जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से देदीप्यमान होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू अपने तेज प्रकाशमान् से राजा की शक्ति है । दक्षिण दिशा जिस प्रकार सूर्य के विशेष प्रकार के ताप और प्रकाश से विशेष प्रकार की तेजस्विनी होती है उसी प्रकार तू भी राजा के विशेष तेज से प्रकाशमान् हो । पश्चिम को जाने वाले सूर्य से जिस प्रकार पश्चिम दिशा प्रकाशमान् होती जाती है उसी प्रकार तू भी 'सम्राट्' अर्थात् सब प्रकार के ऐश्वर्यों से उत्तरोत्तर तेजस्विनी हो । उत्तर दिशा जिस प्रकार उत्तरायणगत सूर्य से प्रकाशमान् होती है उसी प्रकार तू राजशक्ति भी स्वयं अपने स्वरूप से तेजस्विनी हो । ऊपर की दिशा जिस प्रकार मध्याह्न काल के सूर्य से प्रकाशित होती है उसी प्रकार राजशक्ति सब पर अधिकार करके सबकी पालन करने वाली हो । शत० ८ । ३ । १ । १४ ॥

स्त्री के पक्ष में—स्त्री भी विविध गुणों से विराट्, सुख में विद्यमान् होने से सम्राट्, स्वयं तेजस्विनी होने से स्वराट्, गृहपत्नी होने से अधिपत्नी और रानी हो । ये पांच पदवी पांच दिशाओं के समान तुझे प्राप्त हों ।

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

विश्वेदेवा ऋषयः । वायुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—प्रजापालक राजा, प्रजा के पूज्य पुरुष के आधार प्रखर, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों से युक्त तुझको स्थापित करे । तू प्राण, अपान और व्यान के समान राष्ट्र के सब प्रकार के बल सम्पादक के लिये ज्योति को प्रदान कर । वायु जिस प्रकार शत्रु-रूप वृक्षों को उखाड़ फेंकने में समर्थ है वैसे ही बलवान् पुरुष तुझ राजशक्ति का अधिपति है । तू इस

देवस्वरूप अधिपति के साथ तेजस्वी होकर स्थिर होकर रह । शत० ८ । ३ । २ । ३ । ४ ॥

नभ॑श्च नभ॒स्य॑श्च॒ वार्षि॑कावृ॒तू अ॒ग्नेर॑न्तःश्ले॒षो॑ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ओष॑धयः॒। कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः ये अ॒ग्नयः॒ सम॑नसो॒ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी इ॒मे वार्षि॑कावृ॒तू अ॑भि॒कल्प॑माना॒ इन्द्र॑मिव दे॒वा अ॑भि॒सं॑वि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ १५ ॥

इ॒षश्चो॒र्जश्च॑ शा॒रदा॑वृ॒तू अ॒ग्नेर॑न्तः श्ले॒षो॑ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। ये अ॒ग्नयः॒ सम॑नसो॒ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वी इ॒मे। शा॒रदा॑वृ॒तू अ॒भि॒कल्प॑माना॒ इन्द्र॑मिव दे॒वा ऽअ॑भि॒सं॑वि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ १६ ॥

विश्वदेवाः ऋषयः । ऋतवो देवताः । १५ स्वराड् उत्कृतिः ।
१६ भुरिगुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—नभस् और नभस्य ये दोनों वर्षा ऋतु के दो भाग हैं। इत्यादि अ० १२ । २५ ॥

भा०—इष् और ऊर्ज् ये दोनों शरद् ऋतु के दो मास हैं । देखो अ० १२ । २५ ॥ शत० ८ । ३ । २ । ५-१३ ॥

आयु॑र्मे पाहि प्रा॒णं मे॑ पाह्यपा॒नं मे॑ पाहि व्या॒नं मे॑ पाहि॒ चक्षु॑र्मे पाहि॒ श्रोत्रं॑ मे पाहि॒ वाचं॑ मे पिन्व॒ मनो॑ मे जिन्वा॒त्मानं॑ मे पाहि॒ ज्योति॑र्मे यच्छ ॥ १७ ॥

भा०—हे स्वामिन् ! मेरी आयु की रक्षा कर । मेरे प्राण का पालन कर । मेरे अपान की रक्षा कर । मेरे व्यान की रक्षा कर । मेरी आंखों

का पालन कर। मेरे कानों का पालन कर। मेरी वाणी को तृप्त कर। मेरे मन को प्रसन्न कर। मेरी आत्मा या देह की रक्षा कर। ज्ञान-ज्योति प्रदान कर। शत० ८। ३। २। १४-१५॥

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दो अस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्द उष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः॥ १८॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः। कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजा छन्दोऽश्वश्छन्दः॥ १९॥

छन्दांसि देवताः। १८ भुरिगति जगती। १९ आर्षी अति जगती। निषादः।

भा०—ज्ञान कराने वाली प्रज्ञा, उत्कृष्ट ज्ञान कराने वाली प्रमाणवती बुद्धि, प्रत्येक पदार्थ का ज्ञान करने वाली बुद्धि, कामना योग्य अन्न, पञ्च अवयवों से युक्त योग अथवा परिपक्व शक्ति, उत्तम बड़ी शक्ति या प्रकृति, अनुकूल स्तुति, विविध पदार्थ विज्ञान, स्तुतिकर्ता ज्ञानी की रक्षा करने वाली शक्ति, त्रिविध सुखों का वर्णन करने वाली विद्या, जगत् व्यापिनी शक्ति में सभी सुख देने वाले साधन और बल के स्थान हैं। पृथिवी और आकाश, वर्ष, नक्षत्र, वाणी, मन, कृषि सुवर्ण, गौ आदि पशु, अजा आदि पशु, अश्व आदि एक खुर के पशु ये सब भी शक्ति के स्थान, और कार्यों के साधन करने में सहायक, अथवा मानव प्रजा को अपने भीतर आच्छादित या सुरक्षित रखते हैं। शत० २। ३। ३। १-१२

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥ २०॥

विश्वेदेवा ऋषयः। अग्न्यादयो देवताः। भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—अग्नि, वात, सूर्य, चन्द्रमा, आठ वसु, ११ प्राण, १२ मास विद्वान्‌गण, समस्त दिव्य पदार्थ, ब्रह्माण्ड और वेद वाणी का पालक, ईश्वर, और वरुण ये सब देवता अर्थात् दिव्य शक्तियां हैं। राष्ट्र में ये ही सब अधिकारी लोग राजशक्ति के अंश हैं। शत० ८।३।३।१-१२॥

मूर्धासि राड्ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

विश्वे देवा ऋषयः। विदुषी देवता। निचृद् अनुष्टुप्। ऋषभः ॥

भा०— हे राजशक्ते ! तू सब से उच्च शिरोभाग पर स्थित है। तू 'राड्' अर्थात् सूर्य के समान ही तेजस्विनी है। ध्रुवा दिशा में पृथिवी जिस प्रकार सबका आश्रय है उसी प्रकार तू स्थिर होकर राष्ट्र को धारण करने वाली है। तू समस्त प्रजा को धारण करने वाली, और धरणी अर्थात् भूमि के समान सबका आधार है। जीवनवृद्धि के लिये, खेती की उत्पत्ति के लिये, और प्रजा की वृद्धि के लिये तुझ को स्वीकार करता हूँ। शत० ८।३।४।१-८॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा लोकं ता इन्द्रम् ॥२२॥

विश्वे देवा ऋषयः। विदुषी देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—राजशक्ते ! तु राजवैभव से प्रकाशमान् होने से तू नियमकारिणी शक्ति कहाती है। तू नियम-व्यवस्था करने वाली, और प्रजा को धारण करने वाली पृथ्वी के समान स्थिर है। तुझ राज-शक्ति को मैं अन्न-सम्पदा की वृद्धि के लिये, पराक्रम के लिये, प्राणशक्ति या ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, और पशु आदि समृद्धि के लिये या शरीरों की पुष्टि के लिये स्वीकार करता हूँ शत० ८।३।४।१०॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुण एकविंशः
प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविंशो वर्चो द्वाविंशः

सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशो गर्भाः पञ्चविꣳश ओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

ऋषयो ऋषयः । यज्ञो देवता (१) भुरिग् अतिजगती । निषादः (२) भुरिग ब्राह्मी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—१. राजा शीत, उष्ण और सम इन तीन स्वभाव वाला होता है । ऐसा राजा 'आशु' अर्थात् शीघ्रकारी होता है । २. जिस प्रकार चन्द्रमा १५. कलाओं से युक्त होता है उसी प्रकार १५. राज्यांगों से युक्त राजा चन्द्रमा के समान 'भान्त' कहाता है । ३. जिस प्रकार संवत्सर १२ में मास और ५ ऋतु होने से १७ विभाग होते हैं, इसी प्रकार वह राजा जो अपने राज्य के १७ विभाग बना कर रखता है विशेष रक्षाकारिणी शक्ति से सम्पन्न होने से 'व्योम' कहाता है । ४. राजा अपने राष्ट्र में २१ वीर्यों या प्रबल विभागों या वीर सहायक अधिकारियों सहित प्रजा का धारण करता है वह 'धरुण' कहाता है । ५. जो राजा अपने राज्य के १८ विभाग करके प्रजाओं की शीघ्र वृद्धि करता वह 'प्रतूर्त्ति' कहाता है । ६. जो राजा १८ विभागों वा सचिवों पर स्वयं १९ वां अधिपति होकर शासन करता हुआ शत्रुओं को संतापित करे, वह 'तपः' कहाता है । ७. राज्य के १९ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २० वां होकर शासन करने वाला राजा 'अभीवर्त्त' पद प्राप्त करता है । ८. जो राजा १२ मास, ७ ऋतु दिन और रात्रि के लक्षणों से युक्त २१ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २२ वां होकर विराजता है वह वर्चस्वी होने से 'वर्चः' पद का भागी होता है । ९. २२ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक २३ वां स्वयं समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाला राजा 'सम्भरण' पद का अधिकारी है । १०. २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक राजा सबका आश्रय होने से 'योनि'

कहाता है। ११. २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्तक राजा स्वयं २५ वां होकर 'गर्भ' कहाता है। १२. २६ अध्यक्षों का स्वयं प्रवर्त्तक २७ वां राजा ओजस्वी वज्र के समान पराक्रमी होकर 'अजः' कहाता है। १३. ३० विभागों का शासक ३१ वां राजा राज्यकर्त्ता होने से 'क्रतु' कहाता है। १४. ३२ विभागों पर स्वयं ३३ वां प्रवर्त्तक राजा सबका प्रतिष्ठापक होने से 'प्रतिष्ठा' पद को प्राप्त होता है। १५. ३३ विभागों का प्रवर्त्तक शासक स्वयं ३४ वां होकर 'ब्रध्न का विष्टप' अर्थात् सूर्य का पद, कहाता है। १६. ३६ विभागों का राजतन्त्र सुखप्रद होने से 'नाक' कहाता है। १७. ४८ विभागों का प्रवर्त्तक राजा समस्त प्रजाओं को विविध मार्गों में चलाने हारा होने से 'विवर्त्त' कहाता है। १८. चारों दिशाओं के विजय करने में समर्थ वीरता वाला राजा 'धर्त्र' कहाता है। शत० ८।४।१।१-१८॥

वीर्यं वै स्तोमाः। ता २।५।४। प्राणा वै स्तोमाः। शत० ८।१।३॥

इस आधार पर त्रिवृद् आदि स्तोम वीर्य अर्थात् अधिकारों और उन के अध्यक्षों के वाचक हैं।

अ॒ग्नेर्भा॒गो॑ऽसि दी॒क्षाया॒ आधि॑पत्यं॒ ब्रह्म॑ स्पृ॒तं त्रि॒वृत्स्तोमः॑। इन्द्र॑स्य भा॒गो॑ऽसि विष्णो॒राधि॑पत्यं क्ष॒त्रꣳ स्पृ॒तं प॑ञ्चद॒शः स्तोमः॑। नृ॒चक्ष॑सां भा॒गो॑ऽसि धा॒तुराधि॑पत्यं ज॒नित्रꣳ स्पृ॒तꣳ स॑प्तद॒शः स्तोमः॑। मि॒त्रस्य॑ भा॒गो॑ऽसि वरु॑णस्याधि॑पत्यं दि॒वो वृ॒ष्टिर्वात॑ स्पृ॒त ए॑कवि॒ꣳशः स्तोमः॑ ॥ २४ ॥

वसू॑नां भा॒गो॑ऽसि रु॒द्राणा॒माधि॑पत्यं॒ चतु॑ष्पात् स्पृ॒तं च॑तुर्वि॒ꣳशः स्तोमः॑। आ॒दि॒त्यानां॑ भा॒गो॑ऽसि म॒रुता॒माधि॑पत्यं॒ गर्भाः॑ स्पृ॒ताः प॑ञ्चवि॒ꣳशः स्तोमः॑। अदि॑त्यै भा॒गो॑ऽसि पू॒ष्ण आधि॑पत्य॒मो

जं स्पृतं त्रिणवः स्तोमः। देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳसमीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोमः स्तोमः ॥ २५ ॥
यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोमः। ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतꣳ स्पृतं त्रयस्त्रिꣳशः स्तोमः ॥ २६ ॥

(२४) लिंगोक्ता मेधाविनो देवताः। भुरिग् विकृतिः। मध्यमः। (२५) वस्वादयो लिंगोक्ताः, संकृतिः। गान्धारः। (२६) ऋभवो देवताः। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—१. हे विज्ञान राशे! तू ज्ञानवान् पुरुष के सेवन करने योग्य है। तुझ पर दीक्षा का स्वामित्व है। इससे ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञान सुरक्षित रहता है। उपासना, ज्ञान और कर्म ये तीन प्रकार का वीर्य प्राप्त होता है। २. हे क्षात्र-बल! तू शत्रुओं के नाशकारी वीर पुरुष का सेवन करने योग्य अंश है। उस पर व्यापक या विस्तृत सामर्थ्यवान् पुरुष का स्वामित्व है। उसके अधीन क्षात्र-बल की रक्षा होती है। उसका अधिकारी बल चन्द्र के समान १५ तिथियों या कलाओं से युक्त है। ३. हे राष्ट्र में बसे प्रजाजन! तुम लोग प्रजाओं के कार्यों के निरीक्षक पुरुषों के भाग हो। तुम पर प्रजा का धारण करने हारे 'धातृ' नामक अधिकारी का स्वामित्व है। इस प्रकार प्रजाओं की उत्पत्ति की रक्षा होती है। इस अधिकारी के अधीन १७ अन्य अधिकारी जन हों। ४. प्रजा के प्रति स्नेही निष्पक्षपात, न्यायकारी पुरुष का यह भाग है। इस पर दुष्टों को वारण करने वाले, दमनकर्त्ता अधिकारी का अधिकार है। आकाश से जैसे जलवृष्टि सब को समान रूप से प्राप्त होती है, और वायु जिस प्रकार सब को समान रूप से प्राप्त है, उसी प्रकार सर्व साधारण के जन्मसिद्ध अधिकार भी सुरक्षित हों। उसमें ११ अधिकारी हों। ५. हे पशु सम्पत्ते! तू राष्ट्र में बसने वालों का सेवन करने योग्य पदार्थ है। तुझ पर तेरे

रोधन करने वाले, रुद्रों गोपालक लोगों का स्वामित्व है। इस प्रकार चौपायों की रक्षा हो। इसमें २४ अधिकारीगण नियुक्त हों। ६. हे गर्भगत जीवो! तुम आदित्यों या तेजस्वी पुरुषों के भाग हो। तुम पर शरीरवर्त्ती प्राणों का स्वामित्व है। इस प्रकार प्रजाओं के गर्भ सुरक्षित होते हैं। उसमें २५ अधिकारीगण हैं। ७. हे ओजः! तू अखण्ड राजशक्ति का भाग है। तुझ पर राष्ट्र को पुष्ट करने वाले पुरुष का स्वामित्व है। इस पर राष्ट्र का ओज सुरक्षित हो। इसमें २७ अधिकारी गण हैं। ८. सर्व-प्रेरक देव! तू राजा का भाग हो। तुझ पर महान् राष्ट्र के पालक का स्वामित्व है। इस प्रकार समान रूप से फैली दिशाएं सुराक्षत होती हैं। इसमें ४ मुख्य अधिकारी होते हैं। ९. हे प्रजाजनो! तु शत्रुनाशक वीर भटों के भाग अर्थात् सेवन करने योग्य हो और तुम पर सौम्य अधिकारी जो सेना में रह कर शत्रु का नाश न कर शान्ति से शासन करते हैं उनका स्वामित्व है। इसमें ४४ अधिकारी जन होते हैं। १०. तुम शिल्पि-जनों का यह भाग हो। समस्त विजयी पुरुषों का उन पर स्वामित्व हो इससे शिल्प की रक्षा होती है। उसमें ३३ अधिकारीगण हैं॥ ८॥।४।२।१-४॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू अग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। [२]ये अग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू अभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा अभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ २७॥

ऋभवो देवताः। (१) भुरिगतिजगती। निषादः। (२) भुरिग्ब्राह्मीबृहती मध्यमः॥

भा०—सहस् और सहस्य ये दोनों हेमन्त ऋतु के दो भाग हैं॥ इत्यादि व्याख्या देखो १२।२५॥ शत० ८।४।२।१४॥

एकयास्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥ २८॥

[1]नवभिरास्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्। एकादशभिरस्तुवत ऋतवोऽसृज्यन्तार्तवा अधिपतय आसन्। [2]त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्। पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्। सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत्॥ २९॥

[1]नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्। एकविंशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्। त्रयोविंशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। [2]पञ्चविंशत्यास्तुवतारण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत्। सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या अनुव्यायँस्त एवाधिपतय आसन्॥ ३०॥

नवविंशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत्। एकत्रिंशतास्तुवत प्रजा असृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन्। त्रयस्त्रिंशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्। लोकं ता इन्द्रम्॥३१॥

ईश्वरो देवता (२८) निचृद्विकृतिः। मध्यमः। (२९) ईश्वरो देवता १—आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः। २—ब्राह्मी जगती। निषादः॥ (३०) जगदीश्वरो देवता १—स्वराड् ब्राह्मी जगती। निषादः। (२) निचृद् ब्राह्मी पंक्तिः पंचमः। (३१) प्रजापतिर्देवता। स्वराड् ब्राह्मी जगती। निषादः॥

भा०—१. विद्वान् लोग उस प्रजापति परमेश्वर की वाणी द्वारा गुण-स्तुति करते हैं। उसी प्रकार परमेश्वर ने प्रजाओं को उत्पन्न किया और प्रजापति ही सदा से सबका स्वामी रहा। २. शरीर में प्राण, उदान, और व्यान ये तीन प्रकार की प्राण-शक्तियां विद्यमान् हैं। इन तीनों महान् समष्टि शक्तियों से ही यह ब्रह्माण्ड बनाया गया है। उन तीनों के द्वारा ही उस परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। उस ब्रह्माण्ड या वेद का स्वामी परमेश्वर ही अधिपति है। ३. शरीर में जिस प्रकार पांच मुख्य प्राण हैं। उन पांच के बल से यह देह चल रहा है। उसी प्रकार इस जगत् में की पांच महान् शक्तियों के द्वारा पांच भूत पृथ्वी, वायु, जल, तेज आकाश को बनाया। उन शक्तियों के द्वारा ही विद्वान् पुरुष उस परमेश्वर और उसकी शक्तियों का वर्णन करते हैं कि वह इन पांचों महाभूतों का स्वामी सबका स्वामी है। ४. देह में २ श्रोत्र, २ चक्षु २ नासा और १ वाणी इन सात शिरोगत प्राणों या मांस आदि सात धातुओं से यह देह स्थिर है। उसी प्रकार विश्व में सात महान् द्रष्टा या प्रवर्त्तक ऋषि, ५ सूक्ष्म मात्राएं और महत्-तत्व और अहंकार भी बनाए गये हैं। विद्वान् पुरुष इस परमेश्वर की उन सातों प्रकट महाशक्तियों द्वारा स्तुति करते हैं। उन सबका भी वह विधाता ही अधिपति है। ५. शरीर में नव प्राण हैं पूर्वोक्त सात शिरोगत और दो नीचे के भाग में मूलेन्द्रिय और गुदा। ये शरीर को धारण करते हैं उसी प्रकार विश्व में अग्नि आदि ९ पालक शक्तियां 'पितृ' रूप से प्रकट होती हैं। विद्वान् लोग उन नौ शक्तियों के द्वारा उस प्रभु की स्तुति करते हैं। उन नवों पर परमेश्वर की अखण्ड-शक्ति पालक है। ६. शरीर में ५ कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ और ११ वां आत्मा है। विश्व में भी ११ ऋतु अर्थात् प्राण रचे गये हैं। विद्वान् लोग उन ११ मुख्य प्राणों के द्वारा इस परमेश्वर की स्तुति करते हैं। ऋतुओं के भीतर विद्यमान् विशेष दिव्य शक्तियां ही पालक हैं। ७ शरीर में जैसे दश प्राण, दो चरण और एक आत्मा ये १३ प्रधान बल हैं उसी प्रकार विश्व में एक संवत्सर

रूप प्रजापति के १३ मास अंग रूप से बने हैं। उन मासों का अधिपति जिस प्रकार 'संवत्सर' है, उसी प्रकार उक्त १३ हों का अध्यक्ष परमेश्वर 'संवत्सर' नाम से कहाने योग्य है। उसकी १३ अंगों द्वारा विद्वान् लोग स्तुति करते हैं। ८. इस शरीर में जिस प्रकार दश हाथ की अंगुलियां, दो बाहुएं और दो टांगें और १५ वां नाभि से ऊपर का शरीर भाग है। उसी प्रकार विश्व-ब्रह्माण्ड में १५ महती शक्तियां विश्व की रक्षा करती हैं। विश्व की रक्षा के लिए क्षात्र बल बना है। उनका अधिपति 'इन्द्र' है उक्त १५ हों शक्तियों से विद्वान् उस विधाता प्रजापति की स्तुति करते हैं। ९. शरीर में जिस प्रकार १० हाथ की अंगुलियां, दो टांगें, दो गोड़े, दो पैर और नाभि का अधोभाग ये १७ अंग हैं उसी प्रकार विश्व में सर्वत्र ये शक्तियां विद्यमान् हैं और विश्व के जीव-सर्ग को चला रही हैं। विद्वान्‌गण उन द्वारा परमेश्वर विधाता की स्तुति करते हैं। उन शक्तियों से ही ग्रामवासी नाना पशु गण पैदा किये गये हैं। उन सबका महान् विश्व का स्वामी परमेश्वर ही मालिक है। १०. दश हाथों की अंगुलियां और शरीरगत ९ प्राण ये १९ जिस प्रकार शरीर की रक्षा करते हैं और उसको चेतन बनाये रखते हैं उसी प्रकार १९ धारक और पालक बल विश्व को थामे हैं। उन १० शक्तियों के वर्णन द्वारा उसी परमेश्वर की रचना-कौशल की विद्वान् गण स्तुति करते हैं। उन १९ अभ्यन्तर और बाह्य अंगों के समान ही शूद्र और आर्य, श्रमजीवी और स्वामी लोगों के परस्पर संघों की रचना हुई है। शूद्र बाहर के हाथों की अंगुलियों के समान और आर्य समाज के भीतरी प्राणों के समान रहते हैं। उनके दिन, रात ये दो ही अधिपति या पालक हैं, अर्थात् दिन प्रकाशमान् और रात्रि अन्धकारमय है। इसी प्रकार शूद्र ज्ञान रहित और आर्य ज्ञानवान् हैं। अहोरात्र का सम्मिलित स्वरूप अर्थात् दोनों प्रकार का ज्ञानमय और कर्ममय प्रजापति ही शूद्र और आर्य दोनों का पालक है। ११. १० हाथ की और १० पैर की अंगुलियां हैं और आत्मा २१ वां हैं। उसी प्रकार विश्व में उत्तर और अधर लोकों

की १०, १० कार्यकारिणी और पालनकारिणी शक्तियां काम कर रहीं हैं। उनको देखकर उन द्वारा भी विद्वान्‌जन प्रजापति की स्तुति करते और उसके अनुकूल एक खुर वाले पशुओं की रचना हुई। अर्थात् हाथ की दशों अंगुलियों के समान १० दिशाओं में दश सेनाएं और उनके सहायतार्थ घोड़े, खच्चर आदि उपयोगी पशु पैदा किये जाते हैं। उनका अधिपति 'वरुण' और सर्वश्रेष्ठ तथा तथा सब शत्रुओं का वारक सेनापति पुरुष है। १२.१० हाथ की और १० पैर की अंगुलियां, दो पैर और २३ वां आत्मा देह में विद्यमान् है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में २३ महान् शक्तियां कार्य कर रही हैं। उन २३ स्वरूपों से ही विद्वान्‌गण परमेश्वर की स्तुति करते हैं। उक्त अंगों की शक्तियों द्वारा क्षुद्र पशुओं की रचना हुई है। उन सब का अधिपति पूषा अर्थात् अन्नदात्री पृथिवी ही है। १३. हाथों, पैरों की दश दश अंगुलियां, दो बाहु, दो पैर और २५ वां आत्मा ये देह के घटक हैं। इसी प्रकार सृष्टि रचना के भी घटक २५ पदार्थ हैं। उनके द्वारा विद्वान् विधाता की स्तुति करते हैं। उनके घटक अवयवों से ही जंगली पशु रचे गये हैं। तीव्र गतिशील वायु के समान वेगवान् पालक ही उनका अधिपति है। १४. हाथों पैरों की दस २ अंगुलियाँ, २ बाहु और २ टांगें, दो चरण एक आत्मा ये सत्ताईस शरीर के घटक हैं। इन सत्ताईस अंगों की सञ्चालक महती शक्तियों के द्वारा ही विद्वान् पुरुष विधाता की स्तुति करते हैं। उतके द्वारा ही द्यौ और पृथिवी दोनों व्याप्त होते हैं। ८ वसु, ११ प्राण और १२ मास उनके भीतर व्याप्त हैं। वे ही उन दोनों आकाश और पृथिवी के अधिपति या पालक हैं। १५. देह में हाथों पैरों की दस २ अंगुलियां, ९ प्राण हैं। उसी प्रकार २९ घटक शक्तियां विश्व को रच रही हैं। उन द्वारा विद्वान् जन विधाता की स्तुति करते हैं। उन घटक शक्तियों से ही वनस्पतियाँ बनाई गयी हैं। उनका सोम अधिपति है। १६. हाथों पैरों की दस २ अंगुलियां, १० प्राण, और ३१ वां आत्मा उन घटकों से समस्त शरीर बने हैं।

उन शक्तियों द्वारा ही विद्वान् जन विधाता के कौशल का वर्णन करते हैं। इनसे ही समस्त प्रजा सृजी गयी है। पुरुष और स्त्रियाँ ही उनके अधिपति हैं। १७. हाथों पैरों की दस २ अंगुलियां, दश प्राण, २ चरण और ३३ वां आत्मा ये सब पूर्ण शरीर के मुख्य मुख्य घटक हैं, और उस प्रकार ३३ ही ब्रह्माण्ड के भी घटक हैं, उनके द्वारा ही परम विधाता की विद्वान् स्तुति करते हैं। उनसे ही समस्त प्राणी गण सुखी होते हैं। परमेष्ठी पद स्थित प्रजापति परमत्मा ही उन सबका अधिपति है।

राष्ट्र पक्ष में —१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५, २७, २९, ३२, और ३२ इन भिन्न २ घटक अङ्गों से बने राज्यों एवं राज्य के अंगों को परमेश्वर के बनाये देह के मुख्यांगों की रचना के अनुसार बनाना चाहिये और उनके अधिपति भी भिन्न २ योग्यता के पुरुषों को रखना चाहिये। और विद्वान् लोग उनके घटक अवयवों का ही उत्तम रीति से उपदेश करें और तदनुसार राज्यों की कल्पना करें। उन राष्ट्र के भिन्न २ भागो में प्रजापति ब्रह्मणस्पति, धाता, अनिति, आर्तव आदि नामधारी मुख्य पदाधिकारियों को नियत करें।

इति चतुर्दशोऽध्यायः

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥

पंचदशोऽध्यायः

१—६८ अध्याय परिसमाप्तः परमेष्ठी ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ अग्ने॑ जा॒तान् प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान्नुद जातवेदः अधि॑ नो ब्रूहि सु॒मना॒ अहे॑डँस्तव॑ स्याम॒ शर्मँ॑स्त्रि॒वरू॑थ उ॒द्भौ ॥ १ ॥

परमेष्ठी ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे अग्रणी सेनापते ! राजन् ! तू हमारे प्रकट हुए शत्रुओं को दूर भगा। और हे ऐश्वर्यवान् ! तू अभी तक न प्रकट हुए शत्रुओं को भी मुकाबला करके परास्त कर। और हमारा अनादर न करता हुआ, उत्तम शुभ प्रसन्न चित होकर हमें अधिष्ठाता होकर सन्मार्ग का उपदेश कर। हम तेरे त्रिविध तापों का वारण करने वाले उत्तम सुखों के उत्पादक वा उच्च गृह या आश्रय में रहें।

सहसा जातान् प्रणुदा नः सपत्नान् प्रत्यजातान् जातवेदो नुदस्व अधि नो ब्रूहि सुमनस्यमानो वयꣳस्याम प्रणुदा नः सपत्नान् ॥ २ ॥

अग्निर्ऋषिः। भुरिक् त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न राजन् ! सेनापते ! तू उत्पन्न हुए शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ बल से परे मार भगा। और अप्रकट शत्रुओं को भी परास्त कर। उत्तम मन वाला होकर हमें उपदेश कर। जिससे हम लोग तेरे सहायक हों। तू हमारे शत्रुओं को दूर भगा।

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिꣳशः स्तोमो वर्चो द्रविणम्। अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३॥

दम्पती देवते। ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—१६ अधिकारियों से युक्त "समूह" पराक्रम और धनैश्वर्य प्रदान करता है। अधिकारियों से युक्त समूह भी तेज और ऐश्वर्य प्रदान करता है। हे राज्यशक्ते ! तू अग्रणी राजा के बल को पूर्ण करने वाली है। तेरा स्वरूप 'अप्सः' है अर्थात् तेरे भीतर रहकर एक आदमी दूसरे के जान माल और अधिकार को नहीं खाता है। तेरी समस्त विद्वान् स्तुति करें। हे पृथिवी ! तू समस्त अधिकारों का आश्रय होकर, तेजस्विनी होकर, इस जगत में विराज। हमें प्रजाओं से युक्त ऐश्वर्यों का प्रदान कर।

एवश्छन्दो वरिवश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्द आच्छच्छन्दो मनश्छन्दो व्यचश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दो अङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दस्संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सँस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्द एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृतश्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रञ्छन्दो अङ्काङ्कं छन्दः ॥ ५ ॥

(४, ५,) विद्वांसो देवताः । स्वराड्आकृतिः । पञ्चमः ।
निचृद् अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—१. ज्ञान, प्रजाओं का शिक्षण अथवा पृथिवी में गमनागमन के साधन रथादि। २. गुरु देव, पितृजन आदि की सेवा ३. प्रजाओं को शान्ति सुख देने के उपाय, औषधालय, उद्यान, तडाग आदि निर्माण। ४. चारों ओर से प्रजा की परकोट आदि से रक्षा। ५. आच्छादन योग्य वस्त्र। ६. मनन, शास्त्रमनन, उत्तम शास्त्रचिन्तन। ७. सूर्य के समान राजा की कीर्त्ति और राष्ट्र का प्रसार अथवा विविध शिल्प। ८. नदियों नहरों का निर्माण, निरोध एवं उन द्वारा गमन-आगमन। ९. समुद्र से व्यापार और मुक्ता रत्न आदि की प्राप्ति। १०. सलिल, जल। ११. प्रजा के सुखवर्धक उपाय। १२. त्रिविध सुखों का सम्पादन। १३ कवियों की कृति काव्य, सुन्दर वाग्विलास, साहित्य। १४. प्रजा की कुटिल कूट नीतियों, व्यवहारों से और कुटिलाचारों से रक्षा। १५. अक्षय ब्रह्म का ज्ञान या अखण्ड ब्रह्मचर्य की परिपक्वता

का साधन । १६. गृहस्थ का पालन । १७. प्रजोत्पादन, प्रजापालन । १८. छुरा कर्म । १९. दीप्ति, प्रकाश आदि का करना अथवा छुरे की धार के समान कठिन आदित्य व्रत की साधना । २० प्रजा की सब ओर से रक्षा । २१. अच्छी प्रकार रक्षा । २२ दुष्टों का संयमन । २३. विविध व्यवहारों का नियमन । बड़े राष्ट्र का प्रबन्ध । २४. रथों के मार्गों का निर्माण और प्रबन्ध । २५. शरीर की प्राण वायु की साधना, अथवा समस्त प्रजा के शरीरों की रक्षा अथवा विशेष खाद्य पदार्थों का संग्रह । २६. विविध हनन साधनों, हथियारों का संग्रह । २७. अन्नों का संग्रह २८. अग्नि-विद्या या विद्युत् द्वारा प्रकाश उत्पादन । २९. उत्तम विद्याओं का पठन । ३० सामान्य विद्याओं का अध्ययन । ३१. ज्ञान और उपासना एवं गुरु सेवा । ३२. जीवन वृद्धि या अन्न । ३३. अन्न के उत्पादक प्रयोग । ३४. संग्राम । ३५. विविध वास्तु-निर्माण । ३६. छतें या वस्त्र, तम्बू आदि बनाना । ३७. दुर्गम स्थानों पर चढ़ने के साधन । ३८. मोहन-विद्या । ३९. गणित विद्या । इन सब शिल्प का सरहस्य ज्ञान प्राप्त किया जाय ।

शतपथ के अनुसार एवः आदि के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं ।

१ एवः	अयं लोकः	२१ संयत	रात्रिः
२ वरिवः	अन्तरिक्षः	२२ वियत्	अहः
३ शंभू	द्यौः	२३ बृहत्	असौ लोकः
४ परिभूः	दिशः	२४ रथन्तरं	अयं लोकः
५ आच्छत्	अन्नं	२५ निकायः	वायु
६ मनः	प्रजापतिः (आत्मा)	२६ विवधः	अन्तरिक्षं
७ व्यचः	आदित्यः	२७ गिरः	अन्नम्
८ सिन्धुः	प्राणः	२८ भ्रजः	अग्निः
९ समुद्रं	मनः	२९ संस्तुप्	वाग्
१० सारं	वाग्	३० अनुष्टुप्	वाग्

११ ककुप्	प्राणः	२१ एवः	अयं लोकः
१२ त्रिककुप्	उदानः	२२ वरिवः	अन्तरिक्षं
१३ काव्यं	त्रयी विद्या	२३ वयः	अन्नं
१४ अङ्कुपं	आपः	२४ वयस्कृतः	अग्निः
१५ अक्षरपंक्तिः	असौ लोकः	२५ विष्पर्धाः	असौ लोकः
१६ पदपंक्तिः	अयं लोकः	२६ विशालं	अयं लोकः
१७ विष्टारपंक्तिः	दिशः	२७ छदिः	अन्तरिक्षम्
१८ क्षुरोभ्रजः	आदित्यः	२८ दूरोहणम्	आदित्यः
१९ आच्छत्	अन्नं	२९ तन्द्रं	पंक्ति
२० प्रच्छत्		४० अङ्काङ्कं	आपः

'एवः' आदि के अयं लोकः' आदि साक्षात् अर्थ नहीं, प्रत्युत उपमान होने से साधारण धर्मों के द्योतक पदार्थ हैं। शतपथ इन पदार्थों को 'बन्धु' अर्थात् उपमान मात्र ही बताता है।

रश्मिना सत्याय सत्यञ्जिन्व प्रेतिना धर्मणा धर्मञ्जिन्वान्वित्या दिवा दिवञ्जिन्व सन्धिनान्तरिक्षेणान्तरिक्षं जिन्व प्रतिधिना पृथिव्या पृथिवीं जिन्व विष्टम्भेन वृष्ट्या वृष्टिं जिन्व प्रवयाऽह्नाहर्जिन्वानुया रात्र्या रात्रीञ्जिन्वोशिजा वसुभ्यो वसूञ्जिन्व प्रकेतेनादित्येभ्य आदित्याञ्जिनव ॥ ६ ॥

तन्तुना रायस्पोषेण रायस्पोषं जिन्व सᳬसर्पेण श्रुताय श्रुतं जिन्वैडेनौषधीभिरोषधीर्जिन्वोत्तमेन तनूभिस्तनूर्जिन्व वयोधसाधीतेनाधीतञ्जिन्वाभिजिता तेजसा तेजो जिन्व ॥ ७ ॥

सोमाः विद्वांसो देवताः। (६) विराडभिकृतिः। ऋषभः।

(७) ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—१. सत्य-व्यवहार की वृद्धि के लिये विवेकी पुरुष द्वारा

सत्य व्यवहार की राष्ट्र में वृद्धि कर। २. प्रजा को व्यवस्थित करने वाले कानून के निमित्त उत्तम विज्ञान युक्त पुरुष द्वारा धर्म या कानून को उन्नत कर। ३. ज्ञान के प्रकाश के लिये, अन्वेषण करने वाली समिति द्वारा विज्ञान की वृद्धि कर ४. पृथ्वी और आकाश के बीच जिस प्रकार अन्तरिक्ष दोनों लोकों को मिलाता है उसी प्रकार दो प्रजाओं के बीच मध्यस्थ रूप से विद्यमान् होने के कार्य के लिये परस्पर के 'सन्धि' कराने वाले अधिकारी से तू उक्त अन्तरिक्ष पद को पुष्ट कर। ५. पृथिवी के शासन के लिये स्थापित प्रतिनिधि द्वारा पृथिवी प्रजाजन की वृद्धि कर। ६. प्रजा पर अपने ऐश्वर्यों की वृष्टि करने के लिये, विविध उपायों से धनों को स्तम्भन या संग्रह करने वाले विभाग को नियुक्त करके उससे तू सुखों के वर्षण की वृद्धि कर। ७. सूर्य के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र के कार्यों को चलाने के लिये, उत्कृष्ट तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करके उससे सूर्य पद की वृद्धि कर। ८. रात्रि के समान समस्त प्रजाओं को विश्राम देने के लिये चारों और डाकुओं के पीछा करने वाले विभाग द्वारा, राष्ट्र की रक्षा करने वाली संस्था को पुष्ट कर। ९. ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये और राष्ट्र में बसने वाले जनों के हित के लिये, धनादि के अभिलाषा करने वाले वणिग् विभाग द्वारा बसने के साधन रूप समस्त प्रदार्थों को पुष्ट कर। १०. आदित्य ब्रह्मचारियों के स्थापित उत्कृष्ट ज्ञान के साधन पुस्तकालय, विद्यालय आदि द्वारा ज्ञाननिष्ठ पुरुषों को भी पुष्ट कर। ११. धनैश्वर्य और गवादि पशु-सम्पत्ति की वृद्धि के निमित्त, प्रजा-परम्परा रूप तन्तु से, ऐश्वर्य समृद्धि की वृद्धि कर। १२. लोक-वृत्तों के श्रवण के लिये, दूर तक जाने वाले गुप्तचरों द्वारा, लोक-वृत्त श्रवण के विभाग को पुष्ट कर। १३. ओषधियों के संग्रह के लिये, इड़ा अर्थात् अन्न, ओषधि या पृथ्वी के गुणों के जानने वाले विभाग द्वारा, अन्नादि रोगहर और पुष्टिकर ओषधियों को वृद्धि कर। १४. शरीरों की उन्नति के लिये, सब से

उत्कृष्ट शरीर वाले पुरुष द्वारा, प्रजा के शरीरों की वृद्धि कर। १५. विद्याभ्यास की वृद्धि के लिये, ज्ञानवान् और दीर्घायु पुरुषों से अपने स्वाध्याय और शिक्षा की वृद्धि कर। १६. तेज और पराक्रम की वृद्धि के लिये, शत्रुओं को सब प्रकार से विजय करने में समर्थ पुरुष द्वारा, अपने तेज और पराक्रम की वृद्धि कर।

सत्य, धर्म, दिव्, अन्तरिक्ष, पृथिवी, वृष्टि, अहः, रात्रि, वसु और आदित्य, रायःपोष, श्रुत, ओषधि, तनु, अधीत, और तेज इन १६. अभ्युदयकारी लक्ष्मियों की वृद्धि के लिये क्रम से रश्मि, प्रेति संधि, प्रतिधि, विष्टम्भ, प्रवया, उष्णिग्, प्रकेत, तन्तु, संसर्प, ऐड, उत्तम, वयोधा, अभिजित् ये १६ पदाधिकारी या अध्यक्ष हों उनके उतने ही विभाग राष्ट्र में हों।

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा सम्पदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसे त्वा ॥ ८ ॥

त्रिवृदसि त्रिवृते त्वा प्रवृदसि प्रवृते त्वा विवृदसि विवृते त्वा सवृदसि सवृते त्वाक्रमोऽस्याक्रमाय त्वा संक्रमोऽसि संक्रमाय त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ९ ॥

प्रजापतिर्देवता भुरिगार्ष्यनुष्टुप् गान्धारः। (९) विराड् ब्राह्मी जगती। निषादः॥

भा०—१ तू प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त करने और ज्ञान करने में समर्थ होने से 'प्रतिपत्' नाम का अधिकारी है। तुझको 'प्रतिपत्' अर्थात् प्राप्त होने योग्य पद के लिये लिये नियुक्त करता हूँ। २. अनुरूप या अनुकूल हितकारी पदार्थों को प्राप्त करने में समर्थ होने से तू 'अनुपद' है। तुझको 'अनुपद' पद पर नियुक्त करता हूँ। ३. अच्छी प्रकार से समस्त पदार्थों का ज्ञान करने और प्राप्त करने वाला होने से तू 'सम्पत्' है। तुझ को 'सम्पद्' वृद्धि के लिये नियुक्त करता हूँ।

४. तेजःस्वरूप होने से तू 'तेजस्' हैं। तुझको तेज की वृद्धि के लिये उसी पद पर नियुक्त करता हूँ। ५. तू 'तीनों लोकों में यशस्वी' होने से त्रिवृत् है। तुझको 'त्रिवृत्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। ६. तू दूर देश में भी व्यवहार करने में समर्थ होने से 'प्रवृत्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। ७. तू समस्त प्रजाओं में समान रूप से व्यवहार करने में समर्थ है अतः तुझे 'सवृत्' पद पर नियुक्त करता हूँ। ८. तू विविध दशाओं और प्रजाओं और कार्यों में व्यवहार करने में समर्थ होने से 'विवृत्' है। अतः तुझे 'विवृत्' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। ९. तू सब तरफ आक्रमण करने में समर्थ है। अतः तुझे आक्रमण करने के पद पर नियुक्त करता हूँ। १०. तू सब तरफ फैल जाने में समर्थ होने से 'संक्रम' है तुझे 'संक्रम' नाम पद पर नियुक्त करता हूँ। ११. तू उन्नत पद या स्थानों पर क्रमण करने में समर्थ होने होने से 'उत्क्रम' है तुझे 'उत्क्रम' पद पर नियुक्त करता हूँ। १२. तू ऊंचे प्रदेशों में क्रमण करने से समर्थ होने से 'उत्क्रान्त' है। तुझे में ऊंचे स्थानों में चढ़ जाने के कार्य पर ही नियुक्त करता हूँ।

हे राजन्! इस प्रकार योग्य २ कार्यों के लिये योग्य २ पद पर, योग्य २ पुरुषों को नियुक्त करके तू अध्यक्ष रूप अपने ही बल वीर्य या पराक्रम से अपने पराक्रम, बल वीर्य की वृद्धि कर।

[1]राज्ञ्य॑सि प्राची दिग्वस॑वस्ते देवा अधि॑पतयोऽग्निर्हे॑तीनां प्र॑तिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोम॑: पृथि॒व्या४ँ श्र॑यत्वाज्य॑मुक्थमव्य॑थाय स्तभ्नातु रथन्त॒रꣳ साम॒ प्रति॑ष्ठित्या अ॒न्तरि॑क्ष॒ ऋष॑यस्त्वा [2]प्रथम॒जा दे॒वेषु॑ दि॒वो मात्र॑या वरि॒म्णा प्र॑थन्तु विध॒र्त्ता चा॒यमधि॑पतिश्च॒ ते त्वा॒ सर्वे॑ संविदा॒ना नाक॑स्य पृ॒ष्ठे स्व॒र्गे लो॒के यज॑मानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

वस्वादयो देवताः। (१) विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) ब्राह्मी। मध्यमः।

भा०—पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य के उदय से प्रकाशमान् है उसी प्रकार राजा के तेज और पराक्रम से तेजस्विनी हे राजशक्ते ! तू भी रानी के समान सर्वत्र तेजस्विनी है। वसुगण पदाधिकारी लोग तेरे पालन करने वाले अधिकारी पुरुष हैं। अग्रणी सेनापति समस्त शस्त्र अस्त्रों और अस्त्रधारी सेनाओं का धारण करने वाला है। तुझको त्रिवृत् नामक स्तोम अर्थात् पदाधिकारी इस पृथिवी पर मन्त्र, प्रजा, सेना इन तीनों शक्तियों सहित स्थापित करे। संग्रामोपयोगी युद्ध विद्या या शासन तुझको स्तम्भ के समान आश्रय देकर स्थिर करे। रथों से तरण करने वाला क्षात्रबल तेरी प्रतिष्ठा के लिये हो। मन्त्रद्रष्टा लोग तुझको विद्वानों, या विजयी राजाओं या पदाधिकारियों के बीच के ज्ञान प्रकाश के बड़े परिमाण से और विशाल सामर्थ्य से विस्तृत करें। विशेष पदों के धारक जन और अध्यक्ष लोग वे सब मिल कर परस्पर सहयोग और सहमति करते हुए तुझको दुख से सर्वथा रहित सुखमय प्रदेश में स्थापित करें। और उसी उत्तम सुखमय लोक में राष्ट्रयज्ञ के विधाता राजा को भी स्थापित करें। शत० ८। ६।५॥

[१] विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳪश्रयतु प्रउगमुक्थम व्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा [२] प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

रुद्रा देवताः। (१) स्वराड ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—दक्षिण दिशा जिस प्रकार सूर्य के प्रखर ताप से बहुत अधिक उज्ज्वल होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू विशेष तेज और विविध ऐश्वर्यों से शोभा युक्त है। शत्रुओं को रुलाने में समर्थ रुद्रगण तेरे अधि-

पति हैं। इन्द्र शस्त्रास्त्रों का धारक है। राष्ट्र के रक्षक और धारक १५ विभाग तुमको पृथिवी पर स्थिर रखें। कष्ट न होने देने के लिये नाना अधिकारियों की उत्कृष्ट योजना या उत्तम २ पुरुषों की उत्तम २ पदों पर स्थापना रूप उक्थ अर्थात् अभ्युदय का कार्य या बल राष्ट्र को थामे रहे। प्रतिष्ठा के लिये महान् बल सामर्थ्य हो। (अन्तरिक्ष ऋषयः) इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८। ६।१।६॥

सम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳪ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपᳪ साम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

आदित्या देवताः। (१) भुरिग् ब्राह्मी जगती। निषादः। (२) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—पश्चिम दिशा जिस प्रकार उज्ज्वल होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते! तू भी अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त कर लेने के बाद 'सम्राट्' की शक्ति बन जाती है। आदित्य के समान तेजस्वी पदाधिकारीगण तेरे अधिपति होते हैं। शत्रुओं को वारण करने में समर्थ पुरुष शस्त्रों को धारण करने वाला होता है। शरीर में दश हाथ की अंगुलियों, बाहु, टागें ४, शिर, उदर, और आत्मा इन १७ अंगों के समान राष्ट्र को धारण करने वाले १७ घटक विभागों से सम्पन्न अधिकारीगण तुझको पृथिवी पर स्थिर रखें। वायु के समान वीर भटों के नायक का सेनाबल राष्ट्र-व्यवस्था को पीड़ा न पहुँचाने के लिये दृढ़ करे। और उसके आश्रय के लिये 'वैरूप' अर्थात् विविधि प्रकार की प्रजा का विविध बल ही रहे। अन्तरिक्ष ऋषयः० इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८। ६। १। ७।

'प्रउगम्-उक्थम्'—तद् यत् अभिप्रायुञ्जत तत् प्रउगस्य प्रउगत्वम् ॥ प्राणाः प्रउगम् । तस्माद् बहवो देवता प्रउगे शस्यन्ते । कौ० १४ । ५ ॥ ग्रहोक्थं वा एतद् यत् प्रउगम् । ऐ० ३ । १ ॥ सब तरफ उत्तम अधिकारियों को नियोजन करना या ग्रहों की या राज्याङ्गों की स्थापना 'प्रउग' कहाता है । इसमें बहुत से 'देव' राजपदाधिकारी पुरुषों का वर्णन होता है । प्राण एव उक् तस्य अन्नमेव थम् शत० । १० । ४ । १ । २३॥ अग्निर्वा उक् तस्याहुतय एव थम् । १० । ६ । २ १० । अतो हि सर्वाणि नामानि उत्तिष्ठन्ति । विड उक्थानि । ता० १८ । ८ । ६ । जिस प्रकार शरीर में प्राण और वेदि में अग्नि है उसी प्रकार राष्ट्र में वह पद जिस पर मुख्य पदाधिकारी नियुक्त है 'उक्थ' कहाता है । इसमें पदाधिकार और उसका भोग्य वेतन और ऐश्वर्य दोनों सम्मिलित हैं । इसी का दूसरा नाम 'शस्त्र' है । इसे सामान्यतः 'धारा' कह सकते हैं ।

मरुत्वतीयम् उक्थम् । एतद् वार्त्रघ्नमेवोक्थं यन्मरुत्वतीयम एतेन हीन्द्रः पृतना अजयत् । कौ० १५ । २ । तदेतत् पृतनाजिदेव सूक्तम् । एतेन हीन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० । १५ । ३ ।

स्वराडस्युदीची दिङ् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमो हेतीनां प्रतिधर्त्तैकविंशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬश्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु । वैराजᳬसाम प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

मरुतो देवताः । भुरिग् अत्यष्टिः । गांधारः । (२) बृहती । मध्यमः ॥

भा०—उत्तर दिशा जिस प्रकार स्वतः प्रकाशमान् है, उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू स्वयं दीप्तिमती होने से 'स्वराट्' है । तेरे स्वामी वायुओं के समान तीव्र गतिशील हैं । शस्त्रों का धारणकर्त्ता, 'सोम' है ।

शरीरगत २१ अंगों के समान २१ विभागों के अधिकारीगण तुझको पृथ्वी पर स्थिर रक्खें। कष्ट न होने देने के लिये 'निष्केवल्य उक्थ' अर्थात् एकमात्र राजा का ही बल उसको पुष्ट करे। सर्वोपरि राजा की आज्ञा का बल ही उसकी प्रतिष्ठा के लिये पर्याप्त है। अन्तरिक्षे ऋषयः० इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८। ६। १। ८।

निष्केवल्यम् उक्थम्—अथैतदिन्द्रस्यैव निष्केवल्यम्। तन्निष्केवल्यस्य निष्केवल्यत्वम्। कौ० १५। ४। राजा का अपना ही सर्वोपरि प्रधान पदाधिकार 'निष्केवल्य' है। उसके अधिकारों का विधान 'निष्केवल्य उक्थ है।

'अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या अन्तरिक्ष ऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १४ ॥

(१) विश्वेदेवाः देवताः। प्रकृतिः। धैवतः। (२) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः।

भा०—सबसे ऊपर की दिशा जिस प्रकार सबसे ऊपर विराजमान् है उसी प्रकार हे राज-शक्ते! तू भी समस्त राष्ट्र में सर्वोपरि रहकर प्रजा का पालन करती है। समस्त विद्वान्गण तेरे अधिपति हैं। शस्त्रों का धारणकर्त्ता 'बृहस्पति' है। २७ और ३३ विभागों के अधिकारीगण तुझे पृथ्वी पर स्थिर करें। वैश्वदेव और आग्निमारुत दोनों 'पद' राज्यकार्य में पीड़ा न पहुँचने देने के लिये तुझे संभालें। शाक्वर और रैवत दोनों बल उसके आश्रय के लिये हों। अन्तरिक्षे ऋषयः त्वा० इत्यादि पूर्ववत्। शत०। ८। ६। १। १९॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ । दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

परमेष्ठी ऋषिः । हरिकेशो वसन्त ऋतुर्देवता । विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—संवत्सर में ऋतुओं के समान प्रजापालक राजा के अधीन ५ मुख्य सरदारों का वर्णन करते हैं । यह पूर्व की ओर, सूर्य की किरणों के समान तेजों से प्रकाशमान्, वसन्त ऋतु के समान नये २ कोमल हरे पीले पत्रों रूप केशों से युक्त है । उसके अधीन वसन्त ऋतु के 'मधु' और 'माधव' दो मासों के समान रथों के सञ्चालन में परम बुद्धिमान् 'रथगृत्स' और रथों के द्वारा पराक्रम करने में कुशल 'रथौजाः' ये दोनों क्रमशः सेनानायक ग्रामनायक हैं । इनके अधीन पुञ्ज रूप होकर स्थान में विद्यमान् 'सेना' और क्रतु अर्थात् प्रज्ञा का एकमात्र आश्रय 'समिति' ये दोनों स्त्रियों के समान साथ रहती हैं, और वे आप्त पुरुषों द्वारा आगे बढ़ने वाली होने से 'अप्सरा' कहाती हैं । इनके अधीन दाढ़ों से काटने वाले पशु के समान मार काट करने वाले भट लोग शस्त्र हैं, और पुरुषों का पुरुषों के द्वारा वध करना उत्तम श्रेणी के अस्त्रादि हैं । उनका हम आदर करें । वे हमारी रक्षा करें । वे हमें सुखी करें । वे और हम जिसको द्वेष करें और जो हमारे से प्रेम का वर्ताव न करके हमसे द्वेष करता है उसको, इनके हिंसाकारी मुख में या कष्टदायी हवालात में डालें । शत० ८ । ६ । ११६ ॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती

रत्नाᳫं सि प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृड-
यन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

परमेष्ठी ऋषिः । विश्वकर्मा ग्रीष्मर्तुर्देवता । निचृत् प्रकृतिः । धैवतः ॥

भा०—दक्षिण दिशा में यह साक्षात्-वायु के समान बलशाली राज्य के कार्यों का विधायक 'विश्वकर्मा, नाम पदाधिकारी है । उसके 'रथस्वन' और 'रथेचित्र' नामक दो प्रतापी अधिकारी हैं । जिसके रथ में अद्भुत शत्रु-भयकारी शब्द निकलता हो वह 'रथस्वन' और जिसके रथ में चित्र विचित्र रचना और युद्धार्थ विचित्र उपकरण हों वह 'रथेचित्र' कहाता है । मेनका और सहजन्या दो सहयोगिनी हैं । जिसको सब मानें वह विद्वानों की सभा 'मेनका' है । और जनसमुदाय की संघ-शक्ति 'सहजन्या, है । पीड़ा प्रदान करने वाले शस्त्रधर और गुप्त घातक लोग उसके सामान्य खड्ग के समान हैं । राक्षस स्वभाव के क्रूर वधक लोग उसके उत्कृष्ट शस्त्र के समान हैं । तेभ्यः नमः अस्तु० इत्यादि पूर्ववत् ॥ शत० ८ । ६ । १ । १७ ॥

अयं पश्चाद्विश्वव्यचास्तस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानीग्रा-
मण्यौ । प्रम्लोचन्ती चानुम्लोचन्ती चाप्सरसौ व्याघ्रा हेतिः
सर्पाः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १७ ॥

वर्षर्त्तुर्विश्वव्यचा देवताः । कृतिः । निषादः ॥

भा०—पीछे की ओर यह समस्त विश्व में फैलने वाला अधिकारी है जिसके 'रथप्रोत' और 'असमरथ' क्रम से सेनानायक और ग्राम-नायक हैं । जो सदा रथ पर ही चढ़े रह कर युद्ध करे वह 'रथप्रोत' और जिसके मुक़ा-बले में दूसरा कोई रथ न लड़ सके वह 'असमरथ' है । उन दोनों की 'प्रम्लोचन्ती' और 'अनुम्लोचन्ती' ये दो शक्तियां हैं । दिन के समान प्रकाश करने वाली विद्युत् आदि पदार्थ-विज्ञान की शक्ति 'प्रम्लोचन्ती' और रात्रि के समान अन्धकार करने वाली या सबको सुला देने वाली या

वश करने वाली शक्ति 'अनुम्लोचन्ती' है। व्याघ्र के समान शूर पुरुष 'हेति' अर्थात् उसके साधारण शस्त्र हैं, और सांपों के समान कुटिलाचारी एवं विषादि द्वारा प्रस्वापन करने वाले लोग उत्कृष्ट अस्त्र हैं। तेभ्यः नमः इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८।६।१।१८।

अयमुत्तरात्संयद्वसुस्तस्य तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ। विश्वाची च घृताची चाप्सरसावापो हेतिर्वातः प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

संयद्वसुः शरदृतुर्देवता। भुरिगतिधृतिः। षड्जः ॥

भा०—उत्तर की ओर धनार्थी पुरुष जिसके पास आते हैं वह वासशील प्रजाओं का संयमन करने वाला है। उसके 'तार्क्ष्य' और 'अरिष्टनेमि' सेनानायक और ग्रामनायक हैं। अन्तरिक्ष में तीक्ष्ण बाणों को फेंकने वाला 'तार्क्ष्य' और अहिंसित नियमन शक्ति वाला 'अरिष्टनेमि' कहाता है। उनकी 'विश्वाची' और 'घृताची' ये दो शक्तियां हैं। समस्त जनों को विषम में बांधने वाली व्यवस्था 'विश्वाची' है और सर्वत्र पुष्टिकारक पदार्थों को प्राप्त कराने वाली शक्ति 'घृताची' है। उनके जल सामान्यशस्त्र और वायु उत्कृष्ट शस्त्र हैं। तेभ्यः नमः० इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८।६।१।१९।

अयमुपर्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

हेमन्तर्त्तुरर्वाग्वसुर्देवता। निचृत् कृतिः। निषादः ॥

भा०—सबके ऊपर यह अन्न-समृद्धि देने वाला राजा है। उसके

सेना द्वारा परसेना को विजय करने वाला 'सेनजित्' और उत्तम सेना वाला 'सुषेण' ये सेनानायक और ग्रामनायक हैं। 'उर्वशी' और 'पूर्वचित्ति' ये शक्तियां हैं। विशाल राष्ट्र को वश करने वाली शक्ति 'उर्वशी', और पूर्वप्राप्त देशों से धन संग्रह करने वाली या पूर्व ही समस्त कर्त्तव्य का निर्धारण करने वाली 'पूर्वचित्ति' कहाती है। उसका घोर गर्जन करने वाला 'शस्त्र' है। विद्युत के समान तीव्र दीप्ति से पड़ने वाला उत्कृष्ट अस्त्र है। तेभ्यः नमः० इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८। ६। १। २०॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति ॥ २० ॥

अग्निर्ऋषिः। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—अग्नि के समान प्रतापी पुरुष आकाश का और पृथिवी पर के समस्त प्राणियों का महान् स्वामी है। वह आप्त प्रजाओं के बलों को बढ़ाता है।

आत्मा प्राणों का नेता होने से अग्नि है। वह सब का शिरोमणि, मस्तक से लेकर और चरण तक का महान् स्वामी है। वह प्राणों के बलों की वृद्धि करता है। इसी प्रकार परमेश्वर सब का शिरोमणि आकाश और पृथिवी का स्वामी है। वह मूलकारण प्रकृति के परमाणुओं में उत्पादक शक्ति को अधीन करता है। व्याख्या देखो अ० ३। १२॥

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥

विरूप ऋषिः अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—यह साक्षात् अग्रणी राजा दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी है। वह सहस्रों सुखों से युक्त और सैकड़ों ऐश्वर्यों वाले बल और ऐश्वर्य का पालक, और सबके शिर के समान उच्च पद पर विराजमान है। वही समस्त ऐश्वर्यों का भी स्वामी है।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ११ । ३२ उत्तरार्धं)

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो (१३ । १५)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥

बुधगविष्ठिरावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—गाय तथा उषा के आगमन काल में समिधा से जिस प्रकार होमाग्नि प्रदीप्त होती है, उसी प्रकार राष्ट्र के प्रजाजनों के तेज से राजा को प्रज्वलित किया जाता है । ऊपर उड़ने वाले पक्षी जिस प्रकार शाखा का आश्रय लेने के लिये बढ़ते हैं, और सूर्य की किरणें जिस प्रकार आकाश की ओर बढ़ती हैं, उसी प्रकार बड़े २ पदाधिकारी लोग व्यापक उदार नीति को या कीर्त्ति को प्राप्त करते हैं । और तेजस्वी पुरुष लोग सुखमय राष्ट्र को भली प्रकार प्राप्त करते हैं ।

अवोचाम कवये मेध्याय मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥२५॥

अग्निर्देवता । निचृत् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—उत्तम आचरणों से युक्त, क्रान्तदर्शी, तथा बलवान् पुरुष के लिये, हम वन्दना योग्य वचन का प्रयोग करें । वेदवाणी में स्थिर विद्वान् विनय भाव से प्रकाशमय परमेश्वर के विषय में स्तुतिसमूह को ऐसे प्रदान करे जैसे किरणों में स्थित सूर्य आकाश में बहुत से लोकों में फैलने वाले प्रकाश को प्रदान करता है ।

अथवा—पृथिवी पर स्थिर रूप से रहने वाला प्रजाजन नमन या

दमनकारी बल से प्रभावित होकर अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष में वीर्य और सामर्थ्य ऐसे प्रदान करती है जैसे परमेश्वर आकाश में बहुत से लोकों में व्यापक प्रकाशमान् सूर्य को स्थापित करता है।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ २६ ॥

भा०—यह सर्वश्रेष्ठ पुरुष हिंसारहित राष्ट्र के पालन के कार्यों में या युद्धों में सबसे उत्तम व्यवस्था करने हारा, दानशील होकर, स्तुति करने योग्य है। वही राष्ट्र के धारण करने वाले पुरुषों द्वारा इस राष्ट्र-शासन के मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है। ज्ञानी विद्वान् जिस प्रकार वनों में व्यापक अग्नि को विविध उपायों से प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार वे अद्भुत तेजस्वी तथा विविध सामर्थ्यों से सम्पन्न इस प्रधान पुरुष को प्रजा के हित के लिये विविध प्रकार से प्रकाशित करते हैं।

जनस्य गोपा अजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः ॥२७॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—नेता राजा नये प्राप्त राष्ट्र के शासन-कार्य के संचालन के लिये, उत्तम बल, कर्म और ज्ञानवाला होकर, सदा जागरणशील, साव-धान होकर, समस्त प्रजाजन का रक्षक रहे। और वह मुखपर घृत लगाये ब्रह्मचारी के समान तेजस्वी होकर, तथा आकाश में व्यापक बड़ी दीप्ति के समान कान्तिमान् होकर प्रजा के भरण पोषण करने हारे विद्वान् पुरुषों से तेजस्वी होकर, विविध ऐश्वर्यों से और गुणों से प्रकाशित होता है।

त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः २८

अग्निर्देवता। विराडार्षी जगती। निषादः।

भा०—हृदय के गुह्यस्थान में स्थित और आत्मा में विद्यमान् परमे-

श्वर का ज्ञानी योगाभ्यासी पुरुष जिस प्रकार साक्षात् दर्शन करते हैं, और जिस प्रकार प्रत्येक काष्ठ में विद्यमान् गुप्तरूप से स्थित अग्नितत्व को विज्ञानवेत्ता प्राप्त करते हैं, और जिस प्रकार वह परमेश्वर प्राणायाम और ध्यानाभ्यास से मथित होकर प्रकट होता है, और जिस प्रकार अरणियों से मथी जाकर अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार अपनी और शत्रु सेना के बीच में युद्धादि द्वारा मथा जकार हे राजाग्नि ! तू बड़े भारी बल रूप में प्रकट होती है। हे शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के प्राणरूप ! तुझको बल का पुञ्ज शक्ति से उत्पन्न हुआ कहते हैं।

सखा॑यः सं वः॑ सम्यञ्च॒मिषु॒ꣳ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑ ।
वर्षि॑ष्ठाय क्षि॒तीना॑मू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ २९ ॥

इष ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे मित्रजनो ! आप लोग राष्ट्र निवासी प्रजाजनों पर समस्त कामना योग्य सुखों का वर्षण करने हारे, और सब निवासियों से सबसे बड़े हुए, और बल पराक्रम को नियम व्यवस्था में रखने वाले, शत्रु विजयकारी अग्नि स्वरूप तेजस्वी पुरुष को सर्वोत्तम अन्न या अभिलाषा-योग्य पदार्थ और स्तुतियों या पदाधिकारों का अच्छी प्रकार प्रदान करो।

सꣳस॒मिद्यु॑वसे वृषन्नग्ने॒ विश्वा॒न्यर्य्य आ ।
इडस्प॒दे समि॑ध्यसे॒ स नो॒ वसू॒न्या भ॑र ॥ ३० ॥

संवनन ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! हे प्रजाओं पर सुखों के वर्षक ! तू स्वामी होकर समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है। और पृथ्वी के पृष्ठ पर सब तरह से प्रकाशित होता है। और समस्त ऐश्वर्यों को वह तू हमें निरन्तर प्राप्त कर।

त्वां चि॑त्रश्रवस्तम॒ हव॑न्ते वि॒क्षु ज॒न्तवः॑ ।
शो॒चिष्के॑शं पुरुप्रि॒याग्ने॑ ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥ ३१ ॥

प्रस्कण्वः ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् ॥

भा०—हे आश्चर्यकारी नाना अन्न आदि ऐश्वर्यों और यशों के सबसे बड़े स्वामिन् ! हे बहुत प्रजाओं के प्रिय ! हे अग्रणी पुरुष ! स्वीकार करने योग्य राष्ट्र के भार को अपने ऊपर उठाने के लिये, प्रजाओं में से समस्त जन दीप्तियुक्त किरणों वाले सूर्य के समान दीप्तिमान् तुझको बुलाते हैं तुझे चाहते हैं ।

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिथं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! इस आदर सत्कार के भाव द्वारा तुम्हारे प्रिय, तुम सबको खूब चेताने वाले, अत्यन्त बुद्धिमान्, उत्तम यज्ञशील, सबके आदर योग्य, स्वयं स्थिर, बल को विनष्ट न होने देने हारे अग्रणी राजा को मैं बुलाता हूँ । आप सबके सामने प्रस्तुत करता हूँ ।

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥ ३३ ॥

अग्निर्देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—सबके समान रूप से प्रतिनिधि दीर्घायु पुरुष को मैं प्रस्तुत करता हूँ । वह रोष रहित और समस्त विश्व को अन्न देने वाले सामर्थ्य से युक्त होकर सबको सन्मार्ग में लगाता है । उत्तम रीति से बुलाया आकर वह रथादि से गमन करता है ।

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवथंराधो जनानाम् ॥ ३४ ॥

अग्निर्देवता । आर्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—वह अच्छी प्रकार अधिकार प्राप्त करके राष्ट्र के कार्य को रथ के समान चलाता है । वह विद्वान् ब्रह्मवेत्ता से युक्त, तथा यज्ञ के समान

उत्तम विद्वानों से युक्त होकर, राष्ट्र में बसने वाले मनुष्यों के लिये उत्तम कर्मवान् होकर भोगने योग्य ऐश्वर्य को प्रदान करता है।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥

गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः।

भा०—हे बल के कारण उच्च पद को प्राप्त राजन्! हे अग्रणी नेतः! तू गौ आदि पशु सम्पत्ति से युक्त ऐश्वर्य का स्वामी है। हे ऐश्वर्यवान् राजन्! हमें तू बड़ा भारी अन्न आदि ऐश्वर्य तथा कीर्ति प्रदान कर।

स इधानो वसुष्कविरग्निरीडेन्यो गिरा।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥

गोतमो राहूगण ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—अपने तेज से देदीप्यमान् सब प्रजा का बसाने हारा, क्रान्तदर्शी, वाणियों से सदा स्तुति योग्य होकर, हे बहुत से सेना-बल से युक्त राजन्! तू हमारे धनैश्वर्य से युक्त राष्ट्र में निरन्तर तेजस्वी होकर रह।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ३७ ॥

गोतमो राहूगण ऋषिः अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे अग्ने! हे तीक्ष्ण होकर शत्रुओं के अंग भंग करने वाले! राजन्! रात्रि के अवसरों में, दिन और प्रातः कालों के अवसरों में भी वह तू प्रजा के नाशक राक्षसों को एक २ करके भस्म कर डाल।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।

भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ ३८ ॥

सोभरिः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। उष्णिक् ककुब वा। ऋषभः। तृचः। प्रगाथः॥

भा०—अग्निहोत्र द्वारा आहुतियों से प्रदीप्त अग्नि के समान सब प्रकार से आदर योग्य अग्रणी पुरुष हमें कल्याणकारक हो। उसका दान

भी हमें सुखदायी हो। हे उत्तम ऐश्वर्यवन् ! तेरा हिंसारहित राज्य पालन का कार्य सबको सुखप्रद हो। और प्रशंसा योग्य कार्य भी सुखदायी हों।

भद्रा उत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये।
येना समत्सु सासहः ॥ ३९ ॥

सोभरिः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—समस्त स्तुतियां सुखकारी हों, और तू नगर को घेरने वाले दुष्ट पुरुषों के नाशक संग्राम-कार्यों में अपना कल्याणयुक्त चित्त कर। जिससे संग्रामों में तू उनका पराजय करने में समर्थ हो।

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।
वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥ ४० ॥

सोभरिः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—संग्रामों में तू शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ रहे अतः बल पराक्रमशील पुरुषों के स्थिर सैन्यों को अपने अधीन रख। और हम अभीष्ट कामनाओं और अभिलाषाओं के सहित तेरे अधीन ऐश्वर्य का भोग करें।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषंस्तोतृभ्य आभर ॥ ४१ ॥

कुमारवृषावृषी। अग्निर्देवता। निचृत् पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—जो प्रजाओं का बसाने हारा है, और जिसके पास दुधार गौएं शरण समझ कर प्राप्त हों, और शीघ्र गमनकारी अश्व और अश्वारोहीगण जिसको अपना गृह समझ कर शरण होते हैं। और वेगवान् या ऐश्वर्य-वान् तथा सदा स्थयी रूप से रहने वाले गृहस्थ पुरुष जिसको अपना शरण जान कर प्राप्त होते हैं मैं तो उस को 'अग्नि' शब्द से कहाने योग्य मानता और जानता हूँ ऐसे गुणों से युक्त हे अग्ने ! राजन् ! तू सत्य गुणों के प्रकाशक विद्वानों को अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करा।

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः ।
समर्वन्तो रघुद्रुवः सꣳ सुजातासः सूरय इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४२ ॥

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । पंक्तिः पंचम ॥

भा०—जो सबको बसाने वाला है, जिसके पास दुधार गौएं हैं, तीव्र वेग से जाने वाले अश्व और अश्वारोही जिसकी शरण आते हैं, जिसके पास उत्तम रूप से विद्या आदि में कुशल विद्वान् पुरुष पहुँचते हैं, वह 'अग्नि' नेता कहाने योग्य है, ऐसा मैं कहता हूँ। हे राजन्! उत्तम गुणों के वक्ता विद्वानों को तू अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर ।

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष आसनि ।
उतो न उत्पुपूर्या उक्थेषु शवसस्पत इषꣳ स्तोतृभ्य आभर ॥ ४३ ॥

वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृत् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे प्रजा के आह्लादक ! तू शत्रु-सेनाओं को विदारण करने में समर्थ विस्तृत दोनों पक्षों को अपने मुख्य भाग पर नियुक्त करता है। हे बल के स्वामिन् ! तू हमें ज्ञानों और उत्तम स्तुति योग्य व्यवहारों में ऊपर तक भर दे । विद्वानों को अन्नादि भोग्य पदार्थ प्राप्त करा ।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ४४ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्रणी नेतः ! जिस प्रकार अश्व को अन्नों से समृद्ध करते हैं, और जिस प्रकार वेद मन्त्रों से यज्ञ-कर्म को समृद्ध करते हैं, उसी प्रकार कल्याणकारी तथा हृदय में स्पर्श करने वाले अर्थात् अतिप्रिय उस परम उपकारी तुझ को तेरे योग्य नाना पुरस्कार योग्य पदार्थों से समृद्ध करें ।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
र॒थीर्ऋतस्य॑ बृह॒तो ब॒भूथ॑ ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! निश्चय से कल्याणकारी, बलवान्, कार्यसाधक, तथा महान् राष्ट्र-सञ्चालन के कार्य का रथ के स्वामी के समान नेता हो कर रह ।

ए॒भिर्नो॑ अ॒र्कैर्भवा॑ नो अ॒र्वाङ् स्व॒र्ण ज्योतिः॑ ।
अग्ने॒ विश्वे॑भिः सु॒मना॒ अनी॑कैः ॥ ४६ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्रणी राजन् ! इन अर्चना योग्य पूजनीय विद्वानों के साथ, और समस्त सैन्य-बलों के साथ रह कर साक्षात् तेजस्वी सूर्य के समान शुभ चित्त वाला होकर रह ।

अ॒ग्निꣳ होता॑रं मन्ये॒ दास्व॑न्तं॒ वसु॑ꣳ सू॒नुꣳ सह॑सो जा॒तवे॑दसं॒ विप्रं॒ न जा॒तवे॑दसम् । य ऊ॒र्ध्वया॑ स्वध्व॒रो दे॒वो दे॒वाच्या॑ कृ॒पा । घृ॒तस्य॒ विभ्रा॑ष्टि॒मनु॑वष्टि शो॒चिषा॒जुह्वा॑नस्य स॒र्पिषः॑ ॥ ४७ ॥

अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—ऐश्वर्य के ग्रहण करने वाले, ऐश्वर्य के दान करने वाले, प्रजा के बसाने हारे, शत्रु को पराजय करने में समर्थ सेना-बल के संचालक, अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष को मैं अग्रणी नेता होने योग्य जानता हूँ । जो सर्वोच्च तथा विजिगीषु पुरुषों को वश करने वाली शक्ति से स्वयं सुरक्षित राजा विजिगीषु होकर, चारों तरफ से युद्ध में आ आकर टूट पड़ने वाले सर्पणशील सेना-बल के तेज से, तेज की विविध प्रकार की दीप्ति की कामना करता है ।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिन्दाः ॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥ ४८ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० । २५, २६ ।

येन ऋषयस्तपसा सत्रमायन्निन्धाना अग्निं स्वराभरन्तः ।
तस्मिन्नहं निदधे नाके अग्निं यमाहुर्मनव स्तीर्णबर्हिषम् ॥ ४९ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—जिस तपश्चर्या के बल से वेदमन्त्रार्थ के ज्ञाता सत्य-ज्ञान को प्राप्त होते, और जिस ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ज्योति को प्रज्वलित करते हुए सुखमय लोक या पद पर मैं अग्रणी और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को स्थापित करता हूँ । जिसको मनुष्य लोग समस्त प्रजाओं से ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान् बतलाते हैं ॥ शत० ८ । ६ । ३१ । ११ ॥ श० १ । ३ । ४ । १९ ॥

तं पत्नीभिरनु गच्छेम देवाः पुत्रैर्भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः ।
नाकं गृभ्णानाः सुकृतस्य लोके तृतीये पृष्ठे अधि रोचने दिवः ॥ ५० ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विजिगीषु पुरुषो ! उस पूर्व कहे अग्रणी नेता की हम लोग पुत्रों, भाइयों, धर्मपत्नियों, और सुवर्ण आदि धातुओं सहित, परम सुख का ग्रहण करते हुए, उत्तम धर्माचरण के लोक में और उत्कृष्टतम आश्रय में, सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित स्थान में अनुसरण करें । शत० ८ । ६ । ३ । १९ ॥

आ वाचो मध्यमरुहद् भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥ ५१ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—यह प्रजा का भरण पोषण करने में समर्थ, सत् जनों का पालक, तथा विद्वान् अग्रणी राजा, राज्य की व्यवस्थाओं के मध्यस्थ न्यायकर्त्ता पद को प्राप्त करे। और पृथिवी की पीठ पर स्थापित होकर सत्य का प्रकाश करे। और जो सेना द्वारा संग्राम या कलह करना चाहते हैं उनको नीचे स्थान पर गिरा दे। शत० ८।६।३।२०॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन्।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्य उप प्रयाहि दिव्यानि धाम॥ ५२॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—यह अग्रणी राजा वीरों में सबसे अधिक वीर, सबसे अधिक दीर्घायु, हजारों योद्धाओं के बराबर बलवान् और प्रमाद न करता हुआ प्रकाशित हो। इस लोक समूह के बीच विशेष तेज से प्रकाशमान् होकर हे राजन्! तु दिव्य अधिकारों और पदों को भली प्रकार प्राप्त कर। शत० ८।६।३।२१॥

सम्प्रच्यवध्वमुप संप्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वाताꣳसीत् त्वयि तन्तुमेतम्॥५३॥

अग्निर्देवता। भरिगार्षी पंक्तिः। पंचमः॥

भा०—हे प्रजाजनो! आप लोग अच्छी प्रकार मिलकर आओ और साथ मिलकर प्रयाण करो। हे नेता और विद्वान् पुरुषो! आप सब मिल कर विद्वानों के जाने योग्य धर्माचरण की व्यवस्थाओं को बनाओ। और हे नेतः राजन्! युवा माता पिता, बार २ तेरी रक्षा में रहते हुए ब्रह्मचर्य का पालन एवं गृहस्थ धर्म का आचरण करते हुए, इस विस्तृत राष्ट्र रूप यज्ञ को या प्रजापालन रूप सन्तति कार्य को बराबर बनाये रक्खें।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ५४

अग्निर्देवता आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे गृह पति के समान प्रजापालक राजन्! तू जाग। तू प्रत्येक कार्य के लिये जागृत रह। तू और यह प्रजाजन दोनों मिलकर अभिलषित सुख के देने वाले उत्तम कर्म, दान, यज्ञ, तप आदि, और 'पूर्त्त' अर्थात् शरीर और गृह को पूर्ण करने वाले ब्रह्मचर्य और कृषि कूप आदि कर्म, इनका पालन करो। और इस सर्वोत्कृष्ट एकत्र होने के समान, गृहस्थ और राष्ट्र में समस्त देवगण, विद्वान् और राजा लोग और यजमान गृहपति और राष्ट्रपति भी आकर विराजें। शत० ८।६।३।२३॥

येन॒ वह॑सि स॒हस्रं॒ येना॑ग्ने सर्ववेद॒सम्।
तेने॒मं य॒ज्ञं नो॑ नय॒ स्व॒र्दे॒वेषु॒ गन्त॑वे॥ ५५॥

अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे गृहपते! तथा राष्ट्रपते! जिस बल से तू हजारों अपरिमित प्रजाओं को धारण करता है, और जिस बल से समस्त ऐश्वर्यों और समस्त वेदोक्त ज्ञानों और कर्मों को धारण करता है, उस सामर्थ्य से हमारे इस गृहाश्रम और राष्ट्र पालनस्वरूप कर्त्तव्य को विजयी और विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर सुख प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग पर ले चल। ८।६।३।२५॥

अ॒यं ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तो अरो॑चथाः।
तञ्जा॒नन्न॑ग्न॒ आ रो॒हाथा॑ नो वर्धया र॒यिम्॥ ५६॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ३। १४) और (अ० १२।५२) शत० ८।६।३।२४॥

तप॑श्च तप॒स्य॒श्च शैशि॒रावृ॒तू अ॒ग्नेर॑न्तः श्ले॒षो॒ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒माप॒ ओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॒ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। ये अ॒ग्नयः॒ सम॑नसोऽन्त॒रा द्याव॑पृथि॒वी इ॒मे शैशि॒रावृ॒तू अ॑भि॒कल्प॑माना॒ इन्द्र॑मिव दे॒वा अ॑भि॒सं॑वि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम्॥ ५७॥

शिशिरर्त्तुर्देवता। स्वराडुत्कृतिः। षड्जः॥

भा०—'तप और तपस्य' माघ और फाल्गुन दोनों शिशिर ऋतु के वो मास हैं। अग्ने; अन्त० इत्यादि १६ । २५ के समान जानो। शत० ८ । ७ । २ । ५ ॥

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्।
विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ।
सूर्यस्तेऽधिपतिस्तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥५८॥

विदुषी देवता। भुरिग् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—सर्वोच्च स्थान पर स्थित तेजस्वी राजा तुझ सूर्य से प्रकाशित पृथ्वी को ज्ञान और प्रकाश के आश्रय में स्थापित करे। शेष की व्याख्या देखो अ० १४ । १४ । शत० ८ । ७ । २१, २२ ॥

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा बृहस्पतिरस्मिन् योनावसीषदन् ॥ ५९ ॥
ता अस्य सूददोहसः सोमꣳ श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ॥ ६० ॥
इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमꣳ रथीनां वाजानाꣳ सत्पतिं पतिम् ॥ ६१ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० १२ मं० ५४, ५५, ५६ ॥) शत० ८ । ७ । २ । १-१९ ॥ ८ । ७ । ३ । ८ ॥

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥६२॥

वासिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राजन्! घास चारे के लिये लालायित अश्व के समान जब तू राष्ट्र को ग्रास करना अथवा शत्रु पर चढ़ाई के लिये जाना चाहता है तब और जब बड़े संवरण राजमहल आदि से निकल कर प्रस्थान करता है तब,

तू गाजे बाजे के साथ आगे बढ़ता हुआ जाता है। तब तेरे तेज के अनुकूल वायु के समान प्रबल वेगवान् वीर सैन्य तेरे पीछे पीछे जाता है। और तब तेरा ऐसा प्रयाण करना सब के चित्तों को आकर्षण करने वाला और शत्रुओं के राज्य समृद्धि को खैंच लाने वाला या शत्रुओं को उखाड़ देने वाला होता है। शत० ८।७।२९-१२॥

आयोष्ट्वा सदने सादयाम्यवतश्छायाया समुद्रस्य हृदये। रश्मीवतीं भास्वतीमा या द्यां भास्या पृथिवीमोर्वन्तरिक्षम् ॥६३॥

विदुषी देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे राज्यशक्ते! किरणों के समान तेजस्विनी, सूर्य की दीप्ति के समान प्रकाशवाली तुझ को, दीर्घायु तथा प्रजा के रक्षक राजा के आश्रय पर, और उसके आश्रय में, और समुद्र के समान गम्भीर अक्षय कोशवान् राजा के हृदय में, स्थापित करता हूँ। तू जो आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों को अपने तेज से प्रकाशित करती है। शत० ८।७।३।१३॥

स्त्री पक्ष में—आयुष्मान्, पूर्णायु पालक गम्भीर, अक्षय वीर्यवान् पुरुष के गृह में, उसकी छाया में, उसके गहरे हृदय में स्थापित करता हूँ। तू प्रभा के समान रश्मिवती और और भास्वती, तेजस्विनी हो। तू अपने सद्गुणों से तीनों लोकों को प्रकाशित कर।

परमेष्ठी त्वा सादयतु दिवस्पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं दिवं यच्छ दिवं दृंह दिवं मा हिंसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। सूर्यस्त्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६४ ॥

परमात्मा देवता। आकृतिः। पंचमः॥

भा०—व्याख्या देखो (१४।१२) (१४।१४) (१५।५८) शत० ८।७।१।२२॥ शत० ८।७।३।१८।१९॥

सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि ।
सहस्रस्योन्मासि साहस्रोऽसि सहस्राय त्वा ॥ ६५ ॥

विद्वान् देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू हजारों पदार्थों से युक्त इस विश्व का यथार्थ ज्ञान करने वाली है । तू सहस्रों ऐश्वर्यों की मापक अर्थात् सहस्रों के बल के तुल्य बलवान् है । हजारों से अधिक ऊंचे पद से युक्त है । इसी से तू सहस्रों के ऊपर अधिष्ठातृ होने योग्य है । तुझे मैं 'सहस्र' नाम उच्च पद के लिये प्राप्त करता हूँ । शत० ८ । ७ । ४ । ११ ॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः

[तत्र पञ्चदशोऽध्यायः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥

षोडशोऽध्यायः ।

अध्यायस्य परमेष्ठी देवाः प्रजापतिर्वा ऋषिः । रुद्रो देवता ।

॥ ओ३म् ॥ नमस्ते रुद्र मन्यवे उतो त इषवे नमः ।
बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

आर्षी गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे दुष्टों के रुलाने वाले राजन् ! तेरे अधीन रहने वाले तीक्ष्ण वीर पुरुषों को नमस्कार योग्य अन्न, शस्त्र, और वीर्य शक्ति प्राप्त हो । और तेरे बाणधारी सैन्य को अन्न प्राप्त हो । तेरी बाहु रूप सेना के दोस्तों को शत्रु को नमाने वाला वीर्य प्राप्त हो ।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ २ ॥

स्वराड् अनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—हे शत्रुओं के रुलाने हारे राजन् ! जो तेरी कल्याणकारिणी, सौम्य रूप वाली, पाप से अतिरिक्त पुण्य का ही प्रकाश करने वाली विस्तृत कानून आदि की व्यवस्था या आज्ञा-रूप वाणी है, उस शान्ति का विस्तार करने वाली वाणी द्वारा, हे व्यवस्था या वाणी से सब को शान्ति देने वाले ! तू सब को देख ।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

रुद्रो देवता । विराड् आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे आज्ञारूप या वाणी में सब को शान्तिदायक, या मेघ के समान सुखों को सब पर बरसाने वाले स्वरूप में सब को शान्तिदयक ! जिस बाण आदि शस्त्र गण को तू शत्रुओं पर फेंकने के लिये अपने हनन-कारी हाथ में धारण करता है हे विद्वानों के रक्षक या अपनी व्यवस्था में सब के रक्षक ! उसको मंगलकारक बनाये रख । मनुष्यों और अन्य जंगम गौ आदि पशुओं को मत मार ।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत् ॥ ४ ॥

रुद्रो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे समस्त वाणियों या आज्ञाओं में स्वयं आज्ञापक और व्यवस्थापक रूप से विद्यमान् राजन् ! तुझको हम कल्याणकारी वचन से भली प्रकार निवेदन करते हैं । जिससे हमारा समस्त प्राणि-वर्ग और राज्यव्यवहार राजयक्ष्मा आदि रोगों से रहित और परस्पर शुभ चित्त वाला हो ।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥५॥

एकरुद्रो देवता भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—सर्वश्रेष्ठ देवों अर्थात् राजाओं और विद्वानों और शासकों का हितकारी, शरीरगत और राष्ट्रगत रोगों और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ पुरुष, सबसे ऊपर अधिष्ठाता रूप से आज्ञापक होकर आज्ञा दे। हे ऐसे समर्थ राजन्! समस्त प्रकार के सांपों को जिस प्रकार विषवैद्य वश करता है उसी प्रकार तू भी सब प्रकार के सर्पों के समान कुटिलाचारी पुरुषों को उपायों से विनाश करता हुआ, और सब प्रकार की प्रजाओं को पीड़ा, रोग, कष्ट, बाधा देने वाली, नीच मार्ग में लगी हुई स्त्रियां वा नीच शक्तियां हैं, उन सबको राष्ट्र से दूर कर।

असौ यस्ताम्रो अ॑रुण उ॒त ब॒भ्रुः सु॑म॒ङ्गलः॑। ये चै॑नꣳ रु॒द्रा अ॒भितो॑ दि॒क्षु श्रि॒ताः स॑हस्र॒शोऽवै॑षा॒ꣳहेड ईमहे ॥ ६ ॥

रुद्रादेवता निचृदार्षी पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—यह जो तांबे के समान रक्त, अग्नि के समान तेजस्वी, सूर्य के समान भरण पोषण करने वाला, राष्ट्र का शुभ मंगल चाहने वाला सेनापति है और जो भी शत्रु को रुलाने वाले सैनिकगण इसके इर्द गिर्द समस्त दिशाओं में हजारों की संख्या में विराजमान् हैं, इनकी क्रोध वृत्ति को दूर करें, शमन करें।

अ॒सौ यो॑ऽव॒सर्प॑ति॒ नील॑ग्रीवो॒ विलो॑हितः।
उ॒तैनं॑ गो॒पा ऽअ॑दृश्र॒न्नदृ॑श्रन्नुदहा॒र्यः स दृ॒ष्टो मृ॑डयाति नः ॥७॥

७–१६ विराड् आर्षी पंक्तिः। पंचमः।

भा०—जो वह गले में नीलमणि बांधे, और विशेष रूप से लाल पोशाक पहने, निरन्तर आगे बढ़ा चला जाता है, उसको गौवों के पालक गोपाल और जल लाने वाली कहारिनें तक भी पहचानती हैं, वह आंखों से देखा जाकर हम प्रजाजनों को सुखी करे।

ब्रह्मध्यान में समाधि के अवसर के पूर्व ताम्र, अरुण, बभ्रु, नील, व रक्त आदि वर्णों का साक्षात् होता है। उस आत्मा के ही आधार पर रोदन

शील सहस्रों प्राणी आश्रित हैं। हम उनका अनादर न करें। क्योंकि उनमें वही चेतनांश हैं जो हम में हैं। उसी आत्मा को नीलमणि के समान स्वच्छ कान्तिमान् अथवा लालमणि के समान विशुद्ध लोहित रूप से इन्द्रिय-विजयी अभ्यासी जन और ब्रह्मामृत रस का आस्वादन करनेवाली चित्तभूतियां साक्षात् करती हैं, वह हमें सुखी करें।

ईश्वर-क्षत्र में—वह पापियों को पीड़ित करने से 'ताम्र' शरण देने से 'अरुण', पालन पोषण करने से 'बभ्रु', सुखमय रूप से व्यापक होने से 'सुमङ्गल' है। समस्त बड़ी शक्तियां, उसी पर आश्रित हैं। हम उनका अनादर न करें। वह प्रलयकाल में या जगत् को लीन करने वाला होने से 'नीलग्रीव' है, भविष्य में विविध पदार्थों का निरन्तर उत्पादक होने से 'विलोहित' है उसको संयमी जन और ब्रह्मरसपायिनी ऋतंभरा आदि चित्त वृत्तियां साक्षात् करती हैं। वह ईश्वर हमें सुखी करे।

नीवग्रीवा:—नीलास्य:—यथा चूलिकोपनिषदि नीलास्य: ब्रह्म शायिने। अत्र दीपिका—लीनमास्यम् मुखं प्रवृत्तिद्वारं रागादि येषां तथोक्ता:। तत्र नलयोर्वर्णविपर्ययश्छान्दस:—

यस्मिन् सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजंगमम्।
तस्मिन्नेव लयं यान्ति बुद्बुदाः सागरे तथा ॥ १७ ॥ चू० आ० ॥

नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ८ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—नील मणि से भूषित कण्ठ वाले, सहस्रों पर दृष्टि रखने वाले, प्रजा पर सुखों और शत्रु पर पर बाणों की वर्षा करने वाले सेनापति को शत्रुओं को नमाने का वज्र, अन्न और आदर-भाव प्राप्त हो। और जो इसके आधीन और भी सामर्थ्यवान् वीर पुरुष हैंमैं प्रजाजन उनके लिये भी अन्न आदि भोग्य पदार्थ, शस्त्रास्त्र बल और आदर करूं।

प्र मुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥ ९ ॥

भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे सेनापते ! धनुष की दोनों कोटियों में जयदायिनी डोरी को जोड़, और जो बाण तेरे हाथ में हैं उनको तू हे ऐश्वर्यवन् ! दूर तक शत्रुओं पर फेंक ।

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ऽउत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १० ॥

भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—शिर पर शुभ फुनगी या मौर को धारण करने वाले वीर पुरुष का क्या धनुष डोरी से रहित हो सकता है ?, नहीं । तो क्या बाणों से भरा तरकस बाणरहित हो सकता है ?, नहीं । इसके जो बाण हैं क्या वे नष्ट हो सकते हैं ?, नहीं । क्या इसकी तलवार का कोश खाली रह सकता है ?, कभी नहीं ।

या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज ॥ ११ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—हे अधिक वीर्यशालिन् या शत्रुओं पर मेघ के समान शर-वर्षक !, जो तेरे हाथ में वज्र और धनुष है उस रोगादि रहित विशुद्ध बाण से, तू सब प्रकार से हमारी सब तरफ से रक्षा कर ।

परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्नि धेहि तम् ॥ १२ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—हे रुद्र ! तेरे धनुष का बाण हमारी सब ओर से रक्षा करे । जो तेरे बाण आदि शस्त्र हैं उनको दूर रख । शस्त्रागार और तोपखाना नगर

से पर्याप्त दूर हों जिससे फटने पर नगर की हानि न हो। शस्त्रों तोपों को नगर के चारों ओर रक्षार्थ लगावें।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य शल्यानांमुखा शिवो नः सुमना भव॥ १३॥

निचृदार्घ्यनुष्टुप्। गान्धारः

भा०—हे सहस्रों कार्यों पर आंख रखने वाले राजन्! हे सैकड़ों बाणों के रखने योग्य तूणीरों और शस्त्रागारों वाले! तू धनुष को तान कर और बाणों के मुखों को खूब तेज़ करके भी हमारे लिये कल्याणकारी और हमारे प्रति शुभ चित्त वाला होकर रह।

नमस्त आयुधायानाततायं धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने॥ १४॥

स्वराडार्घ्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—सब ओर लड़ने वाले, स्वल्पकाय होकर भी शत्रु का पराजय करने में समर्थ तुझको हम प्रजागण आदर एवं अन्न आदि पदार्थ दें। और तेरे दायें बायें विद्यमान् सेनाओं को बल और अन्न प्राप्त हो। और तेरे धनुर्धर सेना-बल को भी अन्न या वीर्य प्राप्त हो।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः॥१५॥

कुत्स ऋषिः। निचृदार्षी जगती। निषादः।

भा०—हे सेनापते! तू हमारे बड़े वृद्ध, आदरणीय, पूजनीय और हमारे छोटे बालक अथवा छोटे पद के पुरुष को भी मत मार। वीर्यसेचन में समर्थ हमारे तरुण पुरुष को भी मत मार। और हमारे गर्भस्थ डिम्भ को विनष्ट मत कर। हमारे पिता को मत मार, और माता को भी मत मार। हे दुष्टों के रुलाने हारे। हमारे प्रिय शरीरों को भी मत पीड़ित कर।

मा नं स्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान्रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सद्मित् त्वा हवामहे १६

कुत्स ऋषिः । निचदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे दुष्टों के रुलाने हारे ! हमारे नवजात शिशु पर और पांच वर्ष से ऊपर के पुत्र पर हिंसा का प्रयोग मत कर । और हमारी आयु पर आघात मत कर । हमारे क्रोधयुक्त वीर पुरुषों का घात मत कर । हम लोग सदा अन्न आदि भेंट योग्य पदार्थों को लिये हुए तेरा ही आदर करते हैं ।

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः १७

(१७–४६) त्र्यशीती रुद्राः देवताः । निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—बाहु पर सुवर्ण पदक धारण करने वाले सेना नायक को वज्र का बल प्राप्त हो । दिशाओं के पलक को अन्न आदि प्राप्त हो । क्लेशों को हरण करने वाले, शत्रुओं को काट देने वाले वीर पुरुषों को अन्न बल प्राप्त हों । पशुओं के पालक को अन्न और बल प्राप्त हो । सूखे घास के समान शत्रु को जलाने वाले दीप्ति से युक्त तेजस्वी पुरुष को अन्न बल और आदर प्राप्त हो । मार्गों और मार्गगामी यात्रियों के पालक मार्गाध्यक्ष को राष्ट्र के अन्न में भाग या बल प्राप्त हो । नील केश वाले और यज्ञोपवीत के धारण करने वाले बालब्रह्मचारी को अन्न भाग और आदर प्राप्त हो । हृष्ट पुष्ट बालकों के पालक माता पिता को अन्नादि पदार्थ और आदर प्राप्त हो ।

अथवा—सेनानी दिशाम्पति, वृक्षपति, पशुपति, शष्पिजर, पथीनां पति, हरिकेश, उपवीती, ये राष्ट्र के भिन्न २ विभागों के अधिकारी हैं उनके हिरण्यबाहु, हरिकेश, त्विषीमान्, आदि ये मानवाचक पद हैं । उनके राष्ट्र के अन्न के भाग प्राप्त हों ।

अथवा १. सुवर्ण आदि धन के बल पर शासन करने वाला, पुरुष 'हिरण्यबाहु'। २. सेना का नायक 'सेनानी'। ३. दिशाओं का पालक दिक्पाल, 'दिशास्पाल'। ४. वृक्षों के समान शरणप्रद, बड़े धनाढ्य लोग, सब शरण योग्य 'वृक्ष' नामक अधिकारी। ५ क्लेशों के हरण करने वाले स्वयंसेवक लोग 'हरिकेश'। ६. पशुओं के पालक 'पशुपति'। ७ शष्प अथवा घास वा चराने का प्रबन्ध कर्त्ता 'शष्पिञ्जर'। नगर में प्रकाश का प्रबन्धकर्त्ता 'त्विषीमान्'। ८. मार्गों का स्वामी 'पथीनांपति'। ९ क्लेशों का हर्त्ता वैद्य 'हरिकेश'। १०. यज्ञोपवीत धारण करने वाले गुरुशिष्य 'उपवीति' ११. पुष्ट पशुओं का बालक 'पुष्टपति' ये सब भिन्न २ नाम के रुद्र 'जातसंज्ञ' अर्थात् नाम-पदधारी 'रुद्र' कहाते हैं उनके राष्ट्र में भाग अधिकार प्राप्त हों।

नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ व्याधिनेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ रु॒द्राया॑तता॒यिने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमः॑ सू॒तायाह॑न्त्यै॒ वना॑नां॒ पत॑ये॒ नमः॑ ॥ १८ ॥

निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—राज्य के भरण पोषण करने वाले शिकारी पुरुष को अन्न प्राप्त हो। वनैले पशुओं से खेतों के बचाने वाले को राष्ट्रान्न में से भाग प्राप्त हो। उत्पन्न होने वाले प्राणियों की वृद्धि करने के लिये जंगम प्राणियों के पालन-कर्त्ता को बलवीर्य प्राप्त हो। चारों तरफ विस्तृत शत्रु-दल पर आक्रमण करने वाले को बल प्राप्त हो। क्षेत्रों की रक्षा करने वाले को अन्न मिले। घोड़ों को हांकने में समर्थ और युद्ध में किसी को स्वयं न मारने वाले को अन्न प्राप्त हो। वनों के पालक को अन्न प्राप्त हो।

नमो॒ रोहि॑ताय स्थ॒पत॑ये वृ॒क्षाणां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भुव॒न्तये॑ वारि॑वस्कृ॒तायौष॑धीनां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ म॒न्त्रिणे॑ वाणि॒जाय॒ कक्षा॑णां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ उ॒च्चैर्घो॑षायाक्र॒न्दय॑ते प॒त्तीनां॒ पत॑ये॒ नमः॑ ॥ १९ ॥

विराडतिधृतिः । षड्जः ।

भा०—वृक्षारोपण करने वाले को अन्न प्राप्त हो। गृहादि निर्माण करने वाले तक्षक, राज आदि शिल्पी लोगों को अन्न प्राप्त हो। वृक्षों के पालक को अन्न प्राप्त हो। भूमियों के विस्तार करने वाले अर्थात् जंगल पहड़ी आदि की भूमि को ठीक करके खेत बनाने वाले पुरुष को अन्न प्राप्त हो। सेवा करने वाले पुरुष को अन्न प्राप्त हो। राज के मन्त्री को अन्न प्राप्त हो। वणिग्-व्यापार-कुशल पुरुष को अन्न प्राप्त हो। वन के झाड़ी, लता, घास आदि के पालन करने वाले पुरुष को अथवा राज-गृह के प्रान्तों के रक्षक को अन्न प्राप्त हो। राष्ट्रों में राजा की आज्ञा को ऊंचे स्वर से आघोषित करने वाले को शत्रुओं को रुलाने वाले को अन्न प्राप्त हो। पैदल सेना के पति को अन्न प्राप्त हो।

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः २०

अतिधृतिः । षड्जः ।

भा०—धनुष को पूर्ण रूप से तानकर शत्रु पर वेग से आक्रमण करने में समर्थ पुरुष को अन्न प्राप्त हो। वीर्यवान् सैनिकों के पति को अन्न प्राप्त हो। शत्रु को पराजय करने वाले को, और नियत लक्ष्य पर ठीक २ निशाना लगाने वाले को, और सब तरफ से शस्त्रों का प्रहार करने वाली सेनाओं के पति को अन्न प्राप्त हो। शस्त्रागार में अस्त्र शस्त्रों के पालक को अन्न प्राप्त हो। चोरों को वश में रखनेवाले कारगार के बड़े अध्यक्ष को अन्न प्राप्त हो। गुप्तरूप से राजा के कार्य से सर्वत्र विचरने वाले को, और भृत्य सेवक को, जंगलों के पालक वनाध्यक्ष को अन्न प्राप्त हो।

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो

सद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृ-न्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—शत्रुसेना को छल कर उनका पदार्थ प्राप्त करने वाले, उनमें कपट से रहने वाले को अन्न प्राप्त हो। खड्ग धारण करने में समर्थ और बाणों का तर्कस उठाने वाले वीर पुरुष को अन्न प्राप्त हो। उस २ नियम कार्य के करने वालों को अन्न प्राप्त हो। शत्रुओं का हनन करने की इच्छा वालों खांडे को धारण चलने वालों को अन्न प्राप्त हो। घरों से धन को और खेतों से अन्न आदि पदार्थों को हर लेने वाले पुरुषों नियुक्त दण्डाधिकारी को अन्न प्राप्त हो। तलवार लेकर रात को पहरा देने वालों को अन्न प्राप्त हो। जंगल आदि काटने वालों के अधिकारी पुरुष को अन्न प्राप्त हो।

नम उष्णीषिणे गिरिचराय कुलुञ्चानां पतये नमो नम इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमो नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमो नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमः ॥ २२ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ।

भा०—पगड़ी पहनने वाले ग्रामपति या अध्यक्ष को अन्न प्राप्त हो। पर्वतों पर रहने वाले कुलों के अध्यक्ष को अन्न प्राप्त हो। बाण वालों और धनुष लेकर विचरने वालों को अन्नादि प्राप्त हो। धनुष पर डोरी तानने वालों और बाण लगा कर छोड़ने वालों को अन्न प्राप्त हो। शत्रुओं का निग्रह करने वाले और बाण आदि शस्त्रास्त्रों को फेंकने वाले वीरों को अन्न प्राप्त हो।

नमो विसृजद्भ्यो विध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः स्वपद्भ्यो जाग्र-द्भ्यश्च वो नमो नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो नम-स्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमः ॥ २३ ॥

निचृदति जगती । निषादः ।

भा०—शत्रुओं पर बाण छोड़ने वालों तथा शत्रुओं को बेधने वालों को अन्न प्राप्त हो। युद्ध में आहत होकर लेट जाने वालों तथा जाग कर पहरा देने वालों को अन्न प्राप्त हो। सोने वाले, खड़े हुए, और दौड़ने वाले को अन्न प्राप्त हो।

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ आव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

शक्वरी । धैवतः ।

भा०—सभाओं को, सभाओं के सञ्चालक पतियों को, घुड़सवारों को, घुड़सवारों के प्रमुख नेताओं को, सब ओर व्यूह बनाकर शस्त्र फेंकने में कुशल सेनाओं को, विविध उपायों से शत्रुओं को बेधने वाली सेनाओं को, उच्चकोटि के सैनिकों की सेनाओं को, नाशकारिणी सेनाओं को अन्न प्राप्त हो।

नमो॑ ग॒णेभ्यो॑ ग॒णप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ व्राते॑भ्यो॒ व्रात॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ गृत्से॑भ्यो॒ गृत्स॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॒ विरू॑पेभ्यो वि॒श्वरू॑पेभ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २५ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ।

भा०—गण या संघ बनाकर सेना का कार्य करने वाले उन गणों के सरदार, समूह या कुल बना कर रहने वाले, और उन सघों के पालक कुल-पतियों को, पदार्थों के गुण-वर्णन करने वाले मेधावी विद्वान् पुरुषों और उन मेधावी पुरुषों के प्रमुख नेताओं को, और विविध प्रकार के रूप धारण करने वालों को और सब प्रकार स्वरूप बना लेने में सिद्धहस्त बहु-रूपिया आदि कुशल पुरुषों को अन्न प्राप्त हो।

नमः॒ सेना॑भ्यः सेना॒निभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमो॑ र॒थिभ्यो॑ अर॒थेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नमः॑ क्ष॒त्तृभ्यः॑ संग्रही॒तृभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ म॒हद्भ्यो॑ अर्भ॒केभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २६ ॥

भुरिगति जगती । निषादः ।

भा०—सेनाओं, सेनाओं के नायकों को, रथी और विना रथ वालों को क्षतों से त्राण करने वालों और कर आदि संग्रह करने वालों को बड़ों और छोटे सबको अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हो।

नम॒स्तक्ष॑भ्यो रथका॒रेभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॒: कुला॑लेभ्यः क॒र्मारे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ निषा॒देभ्य॑: पु॒ञ्जिष्टे॑भ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑: श्व॒निभ्यो॑ मृग॒युभ्य॑श्च वो॒ नम॑: ॥ २७ ॥

निचृत् शकरी । धैवतः ॥

भा०—बढ़ई, रथों के बनाने वाले शिल्पी, कुम्हार, लोहार वनों पर्वतों में रहने वाले, पुञ्जों के अधिष्ठाताओं, कुत्तों के सधाने वालों, मृगों के शिकारी, इन सब को यथोचित अन्न प्राप्त हो।

नम॒: श्वभ्य॒: श्वप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वाय॑ च रु॒द्राय॑ च॒ नम॑: श॒र्वाय॑ च पशु॒पत॑ये च॒ नमो॒ नील॑ग्रीवाय च शिति॒कण्ठा॑य च ॥२८॥

आर्षी जगती । निषादः ।

भा०—कुत्ते अथवा कुत्तों के समान चोरों का पता लगाने वाले, कुत्तों के पालक इन सबको अन्नादि प्राप्त हों। गुणों में श्रेष्ठ या पुत्रोत्पादन में समर्थ, शत्रुओं को रुलाने वाले, पशुओं के पालक, नीली गर्दन वाले या श्वेत गर्दन वाले इन सबको अन्नादि प्राप्त हो।

नम॑: कप॒र्दिने॑ च॒ व्यु॑प्तकेशाय च॒ नम॑: सहस्रा॒क्षाय॑ च श॒तध॑न्वने च॒ नमो॑ गिरिश॒याय॑ च शिपिवि॒ष्टाय॑ च॒ नमो॑ मी॒ढुष्ट॑माय॒ चेषु॑मते च ॥ २९ ॥

भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा० - जटिल ब्रह्मचारी, विशेष रूप से केश कटा कर रखने वाले संन्यासी, हजारों शास्त्रीय विषयों में चक्षु रखने वाले विद्वान् सैकड़ों धनुष

के प्रयोगों को जानने वाले, वाणी में रमण करने वाले कवि, पशुओं में लगे हुए, धनाढ्य वैश्य, वृक्षों के उद्यान आदि सेचन में समर्थ, और उत्तम वाणों वाले वीर, इन सबको अन्न प्राप्त हो।

नमो ह्रस्वाय वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—आयु में छोटे, शरीर के कद में छोटे अथवा रूप आदि गुणों में सुन्दर, शरीर में बड़े, और आयु में बड़े, पद में बड़े, समान वयस् के मित्रों में बड़े, या अधिकार में बड़े और योग्यता में बड़े, इन सब के लिये अन्न प्राप्त हो।

नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

स्वराड् आर्षी पंक्तिः। पंचमः ॥

भा०—शीघ्र कार्य करने वाले, निरन्तर बहुत देर तक अनथक चलने वाले, शीघ्र कार्य करने में चतुर, चुस्ती से करने योग्य कार्यों में कुशल, तरङ्ग या उमङ्ग में आकर काम करने वाला, ऊंचे गर्जना के साथ कार्य करने वाले और जलादि से चारों ओर घिरे द्वीप के समान शत्रु द्वारा घिर जाने पर भी उन अवसरों और ऐसे स्थानों पर कार्य करने में कुशल, इन सब प्रकार के पुरुषों को अन्न प्राप्त हो।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—आयु और बल में बड़े, आयु और मान में छोटे, पूर्व उत्पन्न, पीछे उत्पन्न, बड़ों छोटों के बीच के भाई, धृष्टतारहित, छोटे कर्म में लगे, और सब से नीचे के आश्रय रूप पुरुष इन सब को अन्न प्राप्त हो।

नमः स्रोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥३३॥

आर्षी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—अपना राष्ट्र और परराष्ट्र दोनों में रहनेवाला प्रणिधि, शत्रु पर चढ़ाई करने और उसको पीछा करने में समर्थ, शत्रुओं को बांधने और राष्ट्र के नियमन करने में कुशल, प्रजाओं का क्षेम करने में कुशल, वेदमन्त्रों के व्याख्यान करने में कुशल, कार्यों की समाप्ति करने में कुशल, बड़े २ ऐश्वर्यों के स्वामी अथवा उर्वरा भूमियों को क्षेत्र उद्यान बनाने में कुशल और खलिहान में धान्य अन्न आदि को स्वच्छ करने में कुशल लोगों को अन्न प्राप्त हो ।

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम आशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—वनाध्यक्ष, पर्वतों और नदियों के तटों के अध्यक्ष, बाजा आदि बजाने वाले, और प्रति शब्द करने वाले, शीघ्रगामिनी सेना के स्वामी, शीघ्रगामी रथसेना वाले, शूरवीर, शत्रु के व्यूह और गढ़ों को तोड़ने वाले, इन पुरुषों को अन्न दिया जाय ।

नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥३५॥

स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—शिरस्त्राण को धारण करने वाले या शत्रु के गढ़ तोड़ने के हथियार धारण करने वाले, कवचधारी, लोह के कवच धारने वाले, गृह प्रासाद आदि के स्वामी, शौर्य आदि में प्रसिद्ध, शूरता में विख्यात सेना वाले, दुन्दुभि के उठाने वाले, और सेना में जोश डालने के लिये नगाड़ों

पर दण्डादि से आघात करके बजाने वाले इन सबको उचित अन्न आदि प्राप्त हो।

नमो॑ धृष्ण॒वे॑ च प्रमृ॒शाय॑ च॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ चेषुधि॒मते॑ च॒ नम॑स्ती॒क्ष्णेष॑वे चायु॒धिने॑ च॒ नम॑: स्वायुधाय॑ च सु॒धन्व॑ने च ॥ ३६ ॥

स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—शत्रु का धर्षण करने में समर्थ, उत्तम विचारशील, खड्ग आदि नाना शस्त्रधारी, बाण आदि तर्कस वाले, तीक्ष्ण बाण वाले, हथियारबन्द, उत्तम हथियारों से सजे, उत्तम धनुषधारी, इनको अन्न प्राप्त हो।

नम॒: स्रुत्या॑य च॒ पथ्या॑य च॒ नम॒: काट्या॑य च॒ नीप्या॑य च॒ नम॒: कुल्या॑य च सर॒स्या॒य च॒ नमो॑ नादेयाय॑ च वैश॒न्ताय॑ च ॥ ३७ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—छोटे २ नालों के अध्यक्ष, पथों के अध्यक्ष, कूप या नहर या पुलों के अध्यक्ष, बहुत गहरे जल स्थानों के अध्यक्ष, नहरों के प्रबन्ध में या बनाने में लगा पुरुष, तालाबों के बनाने या प्रबन्ध में लगा पुरुष, नद-नालों पर का अध्यक्ष, ताल तलैय्याओं का अध्यक्ष इनको भी यथोचित अन्न आदि प्राप्त हो।

नम॒: कूप्या॑य चाव॒ट्या॒य च॒ नमो॒ वीध्र्या॑य चात॒प्या॒य च॒ नमो॒ मेघ्या॑य च विद्यु॒त्या॒य च॒ नमो॒ वर्ष्या॑य चाव॒र्ष्याय॑ च ॥३८॥

भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—कूपों पर नियत पुरुष, गढ़ों पर नियत पुरुष, विविध प्रकाशों के विज्ञान में कुशल, सूर्य के ताप का उत्तम उपयोग या विज्ञान जानने वाले, मेघों का विज्ञान जानने वाले विद्युत् के विज्ञान में कुशल, वृष्टि के विज्ञान में कुशल, और वर्षाओं के न होने पर जल का उचित प्रबन्ध करने में, वा अतिवृष्टि को दूर करने में समर्थ, इन समस्त पुरुषों को राष्ट्र में उचित अन्न आदि प्राप्त हो।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

स्वराडार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—वायु विद्या के ज्ञाता, हिंसा कारी प्रबल अन्धड़ के समय उचित उपाय जानने वाले, वास्तु विद्या अर्थात् गृह-निर्माण के ज्ञाता, गृहों, महलों, राजप्रासादों की रक्षा के विज्ञान को जानने वाले, सोम आदि ओषधियों के विद्वान्, रुत् अर्थात् दुःखों के नाशक वैद्य, और तांबा आदि धातुओं का प्रयोग करने वाले इन सब पुरुषों को अन्न आदि प्राप्त हो।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

अतिशक्वरी । पंचमः ॥

भा०—गौओं के लिये कल्याण और सुख को प्राप्त करने वाला, पशुओं का पालक, तेजस्वी, शत्रुओं में भय उत्पन्न करने में समर्थ, आगे आये शत्रुओं को मारने वाला, दूरस्थ शत्रुओं को मारने वाला, मारने वाला, बहुत अधिक मारने वाला, वृक्ष के समान आश्रयप्रद और जिनके सिर के केश नहीं है ऐसे वृद्धजन इन समस्त पुरुषों को अन्न आदि प्राप्त हो। जल समुद्रादि से तराने वाले को अन्नादि प्राप्त हो।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—प्रजाओं को शान्ति प्राप्त कराने वाले, सुख के साधन उपस्थित करने वाले, कल्याण करने वाले, सुखप्रद, स्वतः कल्याणमय और भी अधिक मङ्गलकारी पुरुषों को अन्न प्राप्त हो।

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—पराविद्या के विज्ञों, अपरा विद्या के विज्ञों, भव सागर से तराने वाले, भवसागर से ऊपर उठाने वाले, परमात्मा तथा गुह आदि तीर्थों के सेवक, तटों पर आश्रय बनाकर रहने वाले, घास तृण आदि पर गुजर करने वाले और फेन मय दूध आदि के सेवन करने वाले इन सब को उचित अन्न आदि प्राप्त हो ।

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किंशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ४३

जगती । निषादः ॥

भा०—बालू के विज्ञान जाननेवाले, जलधारा के प्रयोगज्ञ, छोटी बजरी के प्रयोगज्ञ, गृह बनाने वाले, कपर्द अर्थात् कौड़ी सीप, शंख आदि के अध्यक्ष, बड़े २ भारी पदार्थों को उठाने वाले यन्त्रों के निर्माता, ऊपर भूमियों का अधिकारी, और उत्तम, २ मार्गों का अधिकारी इन सब को उचित अन्न आदि प्राप्त हो ।

नमो व्रज्याय च गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥

आर्षी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—गौओं की शालाओं के अध्यक्ष, रसकारी गोशालाओं के अध्यक्ष, शय्या निर्माण में कुशल गृह का भृत्य, हृदय को सदा प्रसन्न करने वाले खिलौने और खेल करने वाले, उत्तम वेष पहनाने और बनाने वाले, कट, चटाई आदि बनाने में प्रवीण, पर्वतों के गह्वरों, गहरे जल और विषम स्थानों के उत्तम परिचित इन सबको उचित अन्नादि प्राप्त हो ।

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाᳬसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥४५॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—शुष्क पदार्थों से व्यवहार करने वाले, शाक आदि हरे पदार्थों के व्यापारी, मिट्टी ढोने वाले, सूक्ष्म धूल का व्यापार करने वाले, घास आदि काटने वाले, तृण-राशि का संग्रह करने वाले, भूमि या विस्तृत खेतों के स्वामी, उत्तम भूमियों के स्वामी इन सब को भी अन्न आदि दिया जाय।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम उद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाᳬ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

स्वराड प्रकृतिः धैवतः ॥

भा०—वृक्षों के नीचे गिरे पत्तों ठेकेदार, पत्तों के काटने वाले, भार उठा कर लाने वाले, कुठार चला कर वृक्ष काटने वाले, दीनों पर नियुक्त पुरुष, बहुत ही पतित दीनों पर नियुक्त पुरुष, बाण और धनुष बनानेवाले नाना पदार्थों को कारीगरी से पैदा करने वाले, दिव्य-शक्तियों के हृदय अर्थात् मुख्य केन्द्रों के संस्थापक अर्थात् अग्नि वायु और आदित्य इन की खोज लगाने वाले, और विविध उपायों से शत्रुओं का विनाश करने में कुशल, और गुप्त रूप से सब तरफ शत्रु देश में व्याप जाने वाले इन सब को भी उचित अन्न प्राप्त हो।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किंचनाममत् ४७

एको रुद्रो देवता। भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे शत्रुओं को कुत्सित गति में पहुँचा देने और हमें उससे बचाने हारे! हे अन्न आदि भोग्य पदार्थों के पालक! हे शत्रुओं को दुर्गति में डालने वाले! हे कण्ठ देश में नीले और शेष देह पर लाल वर्ण के वस्त्र पहनने हारे राजन्! तू इन प्रजाओं में से और इन पशुओं में से किसी को भयभीत मत कर, रोग से पीड़ित मत कर, और न हमारे किसी प्राणी को किसी प्रकार से भी कष्ट दे। शत० ९।१।२४॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ४८

आर्षी जगती निषादः॥

भा०—बलवान्, जटाजूट धारण करने वाले अथवा जटा के स्थान में केशों पर मुकुट धारण करने वाले, अपने आश्रय में वीरों को बसाने वाले, प्रजा पर के दुखों के नाशक एवं शत्रुओं को रुलाने वाले, बड़े भारी राजा के लिये हम इन मनन द्वारा प्राप्त साधनों का अच्छी प्रकार प्रयोग करें। जिससे दो पाये मनुष्यों और चौपायों को शान्ति प्राप्त हो। और समस्त प्रजा और पशु आदि इस ग्राम में नीरोग रहकर हृष्ट पुष्ट होकर रहें।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥ ४९॥

आर्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे 'रुत्' अर्थात् प्राणियों की चीख पुकारवाली पीड़ा को दूर करने हारे! जो तेरी मङ्गलमय विस्तृत राजशक्ति है वह सब दिनों सुखकारिणी और ओषधि के समान कष्ट-पीड़ाओं को दूर करने वाली हो। वह कल्याणकारिणी देह की व्याधि को दूर करने वाली हो। उससे तू हमें दीर्घ जीवन तक सुखी कर।

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड॥५०॥

आर्षी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—हे समस्त प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारे पर्जन्य के समान राजन् ! दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुषों के शस्त्र हम पर प्रहार न करें । और पाप और अत्याचार करने की इच्छा वाले क्रोध से जले हुए पुरुष की दुष्ट बुद्धि भी हमसे दूर रहे । धन-सम्पन्न प्रजाओं की रक्षा के लिये स्थिर शस्त्रों को स्थापित कर । और हमारे पुत्र और पौत्रों को सुखी कर ।

मीढुष्टम् शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
पुरमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसानऽआचर पिनाकं बिभ्रदागहि ॥ ५१ ॥

निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हे अतिशय वीर्यसम्पन्न एवं प्रजा पर अति अधिक सुखों और शत्रुओं पर अति अधिक शरों की वर्षा करने में समर्थ ! हे अतिशय कल्याणकारिन् ! तू हमारे प्रति कल्याणकारी और शुभ चित्त वाला हो । तू काटने योग्य शत्रु-सेना पर अपने शस्त्र को रख कर, और चर्म को धारण करके प्रजा के पालन और त्राण साधन शस्त्र अस्त्र, धनुष आदि धारण करता हुआ, चारों ओर विचर और हमें प्राप्त हो ।

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः ।
यास्ते सहस्रं ᳪहेतयोऽन्यमस्मन्निवपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

आर्ष्यनुष्टुप । गांधारः ॥

भा०—हे शरों की बौछारों से शत्रुओं को भगा देने हारे ! हे विशेष रूप से रक्त वर्ण की पोषाक पहनने हारे ! हे ऐश्वर्यवान् ! तेरे लिये हमारा आदर भाव प्रकट हो । और जो तेरे हज़ारों शस्त्र अस्त्र हैं हमसे दूर होकर शत्रु पर पड़ें ।

विकिरिद्र—विकिरीन् इषून् द्रावयति इति विकिरिद्रः इति उवटः । विविधं किरिं घाताद्युपद्रवं द्रायति नाशयति इति महीधरः । विशेषेण किरिः

सूकर इव द्रायति शेते विशिष्टं किरिं द्राति निन्दति वा तत्सम्बुद्धौ विकिरिद्र इति दया० ।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ।

तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! तेरी बाहुओं में हजारों, शस्त्रास्त्र हैं । तू उनका स्वामी है । उसके मुख परली तरफ को कर ।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ।

तेषां॑ सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

विराड् आर्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—भूमि पर जो असंख्य अधिष्ठाता या शासक हैं उनके धनुषों को हम हजारों कोसों तक विस्तृत करें या शान्त करें ।

अस्मिन्महत्यर्णवे ऽन्तरिक्षे भवा अधि ।

तेषां॑ सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—इस बड़े भारी, समुद्र के समान विस्तृत, अन्तरिक्ष के समान सर्वरक्षक राजा के अधीन उत्पादक सामर्थ्य से युक्त 'भव' नामक अधिकारी रूप से सहस्रों पुरुष विद्यमान् हैं ।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः ।

तेषां॑ सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—गर्दनों में नील वर्ण के और कण्ठ पर श्वेत चिन्ह धारण करने वाले, प्राणियों के दुःखहर, सूर्य के आश्रय में चन्द्र आदि लोक के समान आल्हादक राजा के आश्रित बहुत से अधिकारी विद्यमान् हैं । (तेषां सहस्र इत्यादि) पूर्ववत् ।

नी॒लग्री॑वाः शिति॒क॒ण्ठाः श॒र्वा अ॒धः क्ष॑माच॒राः ।
तेषा॑ᳬ सहस्रयोज॒ने ऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५७ ॥
निचृद् आर्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ।

भा०—गर्दन पर नील वर्ण के और कण्ठ श्वेत वर्ण के चिन्ह को धारण करने वाले, हिंसाकारी, नीचे पृथ्वी पर विचरने वाले हैं, (तेषां सहस्र० इत्यादि) पूर्ववत् ।

चन्द्रादि लोक जो स्वयं प्रकाशमान् नहीं हैं वे सूर्य के आश्रित होकर उसके प्रकाश से कण्ठ अर्थात् आगे की ओर से तो चमकीले और पीछे की ओर से अन्धकारमय, नीले होते हैं । उसी प्रकार जो राजा के आश्रित भृत्य हैं वे भी आगे से चमकते राज शासन का कार्य करते हैं और उनके काले गुण अर्थात् लोभ रोग द्वेश आदि पीछे रहते हैं । वे उनका प्रयोग नहीं कर सकते ।

ये वृ॒क्षेषु॑ श॒ष्पिञ्ज॑रा नी॒लग्री॑वा॒ विलो॑हिताः ।
तेषा॑ᳬ सहस्रयोज॒ने ऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५८ ॥
आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो गर्दन पर नीले वर्ण के, पीली वर्दी पहने, और शेष में लाल रंग के वर्ण के रह कर वृक्षों पर या काटने योग्य शत्रुओं पर जा पड़ते हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ।

ये भू॒ताना॒मधि॑पतयो विशि॒खासः॑ कप॒र्दिनः॑ ।
तेषा॑ᳬ सहस्रयोज॒नेऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ५९ ॥
आर्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—जो प्राणियों के पालक शिखा केश आदि रहित, संन्यासी गण, और जटिल ब्रह्मचारी लोग हैं, (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ।

ये प॒थां प॑थि॒रक्ष॑य ऐलबृ॒दा आ॑यु॒र्युधः॑ ।
तेषा॑ᳬ सहस्रयोज॒ने ऽव॒ धन्वा॑नि तन्मसि ॥ ६० ॥
निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो मार्ग के रक्षक, और मार्ग में चलने वाले यात्रियों की भी रक्षा करने हारे, पृथ्वी पर के अन्न आदि पदार्थों को बढ़ाने वाले जान तोड़ कर शत्रु से लड़ने वाले हैं, (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषांᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो भाला हाथ में लिये, तलवार बांधे, विद्यालयों, जहाजों और घाटों की रक्षा के लिये उन स्थानों पर घूमते हैं, (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषांᳬ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो दुष्ट पुरुष अन्नादि भोजनों, और जल दुग्ध आदि के पात्रों पर पान करने वाले जनों पर शस्त्र का प्रहार करते हैं, उनको दूर करने के लिये हजारों योजनों तक फैले देश में हम धनुषों को विस्तृत करें ।

य एतावन्तश्च भूयांᳬसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषांᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—जो इतने पूर्व कहे, और इनसे भी अधिक दण्ड देने वाले राजपुरुष समस्त दिशाओं विविध पदों पर स्थिर हैं (तेषां सहस्र०)इत्यादि पूर्ववत् ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो नमो अस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ ६४ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः । तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः । तेभ्यो

नमो॑ अस्तु ते नो॑ऽवन्तु ते नो॑ मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥ ६५ ॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये पृ॑थि॒व्यां येषा॑मन्न॒मिष॑वः । तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः । तेभ्यो॒ नमो॑ अस्तु ते नो॑ऽवन्तु ते नो॑ मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां जम्भे॑ दध्मः ॥ ६६ ॥

(६४) निचृद्धृतिः (६५-६६) धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—जो द्यौलोक में विद्यमान सूर्यादि के समान तेजस्वी राजा के आश्रित रुद्र गण हैं, जिनका शस्त्रवर्षण काम है उन दुष्टों को रुलाने हारों के लिये आदर प्राप्त हो।

इसी प्रकार जो अन्तरिक्ष में वायु मेघ आदि के समान हैं, पर जिनके वायु के समान तीव्र वेगवान् बाण हैं, उनको हमारा नमस्कार है।

इसी प्रकार जो रुद्र गण पृथिवी पर हैं, और जो पृथिवी के समान सर्वाश्रय राजा के आश्रय पर रहते हैं, जिनके अन्न आदि भोग्य पदार्थ ही बाण के समान वशकारी साधन हैं, उन रुद्रों को नमस्कार हो। उनको दश दश प्रकार की पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण और उर्ध्व दिशाएं प्राप्त हों। अर्थात् सब दिशाओं में उनको दशों दिशाओं के सुख प्राप्त हों। अथवा दशों दिशाओं में उनको दोनों हाथों को जोड़ कर दश अंलिगुयें आदरार्थ निवेदित हों।

उनको हमारा आदरपूर्वक नमस्कार हो। वे हमारी रक्षा करें। वे हमें सुखी करें। वे हम जिसको द्वेष करते हैं, और जो हमसे द्वेष करता है उसको हम लोग मिल कर उनकी अधीनता में धर दें। ६४, ६५, ६६ । शत० ९ । १ । ३९ ॥

इति षोडशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षोडशोऽध्यायः ॥

सप्तदशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो अधि सम्भृतं पयः । तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणा अश्मँस्ते क्षुन् मयि त ऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ १ ॥

मरुतो देवताः । अति शक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—हे वैश्यगण और किसान लोगो ! आप लोग अन्न आदि समृद्धि को भरपूर देने वाले होकर, राष्ट्र के भोग करने में समर्थ एवं पालनकारी सामर्थ्य से युक्त राजा में आश्रित अन्नादि समृद्धि को और जलों औषधियों और वट आदि बड़े वृक्षों से जो पुष्टिकारक रस प्राप्त किया जाता है उस अभिलाषा के योग्य अन्न और बलकारी रस को हमें प्रदान करो । हे भोक्तः राजन् ! तुझे भूख है, परन्तु हे राजन् ! तेरा बलकारी अन्नादि रस भी मुझ प्रजा के आधार पर है । तेरा क्रोध हम जिससे द्वेष करते हैं, उस शत्रु को प्राप्त हो ।

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं च नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मे अग्न इष्टका धेनवः । सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥

अग्निर्देवता । निचृद् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे ज्ञानवान् पुरोहित ! मेरी ये मकान में चुनी गयी ईंटों के समान राज्यरूप महल में लगी राज्य के नाना विभागों में नियुक्त शासक वर्ग, भृत्य वर्ग सेनाएं और प्रजाएं, मेरे लिये दुधार गौओं के समान समृद्ध और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली और पुष्टिकारक बलप्रद कर आदि देने वाली हों । और वे एक २ करके दश हों । वे दस दस करके सौ तक बढ़ जांय । वे सौ सौ करके हजार तक बढ़ जांय । इसी प्रकार वे हजार २ दस

हजार हो जांय। वे दस २ हजार बढ़कर एक लाख हो जांय। वे एक २ लाख बढ़कर दस लाख हो जांय। इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुईं वे १० करोड़, अर्व खर्व निखर्व महापद्म, शंख, समुद्र, मध्य, अन्त, अस्त, और परार्ध हो जांय। और ये सब मेरे सुसंगठित राज्य की ईंटों के समान प्रजा गण दुधार गौओं के समान ऐश्वर्य रस के देने वाले हों, और परलोक वा परदेश में भी सुखकारी हों। शत० ९।१।२।१३-१७।

ऋ॒तव॑: स्थ ऋता॒वृध॑ ऋतु॒ष्ठाः स्थ॑ ऋता॒वृध॑: ।
घृ॒त॒श्च्युतो॑ मधु॒श्च्युतो॑ वि॒राजो॒ नाम॑ काम॒दुघा॒ अक्षी॑यमाणाः ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—पूर्व कही राज्य को बनाने वाली इष्टकाओं का स्वरूप दर्शाते हैं। हे राज्य के विशेष २ अंगों के नेता पुरुषो ! वर्ष के अंशभूत जिस प्रकार ऋतु होते हैं और वे नाना प्राणियों का उपकार करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी ऋत अर्थात् सत्य-व्यवहार और न्याययुक्त राज्य-तन्त्र की वृद्धि करने वाले हो। और हे उन अधिकारियों के आश्रय प्रजा लोगो ! जिस प्रकार ऋतुओं में आश्रित मास पक्ष दिन आदि हैं उसी प्रकार तुम राष्ट्र के संचालकों पर आश्रित लोग भी 'ऋतुस्थ' हो, क्योंकि तुम भी सत्य व्यवहार की वृद्धि करने वाले हो। आप लोग घृत, दुध और पुष्टिप्रद पदार्थों के देने वाले हो, अन्न और मधुर पदार्थों और सुखकारी पदार्थों और ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाले हो। तुम लोग विविध गुणों और ऐश्वर्यों से युक्त होकर, कभी क्षीण न होने वाले, यथेष्ट प्रकार से प्रजा की अकांक्षाओं को भरपूर करने वाले, काम-धेनु गौओं के समान सब अभिलाषाओं के पूरक हो। शत० ९।१।२।१८-१९।

स॒मु॒द्रस्य॑ त्वाव॑कया॒ग्ने॒ परि॑ व्ययामसि ।
पा॒व॒को अ॒स्मभ्य॑ᳪं शि॒वो भ॑व ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्नि के समान शत्रु को भस्म करने हारे राजन्! समुद्र के भीतर शैवाल से जिस प्रकार मेंडक आदि जलजन्तु सुरक्षित रहते हैं, उसी प्रकार सैन्य-शक्ति से तुझे सब ओर से हम प्रजाजन घेर लें। तू पवित्रकारक अग्नि के समान राष्ट्र को पवित्र करने वाला होकर हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० । ९ । १ । २ । २० । २५ ।

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि ।
पावको अस्मभ्यंᳬशिवो भव ॥ ५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—शीतल जल की जरायु अर्थात् शैवाल जिस प्रकार तालाब को घेर लेती है और मंडूक आदि जन्तु उसमें सुख से रहते हैं, उसी प्रकार हे अग्रणी! तुझको हम शान्तिमयी परिस्थितियों द्वारा चारों ओर से घेर लेते हैं। अग्नि के समान पवित्र करनेहारा तू हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० ९ । १ । २ । २६ ॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णᳬशिवं कृधि ॥ ६ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे आनन्द करने, तृप्त करने और भूमि को सुभूषित करने वाली विशेष कलाकौशल समृद्धे! तू पृथ्वी पर उत्तर, और विस्तृत राज्य में प्राप्त हो, तथा नदियों के समान समृद्ध प्रजाओं में प्राप्त हो। हे अग्रणी नेतः! तू कर्मों, प्रज्ञानों, और प्राप्त प्रजाओं का तेजःस्वरूप बल है। हे आनन्द-आमोदकारिणी, विद्वत्सभे! तू उन प्रजाओं के साथ प्राप्त हो। इस हमारे सुव्यवस्थित और पवित्रकारक राष्ट्र यज्ञ को मङ्गलकारी बना। शत० ९ । १ । २ । २७ ॥

गृहस्थ पक्ष में—हे सुभूषिते, आनन्दकारिणी, पुत्रैषणा की तृप्तिकारिणी स्त्रि! तू पृथिवी पर प्रजातन्तु सन्तान को फैलाने वाले पुरुष के आश्रय

पर और समृद्धि कारिणी लक्ष्मियों में आकर रह। हे पुरुष! तू प्रजाओं या प्राणों का पालक है। हे स्त्रि! तू उक्त सब पदार्थों सहित और इस अग्नि के समक्ष स्वीकार किये गये या गार्हपत्याग्नि से प्रकाशमान् गृहस्थ यज्ञ को मंगलमय बना।

'वेतसे'—वयति तन्तून् संतनोति इति वेतसः। द० उ० भा। वैतसः पुंजननाङ्गम्। वेतस एव वैतसः। वेतसस्यायमिति वा। वैतसो वितस्तो भवति। नि०।

मण्डूकि—मंडूका मज्जूका, मज्जनात् मन्दतेर्वा मोदतिकर्मणो मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणः मण्डयतेरिति वैयाकरणाः मण्ड एषामोकमिति वा मण्डो मदेर्वा मुदेर्वा। इति निरु० ९। १५।

अपामिदं न्ययनꣳसमुद्रस्य निवेशनम्।

अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यꣳशिवो भव ॥७॥

अग्निर्देवता। आर्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—यह भूतल जिस प्रकार जलों का आश्रय है और समुद्र का भी आधार है उसी प्रकार यह राष्ट्र आप्त प्रजाओं का आश्रय-स्थान है, और सेना सहित छावनी बना कर रहने का स्थान है। हे राजन्! तेरे शस्त्र हम से अतिरिक्त को अर्थात् शत्रुओं को पीड़ित करें। तू आहुति योग्य अग्नि के समान हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० ९। १। २। २८॥

गृहस्थ पक्ष में—यह गृहस्थ समस्त प्रजाओं का आश्रय और उठती कामनाओं का भी आश्रय है। हे विद्वान् गृहस्थ! तेरी लक्ष्मी को बढ़ी सम्पत्तियां हम से दूसरे शत्रुओं को सतावें तु अग्नि के समान सबको आचार से पवित्र करने वाला होकर सुखकारी हो।

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया।

आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ८ ॥

वसूयव ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्वी ! तथा पवित्र करने हारे राजन् ! तू तेज से और हर्षित करनेवाली वाणी से, अन्य विद्वानों और राजाओं के प्रति आज्ञा प्रदान करता और सत्संग करता और अन्य राजाओं को मित्र बनाता है। शत० ९। १। २। ३०॥

सः नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ२ऽ इहावह।
उप यज्ञᳬं हविश्च नः ॥ ९ ॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे पवित्रकारक ! हे नायक ! हे अग्नि के समान जाज्वल्यमान् ! वह तू हमारे हित के लिये विद्वान् पुरुषों को इस राष्ट्र में प्राप्त करा, लाकर बसा। और हमारे यज्ञरूप राष्ट्र का वहन कर हमें अन्न भी प्राप्त करा। शत० ९। १। २। ३०॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥१०॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—उषा के प्रकाश से जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी पर प्रकाश डालता है उसी प्रकार जो राजा पवित्र करने वाली, प्रजा को चेतानेवाली राष्ट्र निर्माण शक्ति से युक्त होकर, पृथ्वी पर शोभा देता है, जो रण में अश्व के मार्ग में आने वाले विपक्षियों को मारता हुआ, सूर्य के समान प्रदीप्त राज्य लक्ष्मी का सदा प्यासा, अजर अमर वीर के समान राज्यवृद्धि में लगा रहता है, वह तू हमें प्राप्त हो। शत० ९। १। २। ३०॥

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यᳬं शिवो भव ॥११॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन् ! प्रजा के दुखहारी का हम आदर करते हैं। तेजःस्वरूप और सत्कार योग्य शस्त्र-ज्वाला का भी आदर करते हैं। तेरी

शस्त्र-ज्वालाएं हम से भिन्न दूसरे शत्रुओं को पीड़ित करें। तू रोग-नाशक अग्नि के समान हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० ९। २। १२॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२॥

अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे राजन्! मनुष्यों के बीच में बैठने वाले तुझको यह मान आदर प्राप्त हो। समुद्र में औवानल के समान प्रजाओं के बीच विराजने वाले तुझको उच्च आसन प्राप्त हो। यज्ञ में प्रचलित अग्नि के समान राष्ट्र-शरीर के दोशों को नाश करने वाले तुझको अधिष्ठातृ पद प्राप्त हो। जंगलों में लगाने वाली लगने वाली दावाग्नि के समान सर्वस्व भस्म कर देने वाले तुझको उग्र पद का अधिकार प्राप्त हो। आकाश में विद्यमान् सूर्य के समान सबको सुख पहुँचाने वाले तुझको उच्च तेजस्वी पद प्राप्त हो। शत० ९। २। १। ८॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬ संवत्सरीणमुप भागमासते।
अहुतादो हविषो यज्ञे अस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥

लोपामुद्रा ऋषिका। प्राणा देवताः। निचृद् आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—जो दानशील राजाओं में भी विद्या और ज्ञान के देने वाले उत्कृष्ट विद्वान् हैं, और यज्ञ करने वालों के भी पूजनीय लोग हैं, जो सेवनोपासना योग्य ब्रह्मज्ञान या ब्रह्मचर्य की उपासना करते हैं, वे राजा से दिये वेतन को भोग न करने वाले होकर, इस राष्ट्र-रूप यज्ञ में अन्न और तेजोदायक पुष्टिकारक पदार्थों का स्वयं यथेच्छ उपभोग करें। शत० ९। २। १। १४॥

ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन् ये ब्रह्मणः पुर एतारो अस्य।
येभ्यो न ऋते पवते धाम किं चन न ते दिवो न पृथिव्या अधि स्नुषु ॥ १४॥

प्राणा देवताः। आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—जो लोक-प्रकाशक विद्वान् लोग राजाओं के भी ऊपर आदर योग्य पद को प्राप्त हो जाते हैं, और जो इस ब्रह्म के पूर्ण ज्ञाता होते हैं, और जिनके विना कोई स्थान पवित्र नहीं होता, वे न द्यौलोक और न पृथिवी के किसी स्थान पर रम कर पर्वतों के शिखरों पर विचरते हैं, । शत० ९ । २ । १ । १५ ॥

प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यंशिवो भव ॥१५॥

आर्षी पांक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! जिस प्रकार शरीर में जाठर अग्नि प्राण, अपान व्यान, वर्चस् और जीवन को देने वाला होता है उसी प्रकार तू राष्ट्र में प्राणों को देने वाला, राष्ट्र में अपान के तुल्य मल आदि को और हानिकर पदार्थों को दूर करने वाला, व्यान के समान व्यापक बल रखने वाला, वर्चस् या तेज के समान पराक्रम को स्थिर रखने हारा, और प्रजा को धन ऐश्वर्य देने हारा है । हमसे अन्य अर्थात् शत्रुओं को तेरे शस्त्रास्त्र पीड़ित करें । हे राजन् ! तू राष्ट्र को पवित्राचारवान् करने हारा होकर हमारे लिये शुभ कल्याणकारी हो । शत० ९ । २ । १ । १७ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ।

भा०—आग जिस प्रकार तीक्ष्ण ज्वाला से खाने योग्य सूखे गीले सब पदार्थों को विनष्ट कर डालता है, उसी प्रकार तेजस्वी परंतप राजा प्रजा के माल प्राण को खा जाने वाले राक्षस स्वभाव के पुरुषों को और सिंह व्याघ्र आदि को अपने तीक्ष्ण दीप्ति वाले आग्नेय अस्त्र से सर्वथा विनष्ट कर डाले । और वही तेजस्वी शत्रुतापक राजा हम में ऐश्वर्य को विभक्त करे । शत० ९ । २ । २ । ५ ॥

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽ आविवेश ॥१७॥

१७–३१ विश्वकर्मा भौवन ऋषिः । विश्वकर्मा देवता ॥
निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो हमारा पिता के समान पालक ज्ञानवान् होकर इन समस्त उत्पन्न मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणियों को अपने अधीन स्वीकार करता है, और सबका स्वीकर्त्ता, और गृहीता, स्वामी होकर निश्चय करके सिंहासन पर विराजता है, वह इच्छा पूर्वक ऐश्वर्य की कामना करता हुआ स्वयं सर्वश्रेष्ठ पद पर अधिष्ठित होकर अपने से छोटे, अपने अधीन लोगों को ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

परमेश्वर-पक्ष में—जो हमारा पालक परमेश्वर इन समस्त भुवनों, लोकों को प्रलय काल में आहित करके अथवा अपने वश में लेकर स्वयं ज्ञानवान् और सबका आदानकर्त्ता, वशयिता रूप से व्यापक रूप में विराजता है । वह अपने व्यापक, शासनसामर्थ्य से द्रुतगति से चलने वाले संसार को अपनी कामना या संकल्प मात्र से चलता हुआ स्वयं सर्वोत्तम सबसे विशाल लोकों को भी आच्छादित करके बाद में उत्पन्न आकाशादि भूतों और समस्त लोकों को गति देता और उनमें व्यापक होकर रहता है ।

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥१८॥

विश्वकर्मा देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—जब राजा प्रथम महान् राज्य की स्थापना करना प्रारम्भ करता है उसके विषय में प्रश्न करते हैं—[प्र० १ [उस समय उसका आश्रयस्थान क्या होता है ?, और— [प्र० २] कौनसा पदार्थ महान् साम्राज्य को आरम्भ करने के लिये मूल रूप से है ?, और वह किस

प्रकार होता है, जिससे राज्य के समस्त कर्मों को सम्पादन करने में कुशल राजा अपने आश्रय भूमि को पैदा करके, अपनी बनाकर, सूर्य के समान तेजस्वी पद को विशेष रूप से या विविध प्रकार से आच्छादित करता या प्राप्त करता है।

परमेश्वर के पक्ष में—सृष्टि के उत्पन्न करने के पूर्व [१] कौनसा आश्रय था ? और [२] जगत् को बनाने के लिये प्रारम्भक मूल द्रव्य दृश्यमाण आकाशादि तत्वों में कौन सा था ? और [३] वह किश दशा में था ? जिससे वह समस्त संसार का कर्त्ता सबको उत्पन्न करने वाली भूमि या प्रकृति को अव्यक्त से व्यक्त रूप से में प्रकट करता हुआ अपने महान् सामर्थ्य से विश्व भर को साक्षात् करने हारा होकर समस्त आकाश को विविध प्रकार के लोकों, ब्रह्माण्डों से आच्छादित कर देता है।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः॥ १९॥

विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—वह राजा विजिगीषु स्वयं चरों और मन्त्रियों द्वारा सब ओर अपनी आंख रखता है। वह सब ओर अपना मुख रखता है अर्थात् प्रजा को कर्तव्यज्ञान का उपदेश करता है। वह सब ओर अपने शत्रुओं को पीड़न करने वाली बाहुएं रखता है, और सब ओर शत्रु पर आक्रमण करने को कदम बढ़ाता रहता है। वह बाहुओं के समान सेना के दोनों पक्षों से संग्रामभूमि में आगे बढ़ता है, और अपने सेना-दल रूप पक्षों या आगे बढ़ने वाले दस्तों सहित शत्रु पर जा चढ़ता है। भूमिस्थ प्रजाओं और सूर्य के समान भोक्ता राजा दोनों को स्वयं पैदा करता हुआ एकमात्र विजयी होकर विराजता है।

ईश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर सर्वत्र आंख वाला, सर्वत्र द्रष्टा, सर्वत्र ज्ञानोपदेशक मुख वाला, सर्वत्र वीर्यरूप बाहुमान् और सर्वत्र चरण वाला

है। अर्थात् वह सब प्रकार की शक्तियों से सर्वत्र व्याप्त है वह अनन्त बल वीर्यों द्वारा अकेला देव आकाशस्थ और भूमि और भूमिस्थ पदार्थों को रचता हुआ व्यापनशील या प्रगतिशील प्रकृति के परमाणुओं से संसार को सुव्यवस्थित करता और रचता है।

किथ्ंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥२०॥

विश्वकर्मा भौवन ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार काठ के नाना पदार्थों को बनाने के लिये लकड़ी आवश्यक होती है, और उसको किसी वृक्ष में से काटा जाता है और जंगल से लाया जाता है, इसी प्रकार गृह, राज्य और समस्त रचनायुक्त कार्यों के लिये पहले मूल द्रव्य की अपेक्षा होती है। उसी के विषय में प्रश्न है कि—(१) जिसमें से सूर्य और पृथिवी दोनों के समान भोक्ता और भोग्य, राजा और प्रजा दोनों को विद्वान् लोग घढ़कर तैयार करते हैं वह कौन सा 'वन' है। अर्थात् जैसे किसी वन से काष्ठ लाकर काठ के पदार्थ बनाये जाते हैं ऐसे राजा- प्रजाओं को बनाने के लिये किस जगह से मूल द्रव्य लाया जाता है। और (२) वह वृक्ष कौन सा है ? अर्थात् जिस प्रकार कुर्सी आदि बनाने के लिये किसी वृक्ष को काट कर उसमें से कुर्सी बनाई जाती है उसी प्रकार यह राजा-प्रजा युक्त राष्ट्र को किस स्थिर पदार्थ में से घढ़कर निकाला गया है। हे मतिमान् विद्वान् पुरुषो ! अपने मन से समझ बूझकर तुम भी क्या इस पर कभी प्रश्न या तर्क-वितर्क या जिज्ञासा किया करते हो कि वह महान् बल कौन सा है जो समस्त उत्पन्न प्राणियों को पालन करता हुआ उन पर अधिष्ठाता रूप से विराजता है ?

परमेश्वर-पक्ष में—वह कौन सा मूलकारण सबके भजन करने योग्य परम पदार्थ है और वह कौन सा वृक्ष अर्थात् मूल 'स्कम्भ' या तना है जिसमें से द्यौ और भूमि, अकाश और ज़मीन इनको परमेश्वर ने गढ़ कर

निकाला है। हे ज्ञानशाली, संकल्प-विकल्प और ऊहापोह करने में कुशल विवेकी पुरुषो ! आप लोग भी उस मूलकारण के सम्बन्ध में तर्क-वितर्क, जिज्ञासा करो जो समस्त उत्पन्न लोकों और सूर्यादि पदार्थों को धारण, पालन-पोषण और स्तम्भन करता हुआ उन पर अध्यक्ष रूप से शासन कर रहा है।

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्म॒न्नु॒तेमा ।
शिक्षा॒ सखि॑भ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्व॑ वृधा॒नः ॥२१॥

विश्वकर्मा भौवन ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे समस्त राष्ट्र के कार्यों के करने वाले था उनको बनाने वाले !, हे अपने राष्ट्र को धारण करने के बल से युक्त ! जो तेरे सबसे श्रेष्ठ, जो सबसे निकृष्ट, जो मध्यम श्रेणी के और ये साधारण कर्म और धारण करने योग्य पदाधिकार और तेज हैं, उनको अपने मित्र वर्गों को अपने गृहीत राष्ट्र में प्रदान कर, और अपने आप अपने विस्तृत राष्ट्र को बढ़ाता हुआ, सबको सुसंगत, सुव्यवस्थित दृढ़ता से सम्बद्ध कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे विश्व के कर्त्ता ! हे विना किसी की अपेक्षा किये स्वयं समस्त संसार को धारण करने के अनन्त बल वाले ! जो तेरे परम, सर्वोच्च, सूक्ष्म, बहुत छोटे २, बीच के और ये सभी आखों से दीखने वाले कर्म वा लोक हैं उन सबको हम मित्र रूप जीवों को तू प्रदान करता है, तू ही हम जीवों के शरीरों की वृद्धि करता हुआ आदान करने योग्य अन्नादि में आप से आप हमें संयुक्त करता है। अथवा अन्न के आधार पर शरीरों की वृद्धि करता हुआ आप से आप सब सुसंगत करता या समस्त भोग्य अन्न अदि सुख प्रदान कर करता है।

विश्व॑कर्मन्ह॒विषा॑ वावृधा॒नः स्व॒यं य॑जस्व पृथि॒वीमु॒त द्याम् ।
मु॒ह्य॑न्त्व॒न्ये अ॒भितः॑ स॒पत्ना॑ इ॒हास्माकं॑ म॒घवा॑ सू॒रिर॑स्तु ॥ २२ ॥

विश्वकर्मा ऋषिः । विश्वकर्मादेवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे समस्त राष्ट्र के विधातः ! या राष्ट्र के समस्त उत्तम कर्मों के कर्त्तः ! तू कर के आदान और राष्ट्रों के विजय के कार्यों से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ, अपने सामर्थ्य से पृथिवी और सूर्य के समान प्रजा और तेजस्वी राजा दोनों के विभागों को सुसंगत कर। उनको ऐसे मित्र-भाव में बांधे रख जिससे चारों ओर के दूसरे शत्रुगण मोह में पड़े रहें। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जायं और फोड़-फाड़ करने में असमर्थ होकर लाचार बने रहें। और इस राष्ट्र में हमारे बीच में धन ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष विद्वान् हों वे मूर्ख न रहें जिससे शत्रु के बहकावे में न आ जावें।

परमेश्वर के पक्ष में—समस्त संसार को अपने वश करने वाले सामर्थ्य से बढ़ाता हुआ हे विश्व के कर्त्तः ! परमेश्वर ! तू द्यौ और पृथिवी को परस्पर सुसंगत करता, दोनों को एक दूसरे के आश्रित करता है। अन्य समान पतित्व या ईश्वरत्व चाहने वाले बड़े ऐश्वर्यवान्, विभूतिमान् जीव भी तेरे इस महान् सामर्थ्य को देख कर मुग्ध होते हैं। कहते हैं कि तू ही यहां, इस संसार में हमारा एकमात्र ईश्वर और एकमात्र ज्ञानप्रद विद्वान् है।

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

विश्वकर्मा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—शासनों के स्वामी, राष्ट्र के समस्त कार्यों के प्रवर्त्तक, मन के समान गति करनेवाले, अर्थात् जिस प्रकार इन्द्रियों में और शरीर में मन चेष्टा और चेतना का सञ्चार करता है उसी प्रकार राष्ट्र के अधिकारियों को सञ्चालन करने और उनको सचेत रखने वाले राजा को हम सदा रक्षा के लिये बुलाते हैं। वह हमारे समस्त आह्वानों और पुकारों को प्रेम से श्रवण करे। क्योंकि वह रक्षा करने के लिये समस्त राष्ट्र का कल्याण करने वाला, और उत्तम कर्मों का करने वाला है। वह रक्षा-कार्य करने से 'विश्वशम्भू', और साधुकर्मा होने से 'विश्वकर्मा' है।

ईश्वर-पक्ष में—ईश्वर-वाणी, वेदवाणी, समस्त ज्ञान का स्वामी, विश्व

का कर्त्ता और विश्व के समस्त कार्यों का भी कर्त्ता मनोगम्य है, उसको हम अपनी रक्षा के लिये पुकारते हैं। वह हमारे आत्मा को पापों से बचावे। वह हमारी सब पुकारों को प्रेम से सुनता है। वह सब का कल्याणकारी और श्रेष्ठ कर्म करनेहारा, उपकारी है विशेष व्याख्या देखो अ० ८ । ४५ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् ।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८ । ४५ ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २५ ॥

[२५-३१]

२५–३१ विश्वकर्मा भौवन ऋषिः । विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जब पूर्व के विद्वान् लोग सीमा भागों को विस्तृत करके स्थिर कर लेते हैं, उसके बाद ही सूर्य पृथिवी के समान एक दूसरे के उपकारक राजा और प्रजा दोनों विस्तार को प्राप्त होते हैं। और सब प्रजा पर निरीक्षण करने वाले राजा का पालक पुरोहित बुद्धिमान् होकर अपने ज्ञान से तेज और ज्ञान-बल को उत्पन्न या प्रकट करता है, और इन दोनों को एक दूसरे के प्रति आदर से झुकने वाले विनयशील बनाता है।

ईश्वर के पक्ष में—जब ही सीमाएं अर्थात् प्रकृति के विरल परमाणु कुछ घनीभूत होकर दृढ़ हो गये तो तभी आकाश और भूमि दोनों पृथक् २ हो गये। बीच का अवकाश प्रकट हो गया। जगत् को धारण करने हारा अपने मन, संकल्प के बल से ही एक दूसरे के प्रति झुकने वाले इन दोनों के प्रति जल को प्रकट करता अर्थात् पृथ्वी से जल ही ऊपर को सूक्ष्म होकर उठता है। सूर्य से किरणें पृथिवी पर पड़ती हैं पुनः भूमि उत्तम होती है। फिर जल ही आकाश से नीचे आता है अर्थात् दोनों का परस्पर सम्बन्ध विधायक जल ही है।

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः ॥२६॥

विश्वकर्मा देवता भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र के समस्त कर्मों का सम्पादक राजा विशेष रूप से मनन-शील होकर फिर विविध व्यवहारों में ज्ञानपूर्वक प्राप्त होता है, और पुनः सबका पोषण करने वाला, राष्ट्र के विविध अंगों का निर्माता, सर्वोच्च पद पर विराजमान्, और समस्त राष्ट्र के कार्यों और प्रजा के व्यवहारों को देखने हारा होता है । उन प्रजा-जनों के समस्त अभिलषित सुख के पदार्थ, अन्न के सहित उसी के आश्रय पर हर्ष और आनन्दप्रद होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, जहां शरीरगत सातों प्राणों के समान राष्ट्र के मुख्य मन्त्रद्रष्टा सात प्रधान अमात्यों को अपने से भी उत्कृष्ट राजा में एक हुआ बतलाते हैं ।

ईश्वरपक्ष में—वह विश्वस्रष्टा, विज्ञानवान्, व्यापक, पालक पोषक, कर्त्ता परम द्रष्टा है । जिसमें समस्त जीवों के प्राप्य कर्मफल आश्रित हैं । और जिसके आश्रय पर सर्व जीव अन्न तथा कर्म फल द्वारा खूब हर्षित होते हैं । और जहां सातों गतिशील प्रकृति के मुख्य विकारों को भी परब्रह्म में एकाकार हुआ बतलाते हैं । अथवा—जिसके वश में जीवों के इष्ट कर्मफल हैं । और जिसके आधार पर सात इन्द्रियों को प्राप्त करके जीव अपने अन्नादि, कर्मफल से तृप्त होते हैं । और जो सब से उत्कृष्ट है जिसको एक, अद्वितीय बतलाते हैं ।

अध्यात्मपक्ष में—आत्मा विश्वकर्मा है । वह विशेष मन रूप उपकरण वाला, सब में व्यापक, सब प्राणों का पोषक, कर्त्ता, परम द्रष्टा है प्राणों की वाञ्छित चेष्टाएं उसी में आश्रित हैं । और इसी की इच्छा या प्रेरणा से भली प्रकार तृप्त होते हैं । जिसमें सातों शिरोगत प्राणों को एकाकार मानते हैं । वही सब से पर, उत्कृष्ट है ।

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तꣳ सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥२७॥

विश्वकर्मा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो राजा हमारा पालक है, सब राष्ट्र के कार्यों का उत्पादक है, जो विशेष नियम व्यवस्थाओं का कर्त्ता धर्त्ता होकर समस्त लोकों और धारक सामर्थ्यों, तेजों और अधिकार पदों को जानता और प्राप्त करता है, जो सब विद्वान् शासकों या अधीन विजिगीषु नायकों के नामों को स्वयं धारण करने वाला एक ही है उस सबके प्रश्न करने योग्य अर्थात् आज्ञा प्राप्त करने योग्य को आश्रय करके, सब लोग और राष्ट्र के अंग विभाग चल रहे हैं।

ईश्वर के पक्ष में—जो हमारा पालक, उत्पादक, विशेष धारक पोषक, है। जो समस्त भुवनों, लोकों और तेजों और विश्व के धारक सामर्थ्यों को प्राप्त कर रहा है। जो समस्त देवों, दिव्य पदर्थों के नामों को स्वयं धारण करता है। अर्थात् सूर्य, चन्द्र आदि भी जिस के नाम हैं वह अद्वितीय ही है उस सम्यग् रीति से सभी से जिज्ञासा करने योग्य परम पद का आश्रय करके और सब लोक गति करते हैं। सभी परमेश्वर के विषय में तर्क-वितर्क से जिज्ञासा करते हैं इसलिये वह 'सम्प्रश्न' हैं।

अध्यात्म में—वह आत्मा हम प्राणों का पालक धारक है, वह सब के तेजों को धारण करता है। सब प्राणों का नाम या स्वरूप वह स्वयं धारण करता है। वह सर्वजिज्ञास्य है उसके आश्रय पर उससे उत्पन्न समस्त प्राण चेष्टा कर रहे हैं।

त आर्यजन्त द्रविणꣳ समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्त्ते सूर्त्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥२८॥

विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—वे राजनीति के द्रष्टा महामात्य लोग इस राष्ट्रवासी प्रजाजन को अपने से पूर्व के नीतिशास्त्र के प्रवक्ताओं के समान बहुत अधिक धन ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, और जो दूर के और समीप के अपने अधीन

स्थिरता से प्राप्त प्रदेश में इन समस्त प्रजास्थ प्राणियों को उत्तम रीति से शिक्षित करते एवं सुसभ्य बनाने का यत्न करते हैं।

राजा के मन्त्रद्रष्टा विद्वान् अपने अधीन दूर समीप सभी देशों की प्रजाओं को शिक्षित सभ्य बनाने का उद्योग करें।

ईश्वर के पक्ष में—वे पूर्व के ऋषि, प्रकृति के सातों विकार रूप महान् शक्तियां विद्वान् उपदेशकों के समान इस जीव सर्ग को बहुत २ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं अर्थात् पांचों भूत, अहंकार और महत्तत्व प्राणादि पांच, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सातों जीवों को बहुत २ विभूति प्रदान करते हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रजोगुण में विराजमान् प्राणियों को ये ही विशेष २ रूप से उत्पन्न करते हैं।

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कथंस्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे ॥२९॥

विश्वकर्मा देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—[प्र०] सूर्य से भी गुणों में उत्कृष्ट, इस पृथिवी से भी गुणों में उत्कृष्ट, विद्वानों से और प्राणधारी बलवान् पुरुषों से भी ऊंचा जो पदाधिकारी है वह कौन है?, और आप्त प्रजाएं किस सर्वश्रेष्ठ को राष्ट्र के ग्रहण में समर्थ जानकर अपने बीच में धारण करती हैं, जिसके आश्रय पर शक्तियों में पूर्ण समस्त विद्वान् और राजा गण राष्ट्र के कार्यों की भली प्रकार आलोचना या विचार करते हैं। वह कौन है? (उत्तर) राजा।

ईश्वर के पक्ष में—आकाश और सूर्य से भी परे, पृथिवी से भी परे, दिव्य पदार्थों और प्राणों से भी परे, रूप पल, घड़ी, दिन, मास, वर्ष आदि से भी परे कौन है? प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु किस शक्ति को प्रथम अपने भीतर धारण करते हैं? और किस में पूर्ण शक्तियुक्त दिव्य पदार्थ भी अपने को एकत्र हुआ पाते हैं। या किसके आश्रय पर पूर्ण विद्वान् पुरुष सम्यग् दर्शन करते हैं? (उत्तर) ब्रह्म।

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥

विश्वकर्मा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—पूर्व प्रश्न का उत्तर । उस सर्वश्रेष्ठ, राष्ट्र को ग्रहण करने में समर्थ, या प्रजा द्वारा राजा स्वीकार करने और आश्रय रूप से ग्रहण करने योग्य पुरुष को, आप्त प्रजाएं धारण करती हैं, जिसका आश्रय लेकर समस्त विद्वद्गण और शासक एकत्र होते और व्यवस्था में संगठित हो जाते हैं । अप्रकट रूप में विद्यमान् राज्य के केन्द्र भाग में सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप से उस एक पद को स्थापित किया जाता है, जिस पर आश्रित होकर समस्त चर अचर जड़ सम्पत्ति और चेतन प्रजाएं राष्ट्र में स्थिर होकर रहते हैं ।

परमेश्वर के पक्ष में—उस ही सर्वश्रेष्ठ सबसे प्रथम विद्यमान् परमेश्वर को प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु भी अपने गर्भ में धारण करते हैं जिसके आश्रित समस्त दिव्य शक्तियां, पांचों भूत आदि वैकारिक पदार्थ एकत्र होकर एक काल में व्यवस्थित हैं । वस्तुतः अव्यक्त रूप से विद्यमान् संसार के नाभि, केन्द्र अथवा उसको बांधने वाले तत्व के रूप में एक परम तत्व सर्वोपरि विद्यमान् है जिसमें समस्त भुवन, उत्पन्न लोक आश्रय पाकर स्थिर हैं ।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

विश्वकर्मा देवता भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ।

भा०—हे प्रजाजनो ! तुम लोग उसको नहीं जानते, जो इन समस्त राज्यकार्यों को प्रकट करता है । और वह तुम लोगों के ही बीच में रहता है । प्राण धारणमात्र वृत्ति लेकर सन्तुष्ट रहने वाले, राजाज्ञा के अनुसार शासन करने वाले लोग भी, कुहरे में छिपे हुए के समान वाग्जाल से

भ्रान्त होकर विचरते हैं। वे भी राजा के परम पद को भली प्रकार नहीं जानते हैं। वे केवल अपने वेतन या प्राण-वृत्ति से ही तृप्त रहते हैं।

ईश्वर के पक्ष में—हे मनुष्यो ! जो इन समस्त लोकों को पैदा करता है तुम लोग उसको नहीं जानते। वह और ही तत्व है जो सब से भिन्न होकर भी तुम लोगों के भी बीच में व्यापक है। कोहरे या धुन्ध से घिरे हुए पुरुषों के समान दूर तक न देखने वाले लघुदृष्टि होकर केवल मौखिक वार्त्तालाप या वाद-विवाद में मुग्ध हो कर केवल प्राण लेकर ही तृप्त होने वाले, ज्ञान के योग्य तत्व का अनुशासन करने वाले बन कर विचरते हैं। अर्थात् लोग उसके विषय में शस्त्रों की बातें बहुत करते हैं, परन्तु उसका यथार्थ साक्षात् नहीं करते।

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद् गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

विश्वकर्मा देवता। स्वराडार्षी पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—राष्ट्र के समस्त उत्तम कार्यों का सञ्चालक निश्चय से वह सर्वविजयी राजा सबसे प्रथम प्रकट होता है। उसके बाद गौ अर्थात् पृथिवी का धारण करने वाला भूमिपति और गौ अर्थात् शासनाज्ञा का धारक होता है। और फिर तीसरे वह 'ओष' अर्थात् शत्रु के दाह करने वाले वीर्य को धारण करने वाली सेनाओं का पालक और उत्पादक होता है। वह ही बहुतों की रक्षा करने में समर्थ होकर आप्त प्रजाजनों का गर्भ अर्थात् ग्रहण करने वाले, उनको वश करने वाले राष्ट्र को विविध प्रकार से विधान करता है। विविध व्यवस्थाओं से उनको व्यवस्थित करता है। राजा के क्रम से चार रूप हुए प्रथम 'देव' विजिगीषु, दूसरा 'गन्धर्व' अर्थात् विजित भूमि का स्वामी, तृतीय सेनाओं का पालक और चतुर्थ प्रजाओं का वशकर्त्ता।

ईश्वरपक्ष में—सब से प्रथम विश्व का कर्त्ता प्रकाशस्वरूप प्रभु

विद्यमान था। फिर उससे गौ, वाणी, वेद, और पृथिवी का धारक सूर्य प्रकट हुआ यह ईश्वरीय शक्ति का दूसरा रूप था। तीसरा ओषधियों, घास लता वृक्षादि का पालक और उत्पादक मेघरूप है। वह मेघ होकर प्रजापति अर्थात् बहुत से जीव सर्गों के पालने में समर्थ होकर जलों को अपने गर्भ में धारण करता है।

अध्यात्म में—विश्वकर्मा आत्मा है। वह वाणी द्वारा धारक होने से गन्धर्व है। ओषधि—ज्ञानधारक इन्द्रियगण का पालक और उत्पादक है वह ज्ञानों और कर्मों को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

आशुः शिशा॑नो वृष॒भो न भी॒मो घ॑नाघ॒नः क्षोभ॑णश्चर्ष॒णी॒नाम्। संक्रन्द॑नोऽनिमि॒ष ए॑कवी॒रः श॒तꣳसेना॑ अजयत्सा॒कमिन्द्रः॑ ॥३३॥

[३३-४४]

३३—४४ अप्रतिरथ ऐन्द्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

अप्रतिरथ सूक्तम्॥

भा०—सेनापति रूप से इन्द्र का वर्णन। बड़े वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला, अपने हथियारों को खूब तीक्ष्ण करके रखने वाला, मेघ के समान शत्रुओं पर शर वर्षण करने वाला, शत्रुओं को निरन्तर या बार २ हनन करने वाला, मनुष्यों को विक्षुब्ध कर देने वाला, शत्रुओं को अच्छी प्रकार रुलाने या ललकारने वाला, कभी न झपकने वाला सदा सवधान एक मात्र शूरवीर, तथा शत्रुओं को विदारण करने में समर्थ सेनापति ही सैकड़ों नायकों सहित दलों या सेनाओं को एक ही साथ विजय करता है। जो पुरुष ऐसा शूरवीर हो वही सेनापति 'इन्द्र' पद पर विराजे। शत० ९।२।३।६॥

सं॒क्रन्द॑नेनानिमि॒षेण॑ जि॒ष्णुना॑ युत्का॒रेण॑ दुश्च्यव॒नेन॑ धि॒ष्णुना॑। तदिन्द्रे॑ण जयत॒ तत्स॑हध्व॒ं युधो॑ नर॒ इषु॑हस्तेन॒ वृष्णा॑ ॥ ३४ ॥

इन्द्रो देवता। स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे योद्धा तथा नायक वीर पुरुषो ! तुम लोग दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले, निरन्तर सावधान सदा जयशील, युद्ध करने वाले, शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाले, शत्रुओं का मान भङ्ग करने में समर्थ, बाणों को अपने हाथ में लेने वाले, बलवान् शत्रु-गढ़ों को तोड़ने वाले, 'इन्द्र' नाम मुख्य सेनापति के साथ उस लक्ष्यभूत युद्ध का विजय करो, उस दूरस्थ शत्रु-गण को पराजित करो ।

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—वह अपने भीतर काम, क्रोध, लोभ मोह मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं पर वशकर्त्ता या राष्ट्र का वशयिता, बाण आदि को हाथ में लिये खड्गधारी वीरों के साथ मेल करे उनके बीच उत्तम कर्त्ता-धर्त्ता एवं व्यवस्थापक होकर अपने सैन्यदल सहित युद्ध करने वाला होता है । वह ही 'सोम' राजा और राष्ट्र का पालन करने हारा, बाहुबल से युक्त होकर, खूब परस्पर मिलकर आये, सुव्यवस्थित शत्रु-सेनादल का विजेता होता है । और वह ही भयंकर धनुर्धर होकर प्रतिपक्षी पर फेंके गये बाणों से शत्रुओं का नाशक होता है ।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥

इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे बड़ी भारी विशाल सेना के पालक सेनापते ! तू दुष्ट पुरुषों का घातक है । तू रथों के दल से शत्रुओं को दूर से ही पीड़ित करता हुआ युद्ध में आगे बढ़ और शत्रु का नाश कर । पदाति सेना-दल से हमारा नाश करने वाली शत्रुसेनाओं को खूब छिन्न भिन्न करके उनको जीतता हुआ हमारे रथों का रक्षक बना रह ।

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित् ॥३७॥

इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे शत्रुओं का घात करने और उनके व्यूहों को तोड़ने-फोड़ने में समर्थ सेनापति ! तू सेना-विज्ञान में चतुर, अनुभववृद्ध या युद्ध में स्थिर, स्वयं उत्तम शूरवीर, शत्रुविजयी बल से युक्त, वेगवान्, भयानक, वीरों से घिरा हुआ, बलवान् पुष्टपों से सम्पन्न, बल के कारण विख्यात और पृथिवी को विजय से प्राप्त करने वाला, अथवा आज्ञा का स्वामी होकर विजयशील योधाओं से युक्त रथ पर सवार हो ।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा । इमꣳ सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो अनु सꣳरभध्वम् ॥३८॥

इन्द्रो देवता । भुरिग आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे बल, कीर्त्ति, वंश आदि में समान रूप से विख्यात वीर पुरुषो ! आप लोग शत्रुओं के गोत्रों को तोड़ने वाले, शत्रु-वंशों के नाशक, पृथ्वी को प्राप्त करनेवाले, बाहु में वीर्यवान्, संग्राम का विजय करने वाले, और बल पराक्रम से शत्रुओं का खूब विनाश करने वाले इस सेनापति का अनुसरण करके, वीरता के कार्य करो । हे मित्र लोगो ! आप लोग उसके ही अनुकूल रहकर अच्छी प्रकार युद्ध आरम्भ करो ।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३९॥

इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—अपने शत्रुपराजयकारी बल से शत्रुओं के कुलों पर आक्रमण करता हुआ, दयारहित, शूरवीर, अनेक प्रकार के कोप करने में समर्थ, शत्रु से विचलित न होने वाला, शत्रु-सेनाओं को विजय करने में समर्थ,

युद्ध में शत्रुओं से अजेय सेनापति, संग्रामों में और योद्धाओं के बीच में हमारी सेनाओं की उत्तम रीति से रक्षा करे।

इन्द्र॑ आसां ने॒ता बृह॒स्पति॒र्दक्षि॑णा य॒ज्ञः पु॒र ए॑तु॒ सोम॑ः।
दे॒व॒से॒नाना॑मभिभञ्जती॒नां जय॑न्तीनां म॒रुतो॑ य॒न्त्वग्र॑म् ॥ ४० ॥

इन्द्रो देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—परम ऐश्वर्ययुक्त सेनापति जो कि शत्रु के व्यूहों को तोड़ने में समर्थ हो वह इन सेनाओं का नायक हो। बड़े २ दलों का स्वामी 'बृहस्पतिः' अपनी सेना के दायें भाग में होकर चले। व्यूहादि में दलों को व्यवस्थित करने में कुशल पुरुष आगे २ चले। सेना का प्रेरक या उत्साह-वर्धक पुरुष बायीं ओर चले। और विजय करनेवाली, शत्रुओं के दलों को तोड़ती फोड़ती हुई विजयी पुरुषों की सेनाओं के अग्र-भाग में शत्रुओं को मारने में समर्थ एवं वायु के समान बलवान् शूरवीर पुरुष चलें।

उवट के मत में—इन्द्र सेनानायक हो और बृहस्पति उसका मन्त्री उसके साथ हो। यज्ञ दक्षिण भाग में और सोम आगे हो। अथवा यज्ञ और सोम दोनों सेना के दायीं ओर, आगे के भाग में हों। ऋ० १० । १०३ । ९॥

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ आदि॒त्याना॑ म॒रुता॑ꣳ॒ शर्ध॑ उ॒ग्रम्।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वानां॒ घोषो॑ दे॒वानां॒ जय॑ता॒मुद॑स्थात् ॥४१॥

इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—बलवान् सेनापति का, प्रजा द्वारा वरण किये गये राजा का, आदित्य के समान पूर्ण ब्रह्मचारी, और वायु के समान तीव्र वेगवान् योद्धाओं का भयंकर बल, और बड़े मनस्वी, भुवन को कंपा देने वाले, विजय करते हुए विजिगीषु राजाओं का नाद उठे और फैले।

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नां माम॒काना॒ं मना॑ꣳसि।
उद्वृ॑त्रहन् वा॒जिनां॒ वाजि॑ना॒न्युद्रथा॑नां॒ जय॑तां यन्तु॒ घोषा॑ः ॥४२॥

इन्द्रो देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे धनैश्वर्य सम्पन्न ! तू बलवान् मेरे पक्ष के वीर पुरुषों के शस्त्र अस्त्रों को चमकवा, और उनके मनों को भी बढ़ा। हे घेरने वाले शत्रु के नाशक सेनापते ! तू घुड़सवार सेनाओं की चालों को चला। विजय करने हारे रथों के घोर शब्द उठें।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽ उ देवा अवता हवेषु ॥४३॥

इन्द्रो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—रथों पर लगे झण्डों के परस्पर मिलने पर हमारा शत्रुहन्ता नायक, और जो हमारे बाण आदि अस्त्रधारी योद्धा हैं वे जीतें। हमारे वीर ऊंचे होकर रहें। और विजयी पुरुष संग्रामों में हमारी रक्षा करें।

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥

इन्द्रो देवता विराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे शत्रुओं को दूर भगाने वाली भय की प्रवृत्ति अथवा भयंकर सेने ! तू इन शत्रुओं के चित को साक्षात् मोहित करती हुई शत्रुओं के अंगों को जकड़ ले। दूर २ मार कर और आगे २ बढ़ी चली जा। हार के शोकों द्वारा उनके हृदयों में जलन पैदा कर। और शत्रु-गण गहरे अन्धकार से युक्त हो जांय।

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसᳪंशिते।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ॥ ४५ ॥

४५–४९ अप्रतिरथ ऐन्द्र ऋषिः। प्रजापतिर्विवस्वान् वेत्येके। इषुर्देवता।
आर्ष्यनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—हे शर वर्षाने वाले यन्त्र !, हे वेद की विधियों द्वारा तीक्ष्ण ! तू चलाया जाकर दूर तक जा और शत्रुओं तक आगे बढ़ी चली जा। इन शत्रुओं में से किसी को भी जीता न छोड़।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ ४६ ॥

भा०—हे वीर नेता पुरुषो ! आगे बढ़ो। विजय करो। शत्रुओं का नाशक सेनापति तुझको शरण दे। तुम्हारी बाहुएं उग्र हों। जिससे तुम लोग शत्रु से भी कभी पछाड़ न खाने वाले रहो।

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ओजसा स्पर्धमाना।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी अन्यो अन्यं न जानन् ॥ ४७ ॥

मरुतो देवता निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे वायु के समान वीर पुरुषो ! वह जो शत्रुओं की सेना, हमसे बल में स्पर्द्धा करती हुई, हमारी तरफ बढ़ी चली आ रही है उसको इन्द्रिय-व्यापारों का नाश कर देने वाले अन्धकार, धूमादि से या शोक और भय से घेर दो, जिससे ये लोग एक दूसरे को न जान पावें।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव। तन्न इन्द्रो
बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८ ॥

इन्द्रादयो लिंगोक्ताः देवताः। पंक्तिः पंचमः ॥

भा०—जिस संग्राम भूमि में, शिखारहित या विविध शिखाओं वाले कुमारों के समान चपल शस्त्रास्त्र निरन्तर गिरते हैं। वहां शत्रुघातक तथा बड़ी भारी सेना का पालक स्वामी, अखण्डित बल पराक्रम वाला राजा, या अनथक परिश्रम करने वाली स्वयंसेवक-समिति हताहतों को सुख दे। और सदा सबको सुख दिया करे।

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु। वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥

सोमो वरुणो देवाश्च लिंगोक्ता देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे वीर योद्धा ! तेरे मर्मस्थानों को आघात से बचाने वाले कवच द्वारा ढकता हूँ। सौम्य गुण दया आदि से युक्त राजा तुझको रोग

निवारक ओषधि से ढके, तेरी रक्षा करे। सर्वश्रेष्ठ राजा तुझे बहुत से धन प्रदान करे। और विजय करते हुए तुझे देख कर विजयशील सैनिक भी तेरे साथ हर्षित हों।

उदे॑नमुत्त॒रां न॑याग्ने घृ॒तेना॑हुत।
रा॒यस्पोषे॑ण॒ सᳬ सृ॑ज प्र॒जया॑ च ब॒हुं कृ॑धि॥ ५०॥

अग्निर्देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे शस्त्रों के पराक्रम से प्रदीप्त सेना नायक! इस राष्ट्र और राष्ट्रपति को तू ऊंचे पद पर बैठा और अन्यों से भी अधिक उच्चपद या प्रतिष्ठा पर प्राप्त करा। इसको ऐश्वर्य की वृद्धि से युक्त कर। और प्रजा द्वारा बहुत बड़े समुदाय का स्वामी बना दे।

इन्द्रे॒मं प्र॑त॒रां न॑य सजा॒ताना॑मसद्व॒शी।
समे॑नं॒ वर्च॑सा सृज दे॒वानां॑ भाग॒दा अ॑सत्॥ ५१॥

इन्द्रो देवता आर्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे सेनापते! इस राष्ट्रपति को उत्कृष्ट मार्ग से ले चल। जिससे वह अपने समान वंश और पद वालों को भी वश करने में समर्थ हो। इसको तेज और बल से युक्त कर जिससे यह विजयशील योद्धाओं, विद्वानों और शासक-वर्गों को उनके वेतन आदि देने में समर्थ हो।

यस्य॑ कु॒र्मो गृ॒हे ह॒विस्तम॑ग्ने वर्धया॒ त्वम्।
तस्मै॑ दे॒वा अधि॑ब्रुवन्न॒यं च॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑॥ ५२॥

अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हम लोग जिसके घर में या जिसके शासन में रह कर 'हवि' अन्न आदि पदार्थों के आदान-प्रदान योग्य कर्मों को करते हैं, हे अग्रणी नायक! तू उसको बढ़ा। विद्वान् और बिजिगीषु जन भी इसको ही कहें कि यह ही महान् बल, वीर्य या वेद या ब्रह्म, अन्न का पालक स्वामी अन्नदाता है।

उदु त्वा विश्वे देवा अग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वथंसुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० १२ । मं० १३)

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे अधि यज्ञो अस्थात् ॥५४॥

दिशो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—विजयशील सेनाओं के अधीन पाचों दिशाओं में रहने वाली प्रजाएं, अथवा पांच राजसभाएं संगति करने योग्य राष्ट्र की रक्षा करें। और विदुषी प्रजाएं या राजसभाएं अज्ञान और दुष्ट विचारों को दूर करती हुईं और यज्ञपति को ऐश्वर्य के निमित्त आश्रय करती हुईं, राष्ट्र की रक्षा करें। जिससे राष्ट्र वा राष्ट्रपति ऐश्वर्य पशु की सम्पत्ति पर सर्वोपरि स्थिर रहे। शत० ९ । २ । ३ । ८ ॥

समिद्धे अग्नावधि मामहान उक्थपत्र ईड्यो गृभीतः ।
तप्तं घर्म्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवाः ॥ ५५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—जिस प्रकार विद्वान् ऋत्विग् लोग जब प्रतप्त सेचन योग्य घृत को लेकर आहुति देते हैं, और उस पूजनीय परमेश्वर को लक्ष्य करके अन्न द्वारा प्रदीप्त अग्नि में आहुति देते और यज्ञ करते हैं, तब अति अधिक पूजनीय वेद वचनों द्वारा ज्ञान करने योग्य, सर्वस्तुति योग्य परमेश्वर ही ग्रहण किया जाता है अर्थात् यज्ञ में उसी की पूजा की जाती है। उसी प्रकार विजीगीषु वीर पुरुष जब शत्रुओं को तपाने में समर्थ तेजस्वी राजा का आश्रय करके, उसका सत्कार करते और उसके आश्रय पर परस्पर मिल जाते हैं, और अग्रणी नेता के अति प्रदीप्त हो जाने पर जब संग्राम करते हैं, तब वह सबके स्तुति योग्य, शासन-आज्ञाओं से प्रजाओं को

ज्ञापन या घोषणा करने वाला राजा सर्वोपरि पूजनीय रूप से स्वीकार किया जाता है। शत० ९ । २ । ३९ ॥

दै॒व्याय॑ ध॒र्त्रे जोष्ट्रे॑ देव॒श्रीः श्रीम॑नाः श॒तप॑याः ।
प॒रि॒गृह्य॑ दे॒वा य॒ज्ञमा॑यन् दे॒वा दे॒वेभ्यो॑ अध्व॒र्यन्तो॑ अस्थुः ॥ ५६ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—जो राजा के समान वैभव वाला, राज्यवैभव को चाहने वाला, और सैकड़ों पोषण पदार्थों से युक्त होता है उसका आश्रय लेकर विजिगीषु वीर जन देवों के हितकारी, सबके धारक, सबके प्रेमी पुरुष की वृद्धि या ऐसी राष्ट्र की वृद्धि के लिये संग्राम में आते हैं। विजयी लोग विजेताओं की उन्नति के लिये ही संग्राम चाहते रहते हैं।

वी॒तꣳ ह॒विः श॑मि॒तꣳ श॑मि॒ता य॒जध्यै॑ तु॒रीयो॑ य॒ज्ञो यत्र॑ ह॒व्यमेति॑ ।
ततो॑ वा॒का आ॒शिषो॑ नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

यज्ञो देवता । निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जिसमें सर्वत्र व्याप्त होने योग्य, शान्तिदायक पुरुष द्वारा शान्ति सुख देने योग्य बनाया गया, आहुति योग्य चरु अग्नि में आहुति करने के लिये प्राप्त होता है वह चतुर्थ या सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कहा जाता है। उससे प्रार्थनाएं, उत्तम कामनाएं हमें प्राप्त हों। शत० ९ । २ । ३ । ११ ॥

तुरीयः यज्ञः = चौथा यज्ञ—"अध्वर्युः पुरस्तात् यजूंषि जपति। होता पश्चादृचोऽन्वाह, ब्रह्मा दक्षिणतोऽप्रतिरथं जपति एष तुरीयश्चतुर्थो यज्ञः॥" प्रथम अध्वर्यु यजुषों को कहता है। फिर होता ऋचा पढ़ता है। फिर ब्रह्मा अप्रतिरथ सूक्त का पाठ करता है। यह चतुर्थ यज्ञ है। शत० ९ । २ । ३ । ११ । अथवा प्रथम अध्वर्यु का श्रावण, फिर अग्नीध्र का प्रत्याश्रवण, फिर अध्वर्यु का प्रैष, फिर होता का स्वाहाकार। अथवा—अध्यात्म में जिस आत्मा में शम दम की साधना द्वारा शान्त किया गया

ज्ञान से युक्त ग्राह्य, आत्मा परमेश्वर के प्रति समर्पण कर देने के लिये ही स्तुति योग्य या आदान योग्य परम वैद्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। वह 'तुरीय' अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति रूप, भवसागर-तरण रूप 'यज्ञ' कहाता है। उस तुरीय पद को प्राप्त ब्रह्मज्ञानी से वाणी से बोलने योग्य आशीर्वाद हमें प्राप्त हों।

प्रजा में शान्ति फैलाने में समर्थ पुरुष, शान्ति गुण से युक्त व्यापक उपाय, या आदान योग्य कर टैक्स जहां राजा को देने के लिये पूजनीय राज्य है। राजा, अमात्यवर्ग, प्रजा, तथा भूमि इन चार विभागों वाला राष्ट्रयज्ञ जब कररूपी हव्य को प्राप्त करता है, जो हव्य कि कामना योग्य तथा शान्ति के उपाय से प्राप्त किया गया है, और जिस हव्य को राष्ट्र में शान्ति स्थापित करने वाला राजा राष्ट्रयज्ञ का यजन करने के लिये प्राप्त करता है, उस राष्ट्रयज्ञ से गुरूपदेश योग्य विद्याएं और उत्तम इच्छाएं हमें प्राप्त हों।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ऽ अजस्रम्।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान् सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ५८

अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप। धैवतः॥

भा०—जो सूर्य की किरणों के समान विद्या आदि गुणों को धारण करता है, जो क्लेशों को हरण करने वाला सूर्य के समान समस्त प्रजा का प्रेरक होकर निरन्तर प्रकाश रूप में ऊपर उठता है, उसके उत्कृष्ट शासन में रहकर पोषक विद्वान्, जितेन्द्रिय होकर समस्त भुवन उत्पन्न पदार्थों को अच्छी प्रकार निरीक्षण करता हुआ आगे बढ़ता है। शत० ९। २। ३। १२॥

परमेश्वर पक्ष में—सूर्य आदि लोक भी जिसकी किरण के समान हैं, अतः वह परमेश्वर 'सूर्यरश्मि' है। क्लेश हरण करने वाला होने से वह 'हरिकेश' है। सर्वोत्पादक होने से 'सविता' है। वह अविनाशी ज्योति

रूप से हृदय में उदित हो। उसके उत्कृष्ट शासन या जगत् में अपने बल और ज्ञान का पोषक विद्वान् ज्ञानी जितेन्द्रिय पुरुष समस्त भुवनों को देखता, ज्ञान करता हुआ सूर्य के समान अध्यक्ष रूप से सर्वत्र आगे बढ़ता है।

विमान एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम्।
स विश्वाचीरभिचष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥ ५९ ॥

विश्वावसुर्ऋषिः। आदित्यो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—राजा तेज और ज्ञानी पुरुषों के बीच में विशेष मान वाला होकर विराजता है। वह अपनी कीर्ति से तेज और इस पृथिवी और अन्तरिक्ष को पूर्ण करता है। वह अन्न जल की धारक भूमियों और प्रजाओं को पूर्व और पश्चिम के ज्ञापक ध्वजादि को भी देखता है।

इसी प्रकार आदित्य योगी विशेष ज्ञानवान् होने से 'विमान' है। वह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के बीच ब्रह्मस्थ होकर विराजता है। वह प्राण, अपान और अन्तरिक्ष, हृदयाकाश सबको पूर्ण करता है। वह देह में व्याप्त और तेजोव्याप्त नाड़ियों को पूर्व और अपर केतु अर्थात् जीव और ब्रह्म दोनों के ज्ञानमय स्वरूप को साक्षात् करता है।

उक्षा समुद्रो अरुणः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुराविवेश।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥६०॥

अप्रतिरथ ऋषिः। आदित्यो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—राष्ट्र के कार्य्य-भार को वहन करने वाला अपनी मुद्रा आदि का उत्पादक या समुद्र के समान गंभीर अनन्त कोश रत्नों का स्वामी, उगते सूर्य के समान रक्त वर्ण के वस्त्र पहने, उत्तम रूप से पालन करने वाला होकर अपने पूर्व विद्यमान् पिता के स्थान को ले। द्यौलोक के बीच में स्थित सूर्य के समान तेजस्वी राजा ही तेजस्वी राष्ट्र और राजचक्र के बीच में स्थापित होकर, कर आदि लेने एवं प्रजापालन और चक्री या

शिला के समान शत्रुगणों को चकनाचूर कर देने में समर्थ होकर विविध प्रकार के विक्रम कर सकता है और नाना ऐश्वर्यों से रंजित राष्ट्र रूप लोक के दोनों छोरों को पालन कर सकता है। शत० ९। २। ३। १८॥

इस प्रकार गृहपति के विषय में—गृहस्थ माता पिता का पुत्र जब वीर्य सेचन में या गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ अर्थात् 'उक्षा', उत्तम पालन, और उत्तम साधनों, रोजगारों से युक्त अर्थात् 'सुपर्ण' हो तो उसको अपने पूर्वपिता की गोदी प्राप्त हो। वह ही शिला के समान वा आदित्य वा मेघ के समान पालन, होकर राग से प्राप्त काम्य, गृहस्थ सुख के दोनों अन्तों अर्थात् वर वधू दोनों के गृह्य-बन्धनों का पालन कर सकता है।

अथवा—योगी धर्म मेघ द्वारा आत्मा में ब्रह्म रस का वर्षक होकर तेजस्वी, उत्तम ज्ञानवान् होकर पूर्व पिता अर्थात् पूर्ण पालक परमेश्वर के धाम को प्राप्त होता है। वह तेजोमय मोक्ष के बीच में स्थित होकर समस्त ब्रह्मानन्द का भोक्ता, राजस, तामस् उद्योगों का नाशक, 'अश्माखण' होकर विविध लोकों में स्वच्छन्द गति करता है और समस्त ब्रह्माण्ड या रजोमय प्राकृतिक विभूति के दो छोर उत्पत्ति और प्रलय दोनों को व्याप लेता, ज्ञान कर लेता है। शत०। ९। २। ३। १८॥

इन्द्रं विश्वा॑ अवीवृधन्त्समुद्रव्य॑चसं गिरः।
र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑नाꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म्॥ ६१॥

जेता माधुच्छन्दस ऋषिः। इन्द्रो देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गांधारः।

भा०—समुद्र के समान विविध ऐश्वर्यों का दाता, और समस्त रथियों में सबसे बड़े महारथी, सत्-मर्यादाओं के प्रतिपालक, और संग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक, शत्रुओं के विनाशक राजा को समस्त स्तुति-वाणियां बढ़ाती हैं, वे उसके गौरव को बढ़ाती हैं।

दे॒व॒हूर्य॒ज्ञ आ च॑ वक्षत्सुम्न॒हूर्य॒ज्ञ आ च॑ वक्षत्।
यक्ष॑द॒ग्निर्दे॒वो दे॒वाँ२ऽ आ च॑ वक्षत्॥ ६२॥

विधृतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा० – विद्वानों और विद्या आदि शुभ गुणों को स्वयं धारण करने वाला, विद्वानों का आह्वाता सबका व्यवस्थापक राजा राष्ट्र का सब प्रकार से कार्य-भार वहन करे। सुखों का प्रदाता सर्वोपरि आदर योग्य राजा राष्ट्र को धारण करे। दाता नायक राजा सबको संगत करे, और राष्ट्र के भार को धारण भी करे। शत० ९। २। ३। २०॥

ईश्वरपक्ष में—सर्वोपास्य यज्ञ, परमेश्वर दिव्य शक्तियों का धारक विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को अपने पास बुलाने से 'देवहू' है। सुखप्रद एवं सुषुम्ना द्वारा भीतर सुखद होने से 'सुम्नहू' है वही सर्वप्रकाशक अग्नि सबको ज्ञान देता और धारण करता है।

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत्।

अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽअकः ॥ ६३ ॥

इन्द्रोदेवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—ऐश्वर्यवान् राजा मुझको विज्ञान अन्न और ऐश्वर्य का उत्पादक होकर ऊपर ले जाने वाले उपाय से उत्तम पद पर या उत्तम स्थिति में रक्खे। और निग्रह या दण्ड देकर वह मेरे शत्रुओं को नीचे करे। शत० ९। २। ३। २१॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।

अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

इन्द्राग्नी देवते। आर्ष्युनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट पद को प्राप्त करने के सामर्थ्य और शत्रुओं को नीचे गिराने और दण्डित करने के सामर्थ्य को और बड़े भारी धन रष्ट्र को भी नित्य बढ़ावें। सेनापति और राष्ट्र का नायक दोनों मेरे विरुद्धाचारी शत्रुओं को विविध उपायों से विनष्ट करें। शत० ९। २। ३। २२॥

क्रम॑ध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्य॒छं हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठछं स्व॑र्ग॒त्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राध्वम् ॥ ६५ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे नायको ! तुम लोग अग्रणी राजा के साथ, सुखप्रद तथा उखा नाम पृथ्वी के हितकारी राष्ट्रसुख को अपने हाथों में धारण करते हुए आगे बढ़ो । न्याय विद्या आदि से प्रकाशित सूर्य के समान तेजस्वी, पालन करनेवाले, सुखमय राज्य को प्राप्त करके, विद्वान् विजयी पुरुषों के साथ मिलकर विराजो । शत० ९ । २ । ३ । २४ ॥

प्राची॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ प्रेहि॑ वि॒द्वान॒ग्नेर॑ग्ने पु॒रो अ॑ग्निर्भ॑वे॒ह ।
विश्वा॒ आशा॒ दीद्या॑नो॒ विभा॒ह्यूर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥६६॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे नायक राजन् ! तू प्रकृष्ट उन्नत पद को प्राप्त कराने वाली उन्नति की दिशा की ओर आगे बढ़ । तू आगे चलने वाला मुख्य अग्रणी होकर इस राज्य में रह । तू समस्त दिशाओं को अपने तेज से प्रकाशित करता हुआ प्रकाशित हो, और हमारे दो पाये भृत्य आदि और चौपाये गौ आदि पशुओं को उत्तम अन्न और बल प्रदान कर । शत० ९ । २ । ३ । २५ ॥

पृ॒थि॒व्या अ॒हमुद॒न्तरि॑क्ष॒मारु॑ह॒मन्तरि॑क्षा॒द्दिव॒मारु॑हम् ।
दि॒वो नाक॑स्य पृ॒ष्ठात् स्व॒र्ज्योति॑रगाम॒हम् ॥ ६७ ॥

अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—मैं अधिकार प्राप्त राजा पृथिवी निवासी प्रजागण से ऊपर अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक पद को प्राप्त होऊं, और अन्तरिक्ष पद सूर्य के समान सर्वद्रष्टा तेजस्वी विराट् पद पर चढ़ूं । सर्व सुखमय, तेजोमय, सर्वोपरि पद से भी ऊपर सुखमय परम प्रकाश ब्रह्मपद को भी मैं प्राप्त करूं । शत० ९ । २ । ३ । २६ ॥

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त आ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳬं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥ ६८ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—जो उत्तम विद्वान् पुरुष, सब तरफ प्रजाजनों को धारण करने वाले तथा राष्ट्र-व्यवस्थापक साम्राज्य को विविध उपायों से विस्तृत करते हैं, वे परम मोक्ष को प्राप्त होते हुए योगियों के समान संसार के भोगों की अपेक्षा नहीं करते, प्रत्युत समस्त पृथिवी के ऐश्वर्य और शत्रु बल को रोक लेने में समर्थ सर्वोपरि विजयकारिणी शक्ति को प्राप्त हो जाते हैं। शत० ९ । २ । ३ । २ । २७ ॥

योगी के पक्ष में—जो विज्ञानी, योगीजन समस्त जगत् के धारक, परम उपास्य परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं वे सुखमय परम मोक्ष को जाते हुए सांसारिक भोगों की अपेक्षा नहीं करते, उन पर नीचे दृष्टि नहीं डालते । प्रत्युत जन्म मृत्यु के रोकने में समर्थ प्रकाशमयी मोक्ष पदवी को प्राप्त करते हैं ।

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥६९॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! ज्ञान प्रदान करने वाली इन्द्रियों के बीच में चक्षु के समान समस्त पदार्थों के दिखलाने हारा होकर, काम्य-सुखों को चाहने वाले मनुष्यों के बीच में तू सबसे मुख्य होकर आगे बढ़ । यज्ञ करने वाले दानशील अथवा राष्ट्रों का संगठन करने वाले राजगण भी परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों के साथ प्रजा पालन का कार्य करते हुए परस्पर प्रेम सहित कल्याण पूर्वक सुख धाम को प्राप्त हों ।

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकᳬं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाः ७०

भा०—व्याख्या देखो (अ० १२ । २)।

अग्ने॑ सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छ॒तं ते॑ प्रा॒णाः स॒हस्रं॑ व्या॒नाः । त्वꣳ सा॑ह॒स्रस्य॑ रा॒य ई॑शिषे॒ तस्मै॑ ते विधेम॒ वाजा॑य॒ स्वाहा॑ ॥ ७१ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे तेजस्विन् राजन् ! हे गुप्त चरो ! दूतों और सभासदों रूप हजारों आखों वाले !, हे सैकड़ों राजसभासदों रूप विचार करने वाले मस्तकों से युक्त !, तेरे सैकड़ों शासकरूप प्राण हैं जिनसे राष्ट्रशरीर में चेतनता जाग्रत रहती है। इसी प्रकार हजारों व्यान के समान भीतरी व्यवहारों के कर्त्ता अधिकारी हैं। तू सहस्रों ऐश्वर्यों का स्वामी है। उस तुझ ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम उत्तम यश कीर्ति के लिये अन्न कर आदि प्रदान करें। शत० ९। २। ३।। ३२-३३ ॥

सु॒प॒र्णो॑ऽसि ग॒रुत्मा॑न् पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्याः सी॑द । भा॒सान्तरि॑क्ष॒मापृ॑ण॒ ज्योति॑षा दि॒व॒मुत्त॑भान॒ तेज॑सा॒ दिश॒ उद्दृ॑ꣳह ॥ ७२ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी पंक्ति । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू उत्तम पालन साधनों से सम्पन्न है। तू गौरवपूर्ण आत्मा वाला होकर पृथिवी के ऊपर विराजमान् हो। और अपने तेज से वायु के समान अन्तरिक्ष को भी पूर्ण कर, अन्तरिक्ष के समान समस्त प्रजा को घेर कर उन पर अपनी छत्रछाया रख। और सूर्य से जिस प्रकार आकाश मण्डित है उसी प्रकार अपने तेज से विजय से प्राप्त भूमि को उन्नत कर। और पराक्रम से दिशावासी प्रजाओं को उन्नत कर। शत० ९। २। ३। ३४ ॥

आ॒जुह्वा॑नः सु॒प्रती॑कः पु॒रस्ता॒दग्ने॒ स्वं य॒ योनि॒मासी॑द साधु॒या । अ॒स्मिन्त्स॒धस्थे॒ऽअध्युत्त॑रस्मि॒न् विश्वे॑ देवा॒ यज॑मानश्च सीदत ७३

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन् राजन् ! तू आदर सत्कार से

सम्बोधन किया जाकर, शुभ लक्षण और रूप बनाकर, सबसे आगे पूर्व की ओर उत्तम रीति से अपने मुख्य आसन पर विराज। इस एकत्र होकर बैठने के उत्कृष्ट सभाभवन में तू सबसे ऊपर विराज। राष्ट्र सभा के अधिकारी राष्ट्र यज्ञ का कर्त्ता राजा भी राज सभा में विराजे। शत० ९। २। ३। ३५॥

तां॑ᳬस॑वि॒तुर्वरे॑ण्यस्य चि॒त्रामाहं वृ॑णे सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम्।
याम॑स्य॒ कण्वो॒ अदु॑ह॒त्प्रपी॑नाᳬ स॒हस्र॑धारा॒म्पय॑सा म॒हीं गाम् ७४

कण्वऋषिः। सविता देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं वरण करने योग्य, सूर्य के समान सबके प्रेरक राजा की उस अद्भुत तथा शुभ ज्ञानवाली और समस्त प्रजाजनों के हित के लिये बनाई गई राजसभा को स्वीकार करता हूँ, जिस अति पुष्ट, सहस्रों नियमधाराओं से युक्त, दूध वृद्धिकारी राष्ट्र के पुष्टिजनक उपायों से बड़ी भारी ज्ञानमयी राज सभा को मेधावी जन दोहते हैं, वादविवाद द्वारा सारत्व को प्राप्त करते हैं। शत० ९। २। ३। ३८॥

राजा रूप प्रजापति की यही अपनी 'दुहिता' गौ, राजसभा है जिसे वह अपनी पत्नी के समान अपने आप उसका सभापति होकर उसको अपने अधीन रखता है। जिसके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है—'प्रजापतिः स्वां दुहितरमभ्यधावत्।' इत्यादि उसी को 'दिव' या 'उषा' रूप से भी कहा है, वस्तुतः वह राजसभा है।

परमेश्वर के पक्ष में—सबसे श्रेष्ठ सर्वोत्पादक परमेश्वर की अद्भुत विश्व को उत्पन्न करने वाली उत्तम ज्ञानवती वाणी को मैं सेवन करूं। जिस पूजनीय वाणी को सहस्रों धार वाली हृष्ट पुष्ट गाय के समान सहस्रों 'धारा', धारण सामर्थ्य या व्यवस्था-नियमों वाली को ज्ञानी पुरुष दोहन करता हैं, उससे ज्ञान प्राप्त करता है।

वि॒धेम॑ ते पर॒मे जन्म॑न्नग्ने वि॒धेम॒ स्तोमै॒रव॑रे स॒धस्थे॑।
यस्मा॒द्योने॑रु॒दारि॑था॒ यजे॒ तं प्र त्वे ह॒वीᳬषि॑ जुहु॒रे समि॑द्धे॥७५॥

गृत्समद ऋषिः । त्रिस्थानोऽग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे अपने तेज से दुष्टों को भस्म करने हारे राजन् ! तुझे हम सर्वोत्कृष्ट पद पर स्थापित करके तेरा विशेष सत्कार करें । और उससे उतर कर 'सधस्थ' अर्थात् सब विद्वान् सभासदों के एकत्र होने के सभा भवन में भी स्तुति वचनों से तेरा आदर सत्कार करें । तू जिस स्थान से भी उन्नत पद को प्राप्त हो उसको भी मैं प्रदान करूं । प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार नाना हवियों की आहुति करते हैं उसी प्रकार हम लोग तुझ पर ग्रहण करने और स्वीकार करने योग्य यथार्थ वचनों को प्रदान करें । शत० ९ । २ । ३ । ३९ ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वाᳬ शश्वन्त उपयन्ति वाजाः ॥ ७६ ॥

वसिष्ठ ऋषि । अग्निर्देवता आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे तेजस्विन् ! तू हमारे आगे अविनाशी, उत्साह और तेज से प्रकाशित हो । हे सदा बलवान् ! तुझे सदा के लिये अन्नादि ऐश्वर्य और ज्ञानवान् पुरुष प्राप्त हों । शत० ९ । २ । ३ । ४० ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रᳬ हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥ ७७ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १४ । १४ ॥ शत० ९ । २ । ३ । ४१ ॥

चित्तिं जुहोमि मनसा घृतेन यथा देवा इहागमन्वीतिहोत्रा ऋतावृधः । पत्ये विश्वस्य भूमनो जुहोमि विश्वकर्मणे विश्वाहादाभ्यᳬ हविः ॥ ७८ ॥

विश्वकर्मा देवता । विराड् अतिजगती । निषादः ॥

भा०—घी के द्वारा जैसे अग्नि में आहुति दी जाती है उसी प्रकार मैं चित्त से तत्वजिज्ञासा के लिये चिन्तन को प्राप्त करता हूँ । जिससे इस विचार-भवन में ज्ञान की आहुति देने वाले, सत्य को बढ़ाने हारे

विद्वान् लोग आवें। बड़े भारी विश्व के स्वामी समस्त राष्ट्र के साधु कर्मों के प्रवर्त्तक राजा के निमित्त मैं अविनाशी ज्ञान और अन्न को सदा प्रदान करूं। शत० ९। २। ३। ४२॥

प्रत्येक विद्वान् सभासद् का कर्त्तव्य है कि जब विद्वान् सत्यशील लोग एकत्र हों तो मन लगा कर 'चिति' अर्थात् विषय के 'चिन्तन' या विचार में ध्यान दें। और राजा को अखण्डनीय, निश्चित सत्य तत्व का निर्णय प्रदान करे।

स॒प्त ते॑ अग्ने स॒मिध॑: स॒प्त जि॒ह्वाः स॒प्त ऋष॑यः स॒प्त धाम॑ प्रि॒याणि॑। स॒प्त होत्रा॑: सप्त॒धा त्वा॑ यजन्ति स॒प्त योनी॒रा पृ॑णस्व घृ॒तेन॒ स्वाहा॑ ॥ ७९॥

सप्त ऋषयो ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! तेरी अग्नि के समान सात समिधाएं हैं अर्थात् अमात्य आदि सात प्रकृतियां तेरी तेजोवृद्धि का कारण हैं। राष्ट्र के कार्यों का निरीक्षण करने वाले वे सात 'ऋषि' हैं। ये सात प्रिय धारण-सामर्थ्य हैं। वही तेरे यज्ञ के ७ होताओं के समान राष्ट्र के सात अंग हैं। वे सातों तुझको सात तरह से प्राप्त होते हैं। तू उन सातों स्थानों या पदाधिकारों को अपने तेज से उत्तम रीति से पूर्ण कर। शत० ९। २। ३। ४५॥

शु॒क्रज्यो॑तिश्च चि॒त्रज्यो॑तिश्च स॒त्यज्यो॑तिश्च ज्योति॑ष्माँश्च। शु॒क्रश्च॑ ऋत॒पाश्चात्य॑ꣳहाः ॥ ८०॥

मरुतो देवताः। आर्ष्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—शुक्रज्योति और चित्रज्योति, सत्यज्योति शुक्र, ऋतपा और अत्यंहा ये ७ शरीर में ७ प्राणों के समान राष्ट्र में मुख्य अमात्य नियत किये जायं। शत० ९। ३। १। २६॥

अति कान्तिमान्, शुद्ध ज्योति से ज्ञानवान् पुरुष 'शुक्रज्योति' है।